प्रेरक प्रसंग— पूज्य आचार्य विद्यासागरजी के परमशिष्य पू. मुनिसुधासागरजी के ससघ पावन सान्निध्य में 9 से 14 जून, 94 तक आयोजित मन्दिर संघी जी सागार्नर मे विद्वेत्संगोष्ठी एवं भू-गर्भ स्थित जिन-बिम्ब दर्शन समारोह के अवसर पर।

ट्रस्टसंस्थापक— स्व. प. जुगलकिशोर मुख्तार

ग्रन्थ माला सम्पादक
एवं नियामक— डॉ. दरबारी लाल कोठिया वीना

प्रतिया - 1000
संस्करण - प्रथम 1994

मूल्य : 50 रुपये

प्राप्तिस्थान . —
(1) श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मंदिर संघी जी
जैन मन्दिर रोड़ सांगानेर, जयपुर
(2) डॉ. शीतल चन्द्र जैन
मानद मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट
1314, अजायबघर का रास्ता,
किशनपोल बाजार, जयपुर-3

मुद्रक :
कुशल प्रिन्टर्स
गोधों का रास्ता, किशनपोल बाजार,
जयपुर-302003 फोन : 316052

मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान

कलापूर्ण वेदी
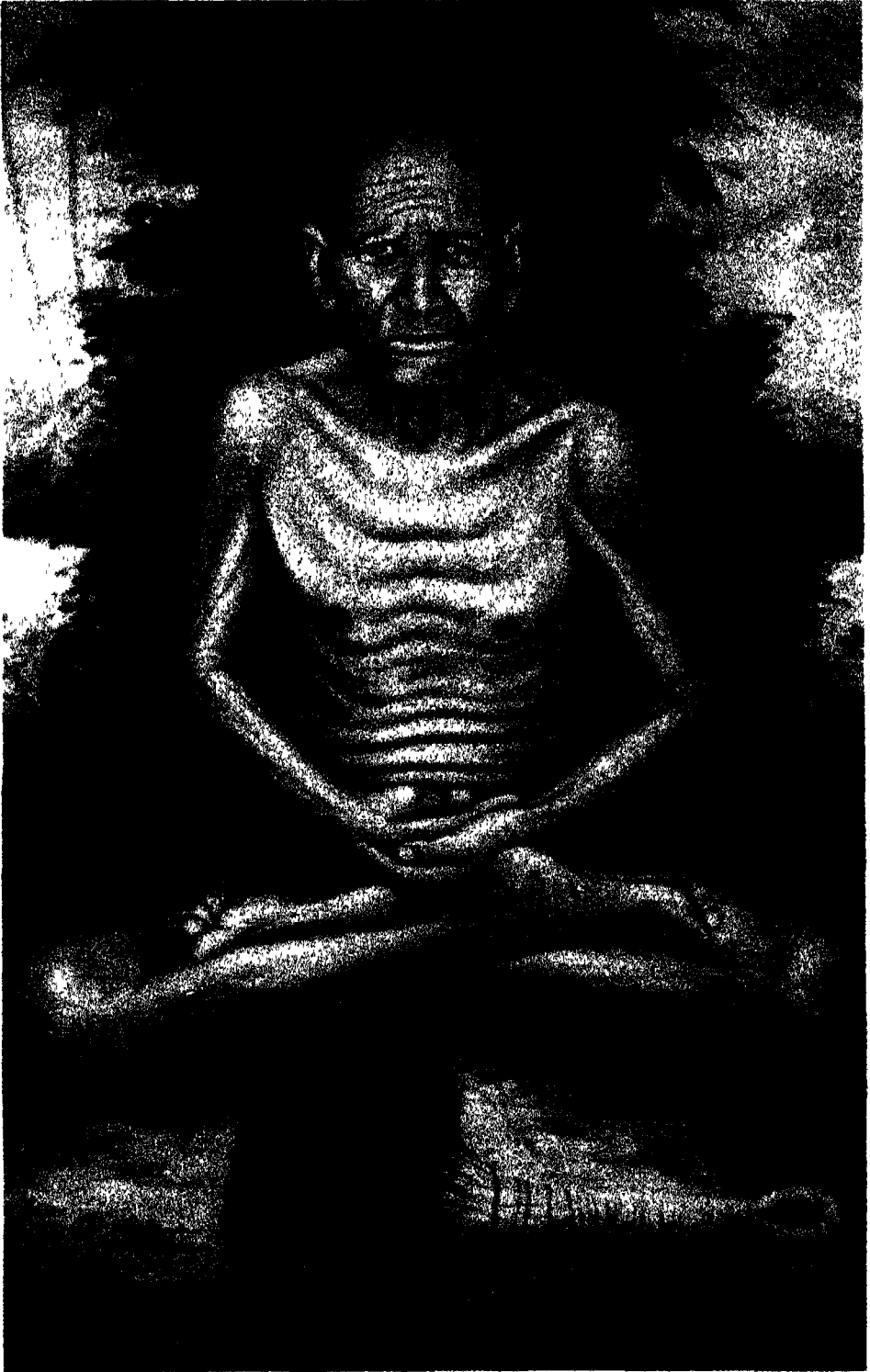
इस शताब्दी के अप्रतिम साहित्य सृष्टा चारित्र चक्रवर्ती आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज

संत शिरोमणि आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज

पूज्य मुनिवर १०८ श्री सुधासागर जी महाराज

क्षुल्लक श्री गम्भीर सागर जी
महाराज
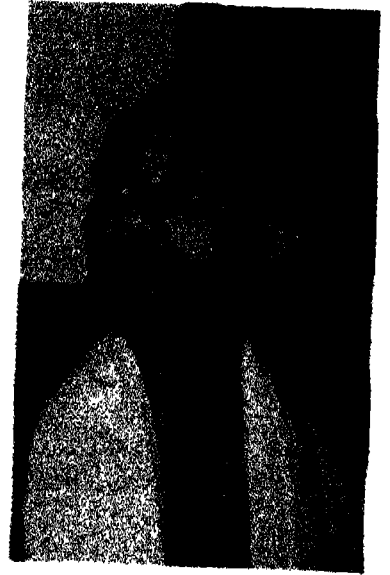
क्षुल्लक श्री धैर्य सागर जी
महाराज

जिन बिंब दर्शन एवं त्रि दिवसीय संगोष्ठी के कार्यक्रम के प्रारम्भ में झंडारोहण करते हुए माननीय सोहनलाल जी पाटनी गौहाटी वाले जयपुर

विद्वत संगोष्ठी के प्रारम्भ में समोजकीय वक्तव्य देते हुऐ डॉ. शीतल चंद जैन (मध्य मे), (दाये) धन कुमार पांड्या, अध्यक्ष, (बायें) नरेन्द्र कुमार पांड्या , स. मत्री

डॉ. मन्डन मिश्र पूर्व उपकुलपति लाल बहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ दिल्ली का स्वागत करते हुये कमेटी के अध्यक्ष धन कुमार पांड्या

मा. निर्मल कुमार सेठी, अध्यक्ष भारतवर्षीय दि. जैन महासभा का स्वागत करते हुये कमेटी के मंत्री निर्मल कासलीवाल

आचार्य प्रवर ज्ञान सागर जी महाराज के २१ वे समाधि दिवस पर आयोजित अखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी में पधारे विद्वतगण

विद्वत संगोष्ठी में पधारे हुए विद्वत गण मुनि श्री का आर्शीवचन सुनाते हुए।

जिन चैत्यालय के अभिषेक की तैयारी करते हुये (मध्य में) मा. भंवर लाल जी सौगानी (दाये) श्री विजय कुमार जी पहाड़िया (बाये) डॉ. शीतल चन्द जैन

चमत्कारी जिन चैत्यालय का प्रथम अभिषेक करते हुये श्री मदन लाल जी बैनाड़ा एवं उनका परिवार

आचार्य ज्ञानसागर जी पर आयोजित चित्र प्रदर्शनी का अवलोकन करते हुए पूज्य मुनि श्री १०८ सुधासागर जी, पूज्य क्षु श्री १०५ गम्भीर सागर जी एवं पू. क्षु श्री धैर्य सागर जी

कार्यक्रम अध्यक्ष श्री राजेन्द्र जी जैन अजमेर वाले विद्वानों का सम्मान करते हुये

सोधर्म इन्द्र श्री राजेन्द्र कुमार जी जैन (राज भवन) अजमेर वाले एवं उनकी धर्मपत्नी कर्मदहन मण्डल विधान पूजन करते हुये।

कर्म दहन मंडल विधान के अवसर पर ईशानेन्द्र श्री राजकुमार बिलाला एवं उनकी धर्म पत्नि अरुणा बिलाला मूर्ति को विराजमान करने ले जाते हुए।

दो दिवसीय विद्वत संगोष्ठी के संयोजक डा. शीतल चन्द जैन का स्वागत करते हुए श्रेष्ठी वर्य श्री निरंजन लाल जी बैनाड़ा, आगरा वाले
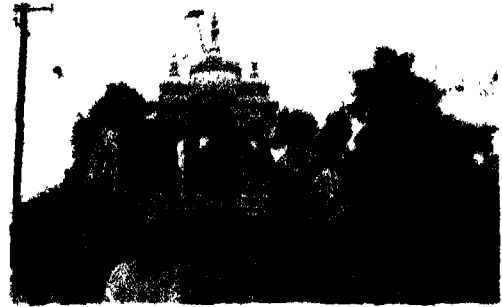
रथ यात्रा समारोह मे रथ के सारथी श्री गुलशन राज जी एवं कुबेर श्री श्री ताराचन्द जी बिलाला
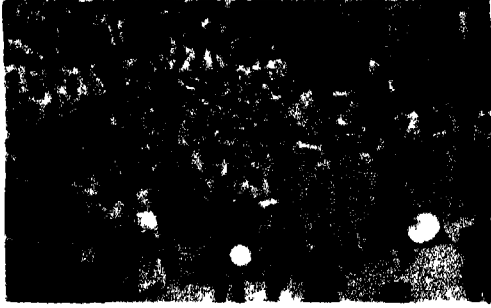
रथयात्रा में इन्द्र-इन्द्राणियों का समूह

भारत वर्षीय जैन महासभा के अध्यक्ष श्री मान निर्मल कुमार जी सेठी विद्वत संगोष्ठी मे अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी हेतु अपने विचार व्यक्त करते हुए।

जिर्णोद्धार एवं अतिशय क्षेत्र के प्रमुख द्वार एवं मन्दिर जी की मुख्य सिढ़ीयों के शिलान्यास समारोह के कार्यक्रम पर प्रकाश डालते हुए एवं महाराज श्री को चतुर्मास सांगानेर स्थापना हेतु निवेदन करते हुये कमेटी के संगठन मंत्री नरेन्द्र कुमार पाण्ड्या।

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी, सांगानेर की कार्यकारिणी कमेटी के पदाधिकारी

प्रथम पंक्ति (दांये से) निर्मल कासलीवाल (मंत्री), भंवर लाल सौगानी (कोषाध्यक्ष),
शान्त कुमार पांड्या (अध्यक्ष), भागचन्द छाबड़ा (संयुक्त मंत्री), उम्मेद मल पाटोदी (उपाध्यक्ष)

द्वितीय पंक्ति (दाये से) ज्ञान चन्द सोगानी (का. सदस्य), नरेन्द्र कुमार पाण्ड्या (संगठन मंत्री),
सुरेन्द्र बज (का. सदस्य), महावीर प्रसाद बज (प्रचार, प्रसार मंत्री),
भागचन्द नाकलीवाल (का. सदस्य), प्रेमचन्द बज (सदस्य),
रिखब चन्द पाण्ड्या (सदस्य)

आचार्य ज्ञानसागर महाराज
की
साहित्य साधना
(समालोचनात्मक विशिष्ट लेखसंग्रह)
एवं
सांगानेर जिन-बिम्ब दर्शन

प्रेरणा एवं आशीर्वाद

पूज्यमुनि 108 श्री सुधासागरजी महाराज

पू. क्षु. 105 श्री गम्भीरसागरजी महाराज

पू. क्षु. 105 श्री धैर्यसागरजी महाराज

— सम्पादक —

डॉ. शीतल चन्द जैन
प्राचार्य
श्री दि. जैन आचार्य संस्कृत महाविद्यालय, जयपुर

डॉ. रमेश चन्द जैन
अध्यक्ष
संस्कृत विभाग, वर्द्धमान कालेज, बिजनौर

— प्रकाशक —

प्रबन्धकारिणी कमेटी

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी

सांगानेर, जयपुर

प्रकाशकीय

पूज्य मुनिवर श्री 108 सुधासागर जी महाराज जब पदमपुरा से चित्रकूट कॉलोनी सागानेर (जयपुर) पधारे तो हम सांगानेर वासियो के मन मे आशा जगी कि हमारे इस अतिशय पूर्ण मंदिर के अन्दर चमत्कारी सत के चरण पडेगे। पू. मुनिवर के चरण श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र संघी जी के अन्दर 22 मई 94 को पड़े कि हम लोग फामकिन हो उठे ऐसा लगा जैसे कोई खोई हुयी निधि मिल गयी हो। महाराज श्री के आते ही आवाल-बाल-गोपाल सभी के चेहरो पर असीम आनन्द दिख रहा था। प्रतिदिन अनेक स्थान से महाराज श्री के चरणो मे नारियल चढाकर लोग अपने-अपने मंदिरो मे ले जाने का प्रयत्न कर रहे थे। जब मुनि श्री ने अपने मुख से यह कहा कि "यहाँ के दर्शन कर विस्मयकारी आनन्द आया है" तब हम लोगो के हृदय थम गये और आशा बध गयी कि महाराज जी अब कुछ दिन यहाँ विराज जायेगे। इसी बीच डॉ शीतल चन्द जैन प्राचार्य जी से चर्चा हुई तो ज्ञात हुआ कि पू. आ. ज्ञानसागर जी महाराज के 21वे समाधि दिवस पर उनके व्यक्तित्व कृतित्व पर अखिल भारतीय स्तर की विद्वत् सगोष्ठी का विचार नसीराबाद का चल रहा है। जब मैने डॉ साहब के सामने प्रत्युत्तर मे कहा कि यह गोष्ठी हम सागानेर के श्रावक कराने को तैयार है तो डॉ. साहब ने तुरन्त कहा कि इतनी छोटी सी समाज अखिल भारतीय स्तर की सगोष्ठी कैसे करा सकती है बस, मुझे डॉ साहब की यह बात चुनौती के रूप मे स्वीकारना पड़ा। फिर क्या था। हमारे सभी सहयोगी और हमारे मार्गदर्शक कमेटी के अध्यक्ष श्री धन कुमार पाड्या जी ने हमारे लिये कहा कि भक्ति ही शक्ति देने वाली है चलो महाराज जी से इस कार्य हेतु आशीर्वाद ले पुण्य कर्म का उदय था इस कार्यक्रम की स्वीकृती मिल गयी फिर तो ऐसा चमत्कार हुआ कि मानो सांगानेर देखते-देखते अपार जन-समूह से भरने लगा।

पू. मुनि श्री की अमृत वाणी प्रवचनो के माध्यम से चर्तुदिक फैलने लगी। भाव जग गये भूगर्भ स्थित यक्षरक्षित जिनबिम्बो को निकालने के पू मुनि श्री से निवेदन किया उत्तर मिला "देखो" इसी "देखो" शब्द मे हम लोग योजना बनाने लग गये फिर वह ऐतिहासिक दिन निश्चित हो गये जिन दिनो मे यक्षरक्षित भूगर्भस्थित जिन बिम्ब मुनि श्री की असीम साधना से निकलते थे। वह सौभाग्यशाली दिन था। 12 जून 1994 का प्रातःकाल, मुनि श्री के शब्दो मे "जिनबिम्ब दर्शन साक्षात् जिनेन्द्र भगवान का दर्शन है।" जब मुनिराज भूगर्भ से जिन बिम्ब लेकर पधारे तब दूर-दूर से पधारे

श्रावक-श्राविकाओं ने हर्ष विभोर होकर दर्शन किये जब अभिषेक हो रहा था तो इन्द्र देव ने आकाश से भी मूसलाधार वर्षा प्रारम्भ कर दी मानों इन्द्र भी स्वर्ग से इन जिनविम्बो के अभिषेक पर आनन्द ले रहा था।

पू. मुनि श्री की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से यह क्षेत्र पूरे भारतवर्ष में प्रसिद्ध हो गया और इस क्षेत्र की काया पलट हो गयी जिस कार्य को हम लोगों ने स्वप्न में भी नही सोचा था वह कार्य आनन-फानन में हो गया। एक साथ 13 वेदियो का निर्माण और उनकी प्रतिष्ठा यह सब जयपुर वासियो को चमत्कार ही लग रहा था। ऐसे मुनिवर के चरणों में हमारा कोटि-कोटि नमन।

त्रिदिवसीय विद्वत सगोष्ठी एवं जिनविम्ब दर्शन समारोह पू. मुनिवर के ससघ पावन सानिध्य मे सानन्द सम्पन्न हुआ। जब-जब विशाल जन समूह को उमड़ता हुआ देखा तो घबराहट हुयी परन्तु यथा नाम तथा पू. क्षुल्लक गम्भीर सागर जी महाराज एव पू. क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज ने कार्य को गम्भीरता एव धैर्य पूर्वक करने के लिये सम्बल प्रदान किया हम पू. क्षुल्लकद्वय के प्रति भी नतमस्तक है।

उक्त सभी कार्यक्रमो के सचालन मे आदरणीय डॉ. शीतल चन्द जैन प्राचार्य को भी मै भूल नही सकता जिन्होंने इस कार्य को अपनाकार्य समझा और अहर्निश अपनी सेवाएं देने को तत्पर रहे मै ऐसे कर्मठ व्यक्तित्व के प्रति आभारी हूं।

इस अवसर पर सर्व श्री निरजन लाल जी बैनाडा एवं उनके परिवार ने सर्व प्रथम अभिषेक करने का सौभाग्य प्राप्त किया और और मदिर के मुख्यद्वार की विशाल सीढ़ियो के निर्माण का शिलान्यास स्व. छुट्टन लाल जी विलाला के सुपुत्र श्री श्री ताराचन्द, राजकुमार, नवीनकुमार, सुधीरकुमार जी ने किया। साथ मे इस क्षेत्र के मुख्यद्वार का शिलान्यास श्री स्वरूपचन्द जी सजैन मासिन्स आगरा के द्वारा हुआ। अत. इन महानुभावो के प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापन करते है। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ झण्डारोहण से श्री सोहन लाल जी पाटनी गोहाटी वालो ने किया और श्री निर्मल कुमार जी सेठी अध्यक्ष महासभा एव चैनरूप जी व बाकलीवाल डीमापुर ने महासभा की ओर से 5 लाख रुपये एकत्रित कर इस क्षेत्र के विकास मे योगदान करने का आश्वसन दिया। एतदर्थ हम इन सबके आभारी है।

श्री राजेन्द्रजी जैन, राजभवन अजमेर वालो का मै विशेष रूप से आभारी हूँ, जिनके अथक प्रयासो से महाराज श्री का राजस्थान मे प्रवेशहुआ समय-समय पर उनसे हमे मार्गदर्शन मिलता रहा और इतने बड़े आयोजन मे उनका बहुत बडा सम्बल रहा।

समाज के उन श्रेष्ठिवर्यो का मै विशेष रूप से आभारी हूँ जिन्होने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हमे आर्थिक सहायता देकर सम्बल दिया।

हमारे कार्यकारणी के पदाधिकारी एवं सदस्य और सहयोगी के प्रति भी आभारी हूँ। जिनके सहयोगियों के बिना यह कार्य सम्भव नहीं था। महिला मण्डल एवं सर्वोदय मण्डल के सहयोग को भी स्मरण करता हुआ भविष्य में सहयोग की आशा करता हूं।

इस स्मारिका के सम्पादक डॉ. शीतलचन्द जैन प्राचार्य के प्रति भी आभारी हूँ और कुशल प्रिन्टर्स के मालिक श्री मुकेश जैन भी प्रशंसा के योग्य है जिन्होंने सुन्दर मुद्रण कार्य किया।

अन्त में पं. पू. संत शिरोमणि आ. विद्यासागर जी महाराज एवं उनके परम शिष्य पू. मुनिवर सुधासागर जी महाराज और पू. क्षुल्लक गम्भीर सागर जी एवं धैर्यसागर जी महाराज के चरणों में नमन्!

निर्मल कासलीवाल
मानद् मंत्री
प्रबन्धकारिणी कमेटी
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, मन्दिर संघीजी,
सांगानेर, (जयपुर)

वात्सल्य
जैन मन्दिर रोड़
सांगानेर फोन : 551025

□

सन्त शिरोमणी आचार्य विद्यासागर जी महाराज के परमशिष्य पू. मुनिवर 108 सुधासागर जी महाराज के ससंघ पावन सान्निध्य में श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी, सांगानेर (जयपुर) द्वारा आ. ज्ञानसागरजी महाराज के 21 वें समाधि दिवस पर 9 से 11 जून 94 तक आचार्य प्रवर ज्ञानसागरजी महाराज के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर अखिल भारतीय विद्वसंगोष्ठी एवं 12-14 जून 94 तक भूगर्भ स्थित जिन बिम्बदर्शन समारोह आयोजित किया गया। जिसमें लब्ध प्रतिष्ठित ख्याति प्राप्त 25 विद्वानों द्वारा आलेखों का वाचन हुआ। यह प्रथम अवसर था कि किसी एक आचार्य के सम्पूर्ण वाङ्मय पर संगोष्ठी आयोजित हुई। आगत समस्त विद्वानों की सहमति थी कि, पू. आचार्य ज्ञानसागर जी 20वीं शताब्दि के प्रथम आचार्य है जिन्होंने इस प्रकार के बहुमूल्य एवं अहिंसा, सत्य, अचौर्यादि पंचाणुव्रतों पर महाकाव्य लिखे हैं। सरल एवं अलंकारिक शैली में धार्मिक विषयों पर महाकाव्य लिखकर संस्कृत वाङ्मय में इस प्रकार का अनूठा अद्‌भुत प्रयोग है। इस प्रकार के प्रयोग विरले कवि कर सकते हैं।

संगोष्ठी की विशेषता थी कि पू. मुनिवर सुधासागर जी ने प्रत्येक सत्र में विद्वानों से विचार विमर्श किया और महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं पर मार्गदर्शन दिया। इस संगोष्ठी का आयोजन पू. मुनि श्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा एवं आशीर्वाद से हो सका। अतः उनके प्रति हम नतमस्तक है।

ज्ञातव्य है कि सम्पूर्ण लेखों को स्मारिका के साथ प्रकाशित करने का विचार था परन्तु कई विद्वानों के सुझाव थे कि ये लेख महत्त्वपूर्ण है। अतः पुस्तक रूप में प्रकाशित किये जाये। तदनुसार श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी सांगानेर के आर्थिक सहयोग से प्रकाशन हो रहा है। अतः इस ज्ञानयज्ञ के सम्पन्न कराने में जो गुरुभक्ति एवं उत्साह दिखाया वह अत्यन्त सराहनीय है। अतः अतिशय क्षेत्र के पदाधिकारी एवं सदस्य साधुवाद के पात्र हैं।

इस पुस्तक में पू. आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज की प्रमुख कृतियों पर लेख आ चुके हैं केवल वही लेख शेष है जो ग्रन्थ संगोष्ठी के समय उपलब्ध नहीं हो सके। इसमें जितने भी लेख है, वे सभी शीर्षस्थविद्वानों के द्वारा लिखे गये विषणात्मक एवं गम्भीर चिन्तन के परिणाम हैं। अतः उनके प्रति हम कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं साथ ही वर्द्धमान कालेज, बिजनौर में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष डॉ. रमेशचन्द्र जैन के विशेष आभारी है। जिन्होंने निबन्धों का सम्पादन कर पुस्तक प्रकाशन में गति दी। श्री दि. जैन आ. संस्कृत महाविद्यालय के छात्र श्री विजयकुमार, प्रद्युम्न कुमार एवं निर्मल कुमार जैन। जिन्होंने प्रेस के योग्य कापी तैयार की और प्रूफ देखने की सहायता की। एतदर्थ शुभाषी

विनीत

डॉ. शीतल चन्द जैन

सम्पादक

अध्यक्ष की कलम से

सन्त शिरोमणी आचार्य विद्यासागर जी के परम शिष्य पूज्य मुनि 108 सुधासागर जी महाराज के संसघ के पावन सानिध्य में त्रिदिवसीय अखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी एवं यक्षरक्षित भूगर्भ स्थित जिनबिम्ब दर्शन समारोह दिनांक 9 जून से 14 जून 1994 तक आयोजित हुआ। इस आयोजन की हमारे लिए स्वप्न में भी कल्पना नही थी क्योंकि छोटे से कस्बे में महान प्रभावकारी संन्त का निर्वाह करना हम जैसे साधन-हीनश्रावकों के लिए दुष्कर कार्य था। परन्तु गुरु भक्ति ने इतने विशाल कार्य को सहज भाव मे परिणत कर दिया। पूज्य मुनि श्री के दर्शन मात्र से इस क्षेत्र के समस्त कार्य सानन्द सम्पन्न हुये।

त्रिदिवसीय विद्वत संगोष्ठी का आयोजन ऐतिहासिक था ऐसे महान आचार्य जो इस शताब्दी के महान चिन्तक और विचारक थे उनके व्यक्तित्व और कृतित्व पर लगभग 25 विद्वानो द्वारा निरन्तर 9 से 11 जून तक उनके साहित्य पर चर्चा होना और हजारो श्रावको द्वारा रूचि पूर्वक सुनना यह हम सबके लिए आश्चर्यकारी था। दिनांक 12 से 14 जून 1994 तक इस मन्दिर के भूगर्भ मे स्थित यक्षरक्षित जिन चैत्यालय के निकालने का दृश्य इतना विस्मयकारी और रोमांचक था कि जिसको देखकर उपस्थित जन समूह गद्गद् हो गया। मैने इस वृद्धावस्था में पहली बार इतना जन समूह देखा यह भी कम आश्चर्यकारी नही था। सब कार्यक्रम पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज की प्रेरणा एव उनके मंगलमय आशीर्वाद से सम्पन्न हो सके। इस क्षेत्र मे जो वेदियाँ बनी थी और उनमे विराजमान जो प्रतिमाएँ थी उनमें कई विसंगतियाँ थी उनको व्यवस्थित करने मे पूज्य मुनि श्री का मार्गदर्शन मिला वह चमत्कारी था। क्योंकि इतनी विशाल प्रतिमाएँ एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाना और फूल जैसे उठ जाना और इतने कम समय मे कि जो कार्य छह माह मे होता वह छः दिन मे हो गया इस क्षेत्र की काया पलट को देखकर पूरा जयपुर और आस-पास की जनता दाँतो तले अंगुली दबाने जैसी बात आपस में करती थी यह सब वस्तुतः मुनिश्री का ही चमत्कार है। अतः ऐसे मुनिराज के चरणो मे त्रिबार नमोऽस्तु करता हूँ।

उक्त सभी कार्यक्रमो मे हमारे प्रसिद्ध महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. शीतल चन्द्र जैन का भी सराहनीय योगदान रहा जिनका हम किन्ही शब्दों मे आभार व्यक्त नही कर सकते हैं। इस समारोह की सम्पन्नता में हमारे सहयोगी पदाधिकारी और सदस्यगण भी धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होने कंधे से कंधा मिलाकर यह कार्य सम्पन्न किया।

सांगानेर का सर्वोदय मण्डल और महिला मण्डल को भी मेरी शुभकामनाऐं है। इस समारोह को गौरान्वित करने वाले श्री निरंजन लाल जी बैनाडा आगरा एवं उनका परिवार, श्री तांराचन्द जी विलाला जयपुर, श्री स्वरूपचन्द्र जी जैन, मारसंस आगरा, श्री भंवर लाल जी सरावगी, श्री सोहन लाल

जी पाटनी गोहाटी, गुलसनराय जी गाजीयाबाद वाले श्री मदनलाल जी पाटनी जयपुर श्री निर्मल कुमार जी सोनी अजमेर, श्री राजेन्द्र कुमार जी (राजभवन) अजमेर, श्री भागचन्द जी नसीराबाद इत्यादि महानुभावों का मैं हृदय से आभार मानता हूँ और आशा करता हूँ की भविष्य में क्षेत्र के लिए सभी का सहयोग बना रहेगा।

अन्त में विद्वत गोष्ठी में समागत आदरणीय विद्वतजनो को विशेष कृतज्ञता ज्ञापन करना चाहता हूँ कि जिनके उद्बोधन से पूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के व्यक्तित्व-कृतित्व पर संगोष्ठी सफल रही, अतः उन सुधी जनों को मैं प्रणाम करता हूँ। स्मारिका के प्रकाशन में सम्पादक और निदेशक महोदय के प्रति आभार मानता हूँ—

धनकुमार पाण्ड्या

अध्यक्ष

कार्यकारिणी कमेटी।

पाण्ड्या भवन
जैन मन्दिर के पास, जैन मोहल्ला,
सांगानेर, फोन · 550752, 550832

□

श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघी जी

सांगानेर

कार्यकारिणी कमेटी

नाम	पद	पता	फोन
धनकुमार पाण्ड्या	अध्यक्ष	"पाण्डया भवन", जैन मोहल्ला सिटी बस स्टेण्ड के पास, सांगानेर	फोन 550752, 550832
उम्मेद मल चौधरी	उपाध्यक्ष	'चौधरी भवन' सांगासेतु रोड, सांगानेर	फोन : 550891
निर्मल कासलीवाल	मानद् मंत्री	'वात्सल्य सदन' जैन मोहल्ला, सिटी बस स्टेण्ड के पास, सांगानेर।	फोन : 551025
भागचन्द छाबड़ा	संयुक्त मंत्री	'छाबड़ा भवन' संघीजी जैन मन्दिर के पिछे, सांगानेर।	फोन 552789
भंवरलाल सोगाणी	कोषाध्यक्ष	सोगाणी सदन, पटेल मार्केट के पीछे, सांगानेर।	
महावीर प्रसाद बज	प्रचार-प्रसार सूचना मंत्री	जैन मन्दि रोड, सिटी बस स्टेण्ड के पास, सांगानेर।	फोन : 550576
नरेन्द्र पाण्ड्या	संगठन मन्त्री	'पाण्ड्या भवन' जैन मोहल्ला, सिटी बस स्टेण्ड के पास, सांगानेर	
भागचन्द बाकलीवाल	कार्यकारणी सदस्य	गणेश कालोनी, सांगासेतु रोड, सांगानेर।	फोन : 552033
सुरेन्द्र बज	" "	जैन मन्दिर रोड, सांगानेर।	फोन : 550576
ज्ञान चन्द सोगाणी	" "	जैन मन्दिर संघीजी के सामने, सांगानेर।	
राकेश रांवका	" "	जैन मोहल्ला, सिटी बस स्टेण्ड के पास, सांगानेर।	फोन : 550841 घर, 552880 काया.

साधारण सदस्य—(1) श्री रतन लाल छाबड़ा (2) श्री लक्ष्मीनारायण सोगानी (3) श्री प्रेमचन्द बज (4) श्री रिखबचन्द पाण्ड्या (5) श्री शरद कुमार रावमा (6) श्री सूरजमल सोगानी (7) श्री सुरजमल गोधा (8) श्री सुधेन्द्र सोगानी (9) श्री सुरेन्द्र पाण्ड्या (10) श्री राकेश जैन (बैंक वाले) (11) श्री कपूर चन्द बिलाला (12) श्री प्रदीप अजमेरा (13) श्री अशोक पाटोदी (14) श्री बोदीलाल बैनाडा (15) श्री सुरेश कासलीवाल (16) श्री प्रकाश कासलीवाल (17) श्री ताराचन्द जैन नेवटावाले (18) श्री राजेन्द्र गंगवाल (19) श्री सुरेश पवालियावाले

कार्यक्रम सहयोगी कार्यकर्ता—(1) श्री गंगाराम जैन मोजमाबाद वाले (2) श्री राकेश बोहरा लाखना वाले (3) श्री कैलाश बोहरा (4) श्री विमल बज (5) श्री निर्मल बोहरा (6) श्री ज्ञानचन्द बेनाड़ा (7) श्री केलाश बेनाड़ा (8) श्री बाबूलाल नेवटावाले (9) श्री जितेन्द्र अजमेरा (10) श्री कपूरचन्द जैन, प्रेमचन्द जैन, महेन्द्र कुमार जैन चोरू वाले, (11) श्री अशोक पाटनी चोमूवाला, सांगानेर (12) श्री नरेन्द्र बज, (12) श्री अनिल बज, प्रकाश बोहरा, कमल अजमेरा इत्यादी

कार्यक्रम में तन-मन-धन से सहयोग देने वाले श्रेष्ठीगण

1. श्री सोहन लाल पाटनी, जयुपर (2) श्री निर्मल कुमार सोनी, अजमेर (3) श्री भागचन्द जैन, नसीराबाद (4) श्री हंसराज जैन, जयपुर (5) श्री प्रकाश चन्द कोठ्यारी, जयपुर (6) श्री ज्ञानचन्द झांझरी, जयपुर (7) श्री केलाशचन्द मुकेशकुमार छाबड़ा, राणोली (8) श्री सुन्दर लाल, राजकुमार छाबड़ा, राणोली (9) श्री बिरदीचन्द , जयपुर (10) श्री मूलचन्द लुहाड़िया, किशनगढ़ (11) श्री मदनलाल पाटनी, जयपुर (12) श्री भागचन्द बाकलीवाल, जयुपर (13) श्री पूनम चन्द बेनाडा, जयपुर (14) श्री प्रकाशचन्द पाण्ड्या, दौसा (15) श्री नन्दकिशोर महावीर प्रसाद पहाड़िया, जयपुर (16) श्री कन्हैया लाल चम्पा लाल पहाड़िया, जयपुर (17) श्री गोपी चन्द ताराचन्द बिलाला, जयपुर (18) श्री राजमल रतनलाल कासलीवाल, जयपुर (19) श्री स्वरूप चन्द पाण्ड्या बिल्टीवाले, जयपुर (20) श्री प्रवीण कुमार गुलशनराय जैन, गाजियाबाद वाले जयपुर (21) श्री निरन्जन लाल बेनाडा, आगरा (22) श्री राजेन्द्र कुमार जैन, अजमेर (23) श्री गजेन्द्र कुमार जैन जयपुर (24) श्री चिरं लाल चिन्तामणी बज जयपुर (25) श्री इन्द्रचन्द श्रीसुमेर मल जैन, जयुपर (26) श्री रिखब चन्द नवीन कुमार जैन, आगरा (27) श्री नत्थमल निर्मल जैन, जयपुर (28) श्री मथुरा प्रसाद जैन, आगरा (30) श्री पदम चन्द कुमार जैन, आगरा (31) श्री गोपाल चन्द पहाड़िया, जयपुर (32) श्री विशम्भर नाथ कपूर चन्द जैन, आगरा, (33) श्री रूपचन्द कटारिया, दिल्ली (34) श्री गोपीचन्द- सुरेन्द्र कुमारी बिलाला जयपुर (35) श्री उमरावमल जी श्री शरद कुमार जी गोदिका, जयपुर (36) श्री कैलाश चन्द रमेश चन्द जैन, निवाई (37) श्री युवराज जैन, अजमेर (38) श्री सरदार मल जैन, जयपुर (39) श्री महेन्द्रकुमार जैन, दिल्ली (40) श्री विमल चन्द भोंच, जयुपर (41) श्री पोपट लाल कोठ्यारी, सूरत (42) श्री ज्ञान चन्द रावका, दुर्गापुरा (43) श्री रिषभ चन्द जैन, जयपुर (44) श्री ताराचन्दजी राजकुमारजी बिलाला, जयपुर (45) श्री टीकमचन्दजी माणक चन्दजी गट्टी, टोंक (46) श्री प्रेमचन्द महेन्द्र कुमार पीपला वाले, जयपुर (47) श्री मोती लाल प्रेम चन्द चंणानी वाले , सांगानेर (49) श्री भंवरलाल बाबूलाल जैन, जयपुर (50)श्री ब्रह्मचारिणी जयमाल मेरठ यू पी. (51) श्री धनकुमारजी रिखभ चन्दजी पाण्ड्या, सांगानेर (52) श्री कपूरचन्द लेख राज गदिया, अजमेर (53) श्री घासीलालजी कमलेश कुमार चणानी वाले

सांगानेर (54) श्री सतेन्द्र कुमार जैन बिल्टी वाले, जयपुर (55) श्री भागचन्द सोनी केकड़ी (56) श्री माणकचन्द गंगवाल, जयपुर (57) श्री हरकचन्द गंगवाल, गोहाटी वाले, जयपुर (58) श्री महावीरप्रसाद रारा गोहाटी वाले (59) श्री पदम चन्द पंकज कुमार जैन, जयपुर (60) श्री गोपी चन्द जैन, मालवीय नगर (61) श्री पदम चन्द जैन, मालवीय नगर (62) श्री सुशील कुमार सुनील कुमार, जयपुर (63) श्री सुमत कुमार जैन, जयपुर (64) श्री नन्दलाल जैन, जयपुर (65) श्री पदमचन्दजी कैलाशचन्द जी भौंसा, जयपुर (66) श्री ताराचन्द नेवटा वाले, सागानेर (67) श्री लालचन्द दिनेश कुमार जैन, बड़ोत (68) श्री राजेन्द्र कुमार जैन, कलीवाले, बडोत (69) श्री सुबोध कुमार जैन, दिल्ली (70) श्री वीर कुमार रावंका, ब्यावर (71) श्री शिखर चन्द जैन, आगरा (72) श्री राज कुमार जैन, श्याम नगर, जयपुर (73) श्री उम्मेद मल चौधरी नावावाले, सांगानेर (74) श्री निहाल चन्द बड़जात्या, अजमेर (75) श्री हीरालाल जैन, अजमेर (76) श्री बाबू लाल पाण्ड्या, जयपुर (77) श्री जमनालाल, बिरदी चन्द, चिरलाल , जयपुर (78) श्री रमेश कुमार मूलचन्द दीवान, जयुपर (79) श्री राजेन्द्र कुमार गंगवाल, निमोडिया वाले, सांगानेर (80) श्री निर्मल कुमार अनिल कुमार प्रकाशचन्द कासलीवाल, सांगानेर (81) श्री भवरलाल पुखराज जैन बैद, किसनगढ़ मदनगंज (85) श्री पालजी कटारिया, केकड़ी (86) श्री संतोष कुमार चित्रादेवी, इन्दोर (87) श्री मति शान्ति देवी बेनाड़ा W/o श्री बोदन लाल बेनाडा सांगानेर (88) श्री कपूर चन्द गोपी चन्द महावीर प्रसादजी चोमू बाग, सांगानेर चोमू वाले (89) श्री मती सरोज देवी पत्नी श्री सुरेन्द्र कुमार जैन, (बाकलीवाल), जयपुर (90) श्री प्रकाश चन्द चौधरी, नावां वाले (91) श्री लक्ष्मी नारायण सौगानी, सांगानेर (92) श्री भंवर लालजी सत्येन्द्र कुमारजी सौगाणी (93) श्री मती धापू देवी माता श्री प्रेमचन्द बज महावीर प्रसाद बंज, सांगानेर (94) श्री मती कान्ता देवी पत्नी श्री भागचन्द बाकलीवाल, पीपला वाले, सांगानेर (95) श्री अशोक कुमारजी पाटोदी (96) श्री सुरेन्द्र कुमार बज, सांगानेर (97) श्री भागचन्द छाबड़ा, सागानेर (101) मोहनलाल कटारिया, केकड़ी (102) श्री मती जयमाला देवी सौगानी, जयपुर (103) श्री हुलास चन्द जी सबलावत, जयपुर

सांगानेर नगर में स्थित दिगम्बर जैन मन्दिरों की सूची

1. श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर, संघी सागानेर
2. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर (बधिचन्दजी का) घेर का मन्दिर
3. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर ढाई पेढ़ी का,
4. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर गोदिकान का
5. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पाटनियो का
6. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर ठोलियों का
7. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर लुहाड़ियो का
8. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ चोमू बाग, सांगानेर
9. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर चित्रकूट कॉलोनी, थाना-सांगानेर
10. श्री दिगम्बर जैन मन्दिर शान्तिनाथजी स्वामी नसियां

पूज्य मुनि 108 सुधासागर जी महाराज

(यक्षरक्षित भूगर्भ स्थित जिन बिम्बदर्शन के समारोह के अवसर पर 12 जून, 94 को प्रात: 8-30 बजे चमत्कारी प्रतिमाओं के निकालने के बाद पू. मुनि श्री द्वारा प्रवचन)

पंच परमेष्ठी भगवान की जय आचार्य श्री गुरूवर विद्यासागरजी कीजय चैत्यालय जिन विम्बों की जय।

अब दुबारा मानव जन्म मिले।

फिर से यही जिनालय जिनवर शरण मिले ॥

बहुत दिनों की पड़ी हुई ये पंक्तियाँ आज जब एक आलौकिक चैत्यालय को अपनी श्रद्धा भक्ति से नमन करने का परिणाम आया। उस समय उस गुफा के अन्दर इन पंक्तियों के साथ नमस्कार करने का परिणाम आया।

कहते हैं लोग कि पंचम काल में साक्षात जिनेन्द्र देव का अभाव होने से जिन धर्म का अभाव हो गया। कुछ लोगों ने तो यहाँ तक कि जिनविम्ब महत्व को न समझ करके जिनेन्द्र देव की पूजा करना बन्द कर दिया। और बल्कि अपने उपास्य स्थानों में भी जिनबिम्ब की स्थापना का निषेध कर दिया। और वे जिनबिम्बों से रहित अपने उपास्य स्थान को बनाकर के अपनी जिन्दगी का सबसे बड़ा दुर्भाग्य कर रहे हैं। आज मुझे इसकी अनुभूति हुयी। अभीतक जो मैं कहता था, वो शास्त्रों में पढ़ा करता था। अभी तक जो मैं कहता था, गुरु परम्परा के द्वारा जो संस्कारित किया गया था। अभी तक जो कहता था, वो अपनी अन्दर की श्रद्धा भक्ति से कहता था।

मेरे अन्दर श्रद्धान था आगम के ऊपर भगवान महावीर के बाद जिनेन्द्र देव की वाणी की जो परम्परा चलती आयी उसके ऊपर विश्वास था। इस विश्वास रास्ता के माध्यम से कहता था कि पंचम काल में स्थापना निक्षेप से भी भगवान् की स्थापना करके अगर उनकी पूजा की जाय तो वीरसेन स्वामी के कहे अनुसार कह देता था कि निधत्ति निकाचित कर्मों का क्षय हो जाता है। वीर सेन स्वामी को बीच में ले लेता था। मैं अपनी तरफ से कुछ नही कह पाता था।

लेकिन आज वीरसेन स्वामी की कोई आवश्यकता नहीं, मैं अपने अनुभव से कहता हूं कि जिनेन्द्र देव के बिम्ब के दर्शन करने से निधत्ति निकाचित कर्मों का क्षय होता है, होता है, होता है, होता है।

आगम की वाणी जब तक अनुभव मे नही आती तब तक हाथ जोड़कर स्वीकार कर लेते हैं। प्रभु आपने जो कहा वो सत्य है। लेकिन अनुभव की कसौटी से सत्य की कसौटी में लाने का साहस नही कर सकता। ये सम्यग्दृष्टि या धर्मात्माका या भव्य जीव का या जिसको अपने संसार की भीरता प्रकट हो गयी है। उसके अन्दर से परिणाम आता है। नेमिचन्द्र आचर्य कहते हैं—

"जब तक दृश्य न हो जाय अदृश्य वस्तु तब तक हाथ जोड़ कर स्वीकार करते जाना तुम्हारा सम्यग्दर्शन है। और जब वह अनुभव आ जाय और अनुभव मे कुछ अन्यथा प्रीतीति हो तो फिर उसका रूप कुछ अलग ही कहा है" शास्त्रों में ।

लेकिन आज उस गुफा के अन्दर प्रवेश करने के बाद क्या कहें कि जिन प्रतिमाओं के गुफाओं के दर्शन करने के लिए आज पंचम काल में देवताओं का अभाव है ?

लेकिन कुछ प्रतिष्ठापाठों में ऐसा भी कहा है कि जिस जगह यदि सच्चे सम्यग्दृष्टि अपना मस्तक झुका देते हैं। उस समय देवता लोग अपना यथार्थ रूप लेकर भली प्रकट न होवें लेकिन कोई अन्यथा रूप लेकर जरूर प्रकट होते हैं। यही शास्त्रों में वर्णन है।

वह मैं आज सोचता था कि वह देवताओं को अन्यथा रूप लेने की क्या आवश्यकता है। आज वह आगम की वाणी भी श्रद्धान में अतनी मजबूत हो गयी श्रद्धान क्या अनुभव में हो गयी कि पंचम काल में देवता साक्षात रूप लेकर नही आयेंगे। लेकिन कोई न कोई दूसरा रूप लेकर आकर के अपने आगम की सत्यता को प्रमाणित करने के लिए वो कुछ अपनी सीमाके अनुसार कार्य करते है।

वह दिन भी याद आता है महापुराण का जब अवलोकन किया था भगवान आदिनाथ को निर्माण की उपलब्धि हो गयी और निर्माण की उपलब्धि होने के बाद भरत चक्रवर्ती कहता है कि अब मेरा क्या होगा। भगवान आदिनाथ चले गये अब हमें कौन मार्गदर्शन देगा आने वाली पीढ़ी भूल जायेगी क्योंकि भगवान आदिनाथ कह कर गये कि अब मुझ जैसा कोई तीर्थंकर पैदा हो गातो करोड़ो सालों पर्यन्त होगा, पचास करोड़ सागर का अन्तराल रहेगा दूसरे तीर्थंकर को उत्पन्न के लिए इसके बीच जन मानस का क्या होगा?जनता का क्या होगा? यह वेदना उनके लिए थी। गणधर परमेष्ठी वृषभसेन आदि जो गणधर थे। उनसे पूछने पर—

उन्हें सात्वना मिली तीर्थंकर चले जाने से धर्म नही चला जाता तीर्थंकर चले गये। इसलिए धर्म चला गया हो ऐसी बात नही धर्म तो अनादि अनन्त रूप से सनातन है प्रवाह रूपमान है। उसको कौन ले जा सकता है। धर्म की शरण में आकर के इन तीर्थकरों ने तो अपनी आत्मा का कल्याण कियाहै। तीर्थंकरों का धर्म नहीं होता, तीर्थंकर धर्म को नही चलाते। तीर्थंकर धर्म की शरण में आकर के अपनी आत्मा का कल्याण करके अपने को बता जाते हैं कि मैंने इसकी शरण मे आकर के मैंने अपना कल्याण किया इसलिए "चत्तारि शरणं पव्वज्जामि" मैंने इनकी शरण में गया। और इन की शरण में जा करके अपने आप में वह हो गया जो ये थे।

इसलिए आप लोग भी आये तो अपन उनके द्वारा निर्देशित मानकर के ये मान लेते हैं कि ये धर्म महावीर का है ये धर्म आदिनाथ का है। वस्तुतः धर्म अनादि अनन्त इस धर्म की शरण में आकर के तीर्थंकर जैसी महान आत्मायें अपना कल्याण कर जाती हैं। हे चक्री ! तो भी मैं क्या करूं तब उन्होंने कहा था कि धर्म की स्थापना करने में कोई बाधा नहीं एक पौदगलिक परमाणुओं से बनी हुई काया में तो चेतना आत्मा बैठी थी। जिसे तुम भगवान कह रहे थे। उस भगवान आत्मा का तुम्हें

दर्शन नहीं हो रहा था। भगवान आत्मा को तुमने देखा नहीं था। पुदगल वर्गणाओं से एकत्र की हुयी वर्गणाओं में एक भगवान् बैठा था। ऐसा आप भी मान रहे और आगे इन्हें भगवानों ने उपदेश दिया है कि अब स्थापना निक्षेप से आप जिनबिम्ब की स्थापनाकरें। और जिनबिम्ब की स्थापना करके। इसके लिए आगे वाले तीर्थंकरों के बीच के काल में इस धर्म को बतादे की ये धर्म लोप को प्राप्त नहीं हुआ। अभी धर्म आगे और प्रार्दुभूत होगा। और अतीत में भी हुआ उस समय गणधर परमेष्ठी के निर्देशन में साधारण निर्देशन नही आज कुछ लोगो को विकल्प होता है कि जिन बिम्ब या जिन चैत्यालय का उपदेश दिगम्बर साधु दे सकता है या नहीं उन्हें कुन्द-कुन्द स्वामी की चारित्र चूलिका का प्रसंग याद लाना चाहिए उसमें स्पष्ट कहा है कि जब साधक अपनी शुद्ध उपयोग की भूमिका से बाहर आता है और शुभ उपयोग की भूमिका में प्रवृत्त होता है। यदि उस समय कोई अनुगृहीत व्यक्ति हाथ जोड़कर सामने खड़ा हो और कल्याण की याचना कर रहा हो तो उस समय साधु का कर्त्तव्य होता है कि मार्ग दर्शन देवें। मार्ग दर्शन दिखाये कि ये मार्ग है। इस प्रकार गणधर परमेष्ठी एक महान ऋद्धि को छोड़कर के बाकी सभी ऋद्धियाँ गणधर परमेष्ठी के पास होती है। केवल ज्ञानको छोड़कर के सब सम्पन्न थे। उस समय उन्होने निर्देश दिया कि हे चक्री ! जिन बिम्ब की स्थापना कर, तो फिर मैं आदिनाथ की प्रतिमा की स्थापना करूं ! बोले नही।

बोले चौबीस भगवान की स्थापना करो। अभी चौबीस भगवान तो हमने देखे नहीं। देखें नहीं तूने ? जे मैंन देखे हैं। भगवान ने देखे होंगे। मानकर के कहा तो चौबिस की स्थापना करूं, नही इसके पहले भी हुये इसके बाद भी होंगे जब त्रिकाल चौबीस की स्थापना कर उस समय साक्षात आदिनाथ भगवान के गणधर से उपदेश पाकर प्रथम चक्रवर्ती आद्य श्रावक आपके अग्रज ने प्रथम जिन चैत्यालय की स्थापना की थी ऐसा आगम में हमने पढ़ा है। और उसमें बड़े-बड़े विभिन्न प्रकार के दृश्य अवलोकित किये। "भरतेश वैभव" में रत्नाकर कवि ने उन प्रतिमाओं के महत्व को कहा है। मात्र पढ़कर लगता शायद ये चौथे क़ाली की बाते होगी । पंचम काल में ऐसा सम्भव नहीं है पंचम काल में ये सब कुछ ठीक नही। ये तो सब चौथे काल की बात है।—जैसा आप लोग कह देते हैं कोई भी बात विशेष हुई तो किस पर टाल देतें हैं। ये तो चौथे काल की बात है। बन्धुओं धर्म के लिए न कोई चौथाकाल है न पंचम काल है। धर्म के लिए जहाँ पर भक्ति का मस्तक है। वही पर धर्म का ध्वजा है। भक्त का मस्तक चाहिए धर्म के लिए। धर्म के लिए काल की कोई आवश्यकता नहीं है। धर्म कभी काल में बन्ध कर नहीं रहा। काल तो आज भी चाहे तो इस काल मे धर्म उ़त्पन्न कर सकते हैं। शक्ति आपके उपादान में नही है कि अपने धर्म को झेल सकें। धर्म को झेलने की क्षमता चाहिए। धर्म तो आज भी वहीं है। वहीं था। वही रहेगा।

लेकिन आप अपने अन्दर आस्था में अपने अन्दर कहीं न कहीं उपादान में अपने अन्दर कहीं न कहीं भाषा भौतिकता वैज्ञानिकता का संस्कार इस प्रकार हो गया है जिस के माध्यम से इन अदृश्य वस्तु के ऊपर अपने अन्दर सच्चे मन से आस्था नहीं जगती। इस कारण से अपन कह देते हैं कि ये शास्त्रों की बात है चौथे काल की बात है। पंचम काल में तो ये सब काल्पनिक जैसा प्रतीत होता है।

आप कहते थे। तो हम आज तक उसे चुप होकर कर सुन लेते थे। भैया हो सकता । कैसे क्या करूँ मैंने भी तो अभी अनुभव नहीं किया।

जब आज वहाँ गया और तो देखकर के कि बड़े नियम कानून है बड़े नियम पद्धति है, सहज में नहीं रोक लगती है। लगनी चाहिए। कौन है? अन्दर प्रवेश किया, प्रवेश करते ही क्या था? कौन था? कैसा था? यह सोचने का मौका हमें नहीं मिला। और सोच भी नहीं रहा हूँ, सोचूंगा भी नहीं क्योंकि अनुभव की बात पर कुछ सोचा नहीं जाता। वहाँ पर एक दृश्य देखा आज तक बहुत सर्प देखें। लेकिन ऐसा सर्प मैंने अपनी जिन्दगी में पहली बार देखा। जिन प्रतिमाओं को उठाकर अभी दिखाया जा रहा था। इन प्रतिमाओं के तीनों डिब्बों के ऊपर विराजमान था।

मैं तुरन्त रूक गया रुकने के बाद मैंने सोचा देखूँ तो भाई ये कौन है। देखने के बाद उसकी आकृति में कुछ अन्तर आते गये। खुद रूप ऐसे बदले जो आखों को आश्चर्य चकित लगे।

उसके बाद मैंने क्षुल्लक जी महाराज द्वारा पुस्तक मगंवाई कुछ लौंग मगाये। उसके बाद अपनी भक्ति प्रदर्शित कि अपना ह्रदय रुधा। अब उसके वहां से ध्वनि हुयी। कहां से आवाज आयी कहां से क्या हुआ? मेरे ज्ञान में नही है। और मेरी स्मृति में भी नही है। बस इतना आया की बहुत जल्दी आगये। एक ध्वनि ऐसी कानों में पढ़ी बहुत जल्दी आगये।

इस चैत्यालय को ऊपर लाने के लिए कम से कम पाँच साल का अन्तराल अपेक्षित है। भविष्य में ध्यान रखें संकेत कर दिया आप को।

भगवान आ गया तो आ गया अब क्या करूँ मैं देखता रहा, ठीक है। यदि आपकी मर्जी हो तो तीन साल और इन्तजार करें। लेकिन पक्का है कि मैं दर्शन करके दर्शन कराके जाऊगा। मैंने अपना दृढ़ संकल्प रखा। मैं थोड़ा हटी हूँ। मैं भी बहुत दृढ़ संकल्पी हूँ। मैंने भी वहाँ भगवान से कहा कि तीन साल अन्दर इन्तजार करने को तैयार हूँ। मगर ले कर जाऊंगा।

लेकिन धर्म और धर्मात्माओं के बीच की जो बाते होती है और धर्म और धर्मात्माओं के जो अनुभव की बात होती है वो तो मात्र एक मर्यादा के लिए होती है। उसके लिए कोई कानून नियम नहीं होता । और वह इतने नजदीक पर अपने आप में न जाने कैसे गया वही पर वो जाकर के यन्त्रो के पीछे चला गया। यन्त्रों के पीछे जाने के बाद मैं गया मैं डरा नही। डरने का तो कोई सवाल ही नहीं, डरातो में वैसे ही नहीं। वहाँ भगवान के चरणो में जाने से तो डरने का कोई सवाल नहीं मैं अकेला था। और वहाँ जाने के बाद वहाँ मुझे तीन प्रतिमाये दिखी। मैं रूक गया मैंने कहा पूरा कहाँ है में आधा देखकर भी नहीं जाऊंगाँ। वह यन्त्र के पीछे से निकल गया, नीचे मे नही जा पाया। उस तल घर में वह प्रवेश किया। मुझे लगता है। उसने यह कहा अभी और नीचे उतरो अभी बहुत ऊपर बैठे हो। मैं नीचे उतरा नीचे तीनों प्रतिमाओं के एक साथ दर्शन हुये। बड़ा आलोकित आनन्द उस गुफा का है कोई डर नही लगता बन्धुओं कोई भय नही लगता। लेकिन यदि कोई थोड़ा सा अन्दर खटका हो तो व्यक्ति लोटकर नही आ सकता ये गुफा चमत्कारी है, याद रखना बन्धुओं लोट के भी नहीं आयेगा।

उसमें ऐसे रास्ते हैं कि उसमें तुम भटक जाओगे। तुम्हारा पता नहीं चलेगा।

उसके बाद पूरा दर्शन होने के बाद एक स्थान में जाकर वह अन्दर चला गया। और मैंने कहा में अन्दर जाने का और प्रयास किया लेकिन गुफा का दरवाजा अन्दर है। लेकिन उसके आगे शांतिसागर महाराज का आलेख है। हालांकि वह आलेख मिट चुका है। बहुत भद्दा हो गया है। बहुत महीन अक्षर है। उसके थोड़ा सा आभास होता है कि यहाँ लिखा गया था। उस पर उन्होंने लेख किया था कि इससे आगे जाने का साहस कोई साधक न करें और उसने भी आगे रास्ता बताने से इन्कार कर दिया। इस लिए में उससे आगे नहीं गया। वहाँ पर अपना चैत्यालय था। वहीं से लेकर के यहाँ पर आ गया।

देर इसलिए लग गयी कि में दर्शन करने में इतना विभोर होगया कि मैं भूल गया इन प्रतिमाओं को ऊपर ले जाना है या नहीं। देर और किसी कारण नहीं हुई। बैठे गया वहीं थोड़ी देर नहीं आता तो शायद ग्यारह बारह बज जाते उस समय निकलते। बहुत आनन्द में बैठा था। बैठे-बैठे मे दर्शन करता रहा डिब्बे खोलकर के में दर्शन करता रहा और सारी प्रतिमाओं को देखकर के नमस्कार किया। भगवान को एक टक देखता रहा। बहुत देर बैठने के बाद थोड़ा सा ध्यान आया। किसी ने आवाज लगायी बाहर से महाराज! महाराज महाराज! इन्होंने सोचा क्या पता ये तो अभी महाराज तो आचार्य नहीं, भीतर गुफा में जान ने के लिए आचार्य होना आवश्यक है। धर्म प्राप्त करने के लिए आचार्य पद का नियम नहीं है। जैन दर्शन तो धर्म में प्रवेश करने के लिए आचार्य पद को त्याग करने के लिए कहता धर्म में प्रवेश करने के लिए आचार्य पद की कोई आवश्यकता नहीं है। अवधिज्ञान मन:पयर्य ज्ञान मोक्ष मार्ग में कोई साधक नहीं है। उसी प्रकार आचार्य उपाध्याय मोक्ष प्राप्त करने में कारण नहीं है। जब भी सल्लेखना लेता है साधक मोक्ष प्राप्त करता है तो आचार्य उपाध्याय पद छोड़ना पड़ता है। जब आत्म धर्म प्राप्त करने के लिए आचार्य उपाध्याय पर की आवश्यकता नही तो परमात्म धर्म प्राप्त करने के लिए आ.उपा.पद की कोई आवश्यकता नहीं मात्र इसमें आवश्यकता है साधना की मात्र बस इसे आवश्यकता है शुद्धता की मात्र इसमें आवश्यकता है मन शुद्धि वचन शुद्धि काय शुद्धि की। इसमें आवश्यकता है जिनबिम्ब जिनेन्द्र देव के साक्षात दर्शन करने रूप परिणाम की, जिनबिम्ब के प्रति जिनेन्द्रदेव के दर्शन करने की क्षमता जिन आंखों में होगी। वे आखें इन प्रतिमाओं दर्शन कर सकेगी और वहाँ से लाकर के तुम्हें भी दर्शन करा सकेगी। और जिनको ये संदेह होगा कि जिनेन्द्र देव तो हैं नहीं ये तो पाषाण है। उनकी आँखें वही समाप्त हो जायेगी। वे आंखें लेकर जायेंगे और आंखें बन्द करके लोटेंगे। ये क्षमता चाहिए हमारे धर्म के लिए हमारे धर्म के लिए, कोई पदों की आवश्यकता नहीं। यदि पंडित जी मात्र......क्योंकि ... अभाव हो सकता है बन्धुओं ये अल्प ज्ञान का प्रतीक है ये विशालता का प्रतीक नहीं है। विशालता का प्रतीक हमारे धर्म शास्त्रों में हमारे जिन बिम्बों के दर्शन करने के बाद जब तुम सच्चे मन से करोगे तो जिन बिम्ब नहीं जिनेन्द्र देव बोलेंगें।

मैंने जिनबिम्ब को जिनबिम्ब कभी मानता ही नहीं बोलता भली आपके सामने लेकिन जब मस्तक झुकाता हूँ तो यर्थात् कहता हूँ कि जिनबिम्ब मान कर कभी मस्तक नही झुकाया। मैंनेतो इन प्रतिमाओं को जिनेन्द्र देव मान कर मस्तक झुकाया।

क्योंकि समन्तभद्रस्वामी ने कहा है कि "सदेव ये वही है जो तुम्हारे लिए ग्राह्य थे"। स्वामी की वाणी सदेव वही है। उसे जैसे नहीं कहा अर्हन्त जैसे है ऐसा नहीं कहा सदेव में वही अहर्न्त है। जो समवशरण में विद्यमान होते हैं।

वही अर्हन्त है ऐसी आगम की वाणी को तुम जब भी नमस्कार करो बन्धुओं मंदिर में जाकर के देखना तो जिन बिम्ब जब मस्तक झुकाओ तो कहना की मैं तो जिनेन्द्र देव को नमस्कार कर रहा हूं। जिनबिम्ब को नमस्कार मत करना और जिन बिम्ब को जिनेन्द्र देव मान जब नमस्कार करने लग जाता है वह उस समय निधत्ति निकाचित कर्म क्षय को प्राप्त हो जाते हैं। ऐसी विचित्र आलौकिक दृष्टी को सुना था। सुनते आ रहे थे। आज साक्षात आँखों से देखकर धर्म पर गहरा श्रद्धान हुआ जिन भक्तों पर जिन भक्ति पर भी श्रद्धान हुआ। और इसके माध्यम से आज ये गुफाओं के दृश्य ये गुफायों के चैत्यालय आज भलीभाँति में विराजमान ये आकृत्रिम चैत्यालय नहीं है लेकिन आकृत्रिम चैत्यालयों की उपमा दी है। चन्द्रमुखी किसी को कह देते तो वह चन्द्रमा नहीं हो जाती। अकृत्रिम चैत्य की उपमा दे देने से आकृत्रिम नहीं है। आकृतिम चैत्यालय के जो अतिशय होते हैं जो उसमें विशेषतायें होती है। वे विशेषतायें कभी-कभी कृत्रिम में आ जाती है। वे किसी ने बनवा करके रखवायी होगी।

कृत्रिम चैत्यालय आपके द्वारा बनाये गये। प्रतिमाओं के दर्शन करने देवता आते हैं। पहले सुनते कि कई मन्दिरों में रात्रि में प्रभात काल में ब्रह्ममुहूर्त में कई प्रकार की आवाजें आती थी कृत्रिम मंदिरों में भी आते हैं।

जब ऐसी आस्था से जुड़ जाता है कोई जिन मन्दिर वहां पर उनके आने मे कोई बाधा नहीं होती कोई रोक टोक नहीं होती इन प्रतिमाओं के अतिशय क्या कहें वह चक्रवर्ती जब समोशरण् से लोट रहा था एक बार और उसे किसी शांति के लिए बहुत बड़ी अशांति उसके द्वारा हो गयी थी।

एक ऐसे वर्ण की स्थापना कर दी थी। जो ग्राह्य नही थी। जो कि धर्म के लिए अपेक्षित नही थी। तब वह भगवान के पास पहुंचा था कि भगवान इसकी शान्ति के लिए क्या उपाय हैं। मैंने तो अच्छे के लिए किया था तो बुरा हो गया।

उन्होंने कहा—हे चक्री ! जिसकी तुमने स्थापना की वो तो धर्म का लोप करेगा। तो फिर क्या करें खुद ने सोचकर एक उपाय सोचा वह विजयार्ध पर्वत की गुफाओं में चला गया। और विजयार्ध की गुफाओं में अन्दर जाकर के अन्दर के जो जिनबिम्ब थे। अहर्न्त सिद्ध की प्रतिमायें विराजमान थी। उन अर्हन्त सिद्ध क्योंकि अर्हन्त की भी प्रतिमा होती सिद्ध की भी प्रतिमा होती एक सी वे ही होती दोनों में कोई फर्क नहीं होता आज जो सिद्ध भगवान की निराकार प्रतिमा विराजमान की जाती है। इसका शास्त्रीय आलेख नहीं है। ये परम्परा कहाँ से चली इसका आलेख आप लोग खोजना आगम में तो लेख है कि सिद्ध भगवान् की प्रतिमा भी ऐसी ही होगी अर्हन्त की प्रतिमा में अष्ट प्रतिहार्य होंगे और सिद्ध भगवान की प्रतिमा अष्ठ प्रतिहार्य से रहित होगी। आँखों की पुतली जो गुलक खुला रहता

है। वह खुली नहीं होगी। श्री वत्स चिन्ह नहीं होगा और जो ऊभार है नाखून के स्थान के वह नहीं होंगे। लेकिन आकार में ऐसे ही ठोस प्रतिमा होगी। अर्हन्त सिद्ध भगवान की प्रतिमा का अभिषेक किया, घर में चैत्यालय था। और भी चैत्यालय थे। उस समय जाकर के वो गुफाओं के अन्दर बैठे हुये भगवानों का अभिषेक लाया और वहाँ जाकर के कहा कि यदि—मैं इस गंधोदक को अपने राज्य में राज्य के भक्तों को जिस स्थान पर मैंने यह गलत कार्य किया। वहीं पर अगर इनको स्थापित कर दूं और गंधोदक को मस्तक पर लगा दूँ। तो शायद यह परिणति जो धर्म के ऊपर उदृत होने वाली है। वह बच जाय।

उसके बाद भगवान से जब कहा कि भगवान मैंने ऐसा किया तो उन्होंने कहा अब धर्म तो बच जायेगा और वह स्थिति देखते हैं कि अपना धर्म बराबर विधिवत चल रहा है। लेकिन विरोध विरोधाभास चल रहे हैं। चलते रहेंगे तो गुफाओं की प्रतिमाओं का अभिषेक और उनके चरणों का गन्धोदक सिरपर लगाने के लिए जिनसेन स्वामी ने कहा इन प्रतिमाओं को जब मैंने मस्तक झुकाकर के और थोड़ा जल लेकर के मस्तक पर लगाया तो वह आनन्द जो आनन्द अभी तुम अभिषेक करोगे आप लोग मस्तक पर लगाओगे तुम्हारे लिए आ जाय में यही भावना करता हूं। जो आनन्द मुझे आ गया यदि आनन्द न आये तो ये तुम्हारे मस्तक की कमी होगी हमारे भगवान के गन्धोदक की कमी नही होगी। ये ध्यान रखना।

ऐसी स्थिति बन्धुओं आज में कहता हूँ की ऐसे मंदिर का ऐसे चैत्यालय का और ऐसे स्थान को आप लोग भूल गये। आप लोगों ने अपने मस्तक को तो उतार दिया।

आप लोग ऐसे मन्दिर के उद्धार करने के लिए आज ऐसे मंन्दिर के लिए न जाने आप लोग कहाँ कहाँ माथा टेक ने जाते हैं।

जयपुर के लोग भी जाने कहाँ-कहाँ दुनिया के संकट दूर करने जाते हैं। मैं कहता हूं कि सांगानेर की प्रतिमाओं में तो चमत्कार है ही साथ में सांगानेर के मन्दिर को नमस्कारकरने से वह चमत्कार है। जो सारी दुनियाँ मे नहीं हो सकता है। ये वर्गणायें यहाँ पर ऐसी विद्यमान है। ऐसे मन्दिर की ऐसी उपेक्षा होती रही वर्षों तक कल हमने कहा था कि इस के संबंध में कितना बड़ा इतिहास है। 1600 साल तक भट्टारकों का राज्य रहा। यहाँ पर 500-600 साल तक भट्टारक की गदी बनी रही और इन प्रतिमाओं के सम्बन्ध में पूरी जिन्दगी भर कुछ करने का प्रयास करते रहे। लेकिन वह सफल नही हो पाये दर्शन तो हुये। लेकिन वे ऊपर नहीं ला पाये।

जिस समय भट्टारको नें ऊपर लाने का प्रयास किया था उस समय एक ही आवाज उनके अन्दर आयी थी कि क्या भट्टारक तुम दिगम्बर हो सकते हो दिगम्बर बनकर आयो तो तुम इन्हें लेजा जा सकते हो। अन्यथा नहीं।

शांति सागर महाराज दिगम्बर रूप में इस उत्तर भारत में विचरण किये जो इस युग के आदि तीर्थंकर जैसे है। महान आचार्य शांतिसागर महाराज इस भूमि पर आये और उनको लोगो ने कहा कि

महाराज यहाँ मन्दिर में ऐसा-ऐसा सुनते है। शांति सागर महाराज ने कहा ऐसा तो सुनते ही रहते हैं। रात्रि को उनको स्वप्न द्वारा सूचित हुआ कि ये किवदन्ति नहीं है। ये मात्र कथानक नहीं ये यथार्थ हैं और उस स्वप्न में ही उन प्रतिमाओं के दर्शन हुये और स्वप्न में ही उन्हें रास्ते का दर्शन हुआ आप लोगों ने कहा सुना है वो सुना ही मात्र नहीं है वो वास्तविक है। में अन्दर जा रहा हूं। और वो अन्दर गये। और मात्र न जाने कितने हजारों वर्ष से सैंकड़ों वर्ष से ये प्रतिमाओं विद्यमान की गयी होगी। उसके बाद प्रथम आचार्य हुऐ। आचार्य न कहकर के साधु संत हुये साधू सन्त इतने महान हुये जिन्होंने अपने प्रथम बार इन प्रतिमाओं के दर्शन कराये उसके बाद दो तीन महाराज दो तीन सन्त महाराज और हुये देश भूषण जी, विमल सागर जी कुन्थु सागर जी ऐसे दो तीन महाराज होकर के उनको लाये अब सोचो कितना इसका सुन्दर दृश्य होगा। सभी बाल ब्रह्मचार्य ही जा पाये। बाल ब्रह्मचारी ही इन प्रतिमाओं को ऊपर ला सकेगा। दूसरा व्यक्ति अर्हन्त बन जाये तो इनको ला सकता है। लेकिन उर्हन्त बन के तो कोई जायेगा नहीं।

ऐसा जो अनुभव किया जो जाना वह आनन्द आया। वह आनन्द पूर्णतया व्यक्त किया नहीं जाता, कर भी नहीं सकता। कुछ बातें ऐसी है। जिनका हमें प्रकट करने का न तो निर्देश न तो आदेश है। उसके अन्दर क्या-क्या देखा। क्या-क्या अनुभव हुआ। उनके कहने के लिए हमारे लिए संकेत नहीं है। मेरे लिए कोई भी ऐसा आभास नहीं मिल रहा है। उनके लिए कहें। वो बातें न तो ये कह सकता और जितना कहना था उतना कह दिया। इससे आगे न तो कोई कहलाना और न में कह सकूंगा। कहना था सो कह दिया।

सगर चक्रवर्ती के पुत्र ने पूछा की पिता जी मुझे भी कुछ कार्य करने को शेष है। पिता कहते है कि बेटा क्या करना सब कुछ तो में कर चुका। अब तुम्हें क्या शेष रहा। 6 खण्ड तो जीत चुका क्षत्रिय का जो काम था। वो कहता है कि क्षत्रिय का काम अगर यह है तो में भी क्षत्रिय पुत्र हूँ। बापकी कमाई नहीं खा सकता। आप कमाई खाऊंगा। पैर पर खड़े होकर जो आप कमाई खाता है वह जैन, ब्राह्मण, क्षत्रिय है और जब वह पैर पर खड़ा नहीं हुआ अनाथ है। सगर चक्रवर्ती के साठ हजार पुत्र कहते पिता जी में आप की कमाई नहीं खाऊंगा। आपके पास सब है। मेरे पुण्य मे भी कुछ है। मेरे बाहुबल में भी कुछ है। मेरी साधना में भी कुछ है। मुझे भी करना है। कि नही करना तब पिता कहता है कि बेटा कुछ नहीं करना सब में कर चुका। सारे 6 खण्ड पर मेरा अधिपत्यहो, गया। पुत्र कहते हैं तो मेरी क्षत्रियता कलंकित हो जायेगी मुझे तो कार्य बताइये।

सगर चक्रवर्ती सोचकर क्या कहता है। कि मैंने सब कुछ कर लिया एक कार्य शेष रह गया। कि मेरे पूर्व भ्राता भरत चक्रवर्ती ने कैलाश पर्वत के ऊपर 72 जिन चैत्यालय बनाये थे। उनकी सुरक्षा में नही कर पाया। उनकी सुरक्षा तुम जा कर कर दो। उस सुरक्षा करने के लिए साठ हजार को भेज कर उन जिनालय के लिए इस लिए भेज दिया था हेतु क्या था। पंचम काल के श्रावक वहाँ नहीं पहुंच पावेंगे इस लिए ऐसी व्यवस्था करना अनन्तर वे दर्शन करने नही जायेंगे और सोने के मन्दिर उठाकर ले जायेंगे। इस लिए चारों तरफ पानी की ऐसी खाई खोद देना।

मुझे ऐसा लगता जिसे आप गंगा कहते हैं ऐसे सगर चक्रवर्ती द्वारा शायद यह हिमालय के घेर कर बनाई हुयी नहर है। गंगा तो और विचित्र है। कितना विचित्र रूप था। उसका वो वो देखने में नहीं आता खेर ये केवल ज्ञान का विषय है। अपन केवल ज्ञानी होकर सोचें विचारेंगे। लेकिन उस दृश्य से जब उन्होंने कहा तो और वहां पर चक्रवर्ती के पुत्रों ने जाकर के उस चैत्यालय की रक्षा की इस प्रकार आज से आप से कहना चाहता हूं कि आप लोग गृहस्थी हैं। अपने जीवन में सारे कार्यक्रम कर चुके। तुम्हें मात्र एक कार्यक्रम करना शेष है। जिसे में कहता हूं। कि साँगानेर का मान्दिर इसकी सुरक्षा इसकी व्यवस्था। जीर्णोद्वार इस प्रकार करो की ये अतिशय अठारह हजार वर्ष तक जीवित रहे। और हर पांच साल के बाद कोई साधक यहाँ आये और वो भी अपनी साधना को धन्य करें और तुम्हारी आंखों को भी तृप्त करे। सब यह भावना मेरी है। पाँच साल बाद साधक लोग अपनी साधना को एक विशेष रूप लेवे और उसके बाद आपकी आंखें तृप्त होवे। ऐसे जिनबिम्ब के लिए जो निधत्ति निकांचित कर्मों का क्षय करने में साधन है। यह चैत्यालय मैंने वहाँ जो भाव आया उसके अनुसार यह कितने समय तक रहेगा ये बतायें बंद करने वाला था। तुरन्त किसने दिमाक में सुझा दिया कि ये तो आपने कहा ही नहीं कि कितनी देर तक के लिए लायें हैं। किसने ये बात सुझाई में तो बन्द ही करने वाला था। ये चैत्यालय 15 तारीख के सुबेरे 8 बजे तक आपके बीच में रहेगा आठ बजे ये चैत्यालय यथा स्थानपर चला जायेगा। इसमें एक मिनट न ज्यादा होगा न कम होगा। ये ध्यान रखना में भूल जाऊं तो तुम ध्यान दिला देना। कि यह समय है। 15 तारीख 8 बजे तक ये चैत्यालय के दर्शन ऊपर रहेगा। उसके बाद जिसका ये चैत्यालय है जिसकी यह रक्षक है उसकी गोद में उसकी रक्षा मे ये दे आऊंगा और आर्शीवाद दे आऊंगा। ये तेरी कोतवाली तेरे अंगरक्षक शश्वत रहे जीवित रहे। जब तक धर्म रहेगा। जब तक तू इसका अंग रक्षक रहे ऐसा आशीर्वाद 15 ता. के दिन दूगा।

□

सांगानेर के भूगर्भ-स्थित जिन चैत्य का चमत्कार

जयपुर नगरी प्राचीन समय से जैन नगर के नाम से प्रसिद्ध रही है। इस नगर से तेरह कि.मी. दक्षिण की ओर स्थित सांगानेर नगर राजस्थान के प्राचीनतम नगरों में से एक है। यहाँ एक पुरातात्विक और धार्मिक विरासत को अपने अंग में समेटे श्री दिगम्बर जैन मन्दिर संघी जी का है,जो प्राचीनतम स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करने वाला और विदेशी पर्यटकों का आकर्षण स्थल है। मन्दिर में अनेकानेक जैन शिलालेख उपलब्ध थे, जो अब वहाँ नहीं है। मैंने अपनी आंखो से प्रथम वेदी के तोरण में संवत् 1011 का एक शिलालेख देखा है (सं. 1011 लिखित पं. तेजा शिष्य आ. पूरणचन्द)। जिनके अनुसार मन्दिर का अंतिम चरण 10 वीं शताब्दी का सिद्ध होता। मंदिर कई चरणों में बना, ऐसा वस्तु कला से प्रतीत होता है। मन्दिर पर अठारह गगनचुम्बी शिखर हैं, जो खजुराहों शैली के शिखरबन्द मंदिरों के सदृश है। मन्दिर के तोरण और कलाकृतियों, भित्ति चित्रों को देखकर माउण्टआबू के दिलवाड़ा मन्दिर की स्मृति ताजी हो जाती है। तोरण लाल पाषाण के बने हैं। छज्जो के नीचे स्तम्भों पर वाद्ययंत्र लिये नृत्य करती नारियो की मूर्तियाँ बड़ी मनोरम है। मृदंग, ढप, ढोल पखावज, मुरज, वीणा, अलापिनीवीणा, रावण हस्तक वाणी एकतंत्री से लेकर पंच तंत्री तक के वाद्य उकेरे हुए हैं। सुषिर वाद्य अवनद्धवाद्य, तंतुवाद्य भी किन्नर किन्नारियो के साथ चित्रित किए हुये है। यदि यहाँ के भित्ति चित्रों पर दृष्टि डालें तो उन पर रोना आता है। ज्यादातर भित्तचित्रों पर चूने की पुताई की जा चुकी है। छत और ऊपर की दीवालो पर चित्रों के अवशेष अपने पुरातत्व की कहानी कहते हुए मेरे साथ हो जाते हैं। इंटेक संस्था को इनके संरक्षण के लिए मैंने आज ही पूरी प्रोजेक्ट भेजी है, ताकि इनके संरक्षण के लिये समय रहते कुछ किया जा सके। संगीत वाद्यो के पुरातत्व पर और ललितकला पर शोध की पर्याप्त सामग्री है।

संघी जी के मंदिर में वेदी के पीछे जिनालय में मूलनायक प्रतिमा बिना चिन्ह व लेख के स्थित है। काल की प्राचीनता से यह मूर्ति गहरे गेरू रंग की हो गयी है और इसमें क्षरण के चिन्ह स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगे है। इसे यहाँ के निर्मित आदिनाथ की प्रतिमा कहते हैं। प्रतिमा की बनावट और शल्प से तथा लांछन-चिन्ह न होने की स्थिति में इसका काल गुप्तकाल है जो 5वी शताब्दी का इससे पहले का सिद्ध होता है। मैंने जयपुर के पुरातत्ववेताओ तथा डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल को जैन पुरात्व के मूर्धन्य विद्वान और इतिहास पुरुष हैं, से भी इस बारे मे चर्चा की। वे इसे लगभग चार हजार वर्ष पूर्व की कृति मानते हैं। यह मन्दिर पूर्वमुखी है। द्वार पर गणेश की मूर्ती भी उत्कीर्ण है। मुझे इसे देखकर एक श्लोक याद आया—श्री आदिनाथ प्रमुखा जिनेश: श्री पुंडतेज प्रमुखा गणेश: ॥

दूसरे चौक मे प्रवेश द्वार पर मैंने ढोलामारू के चित्र उकेरे हुए दोनों ओर देखे। अन्य कलाकृतियों के साथ साथ जो विराजे हैं। दक्षिणी तिवारे की दीवार पर एक लेख काली स्याही से अंकित है, जिससे ज्ञात हुआ है कि संवत् 1829 जेष्ठ सुदी 3 को बसवा-निवासी पं. मूलचंद एवं साहिबराम विलाला ऋषभदेव की यात्रा करते हुए यहाँ आये थे। चौक की वेदी में बीच की पार्श्वनाथ

प्रतिमा संवत् 1664 तथा अन्य एक प्रतिमा संवत् 1224 की प्रतिष्ठित है। दक्षिण तिवारे की वेदी में शांतिनाथ जी की श्वेत पाषाण खड्गासन प्रतिमा संवत् 1185 की प्रतिष्ठित है। बाहर के चौक में उत्तर पूर्वी कौने में एक तलघर है, जिसमें पाषाण की चौदह मूर्तियाँ है। इनमें से तीन प्रतिमाएँ भूगर्भ से प्राप्त है। दूसरा भौहरा (तलघर) दक्षिण की ओर वाले तिवारे में पूर्व की लाइन में है, जिसे किसी महनीथ मुनि बलवेदी के संलल्प से ही खोला जा सकता है। यह मन्दिर सात मंजिल है। दो मंजिल ऊपर क्षत्रिय है और पांच मंजिल नीचे है मंदिर को सबसे नीचे की मंजिलों में यक्षदेव (मणयुक्त साक्षात् सर्प) द्वारा रक्षित भूगर्भ स्थित अति प्राचीन जैन चैत्य है, यहां 5 बड़ी पाषाण की मूर्तियां और चौसठ रत्नों की विभिन्न अत्या युक्त मूर्तियां है जो एक पीतल के पात्र में सुरक्षित रखी रहती है।

दिनांक 12.6.94 की सुबह एक विलक्षण सुबह थी। उसका न जाने कितने नर-नारियों, बच्चों को बेताबी से इंतजार था। हजारों हजार जैन समुदाय आंधी की भांति सांगानेर मे छाया जा रहा था, मेरे ये चमचक्षु भी ऐसे अलोकित वातावरण के साक्षी बने थे। मैंने अपने और अपने जीवन को धन्य माना कि मैं यहां उपस्थित हूं। मेरा बालक आशुतोष भी मेरे साथ था वह उत्सुकता वश सैंकड़ो चाहे/अनचाहे प्रश्न पूछ रहा था। बादल घिर-घिर कर आ रहे थे। भीषण गर्मी और उमस से वातावरण असहय हो रहा था। जयपुर में अभी तक बरसात नही हुई थी लेकिन बादलों को देखकर सभी मन ही मन भगवान के अतिशय से प्रभावित होकर जय जयकार कर रहे थे। अजमेर से पधारे कोई कवि मंच पर कविता पाठ करके भगवान की स्तुति कर रहे थे। इसी बीच वाणी भूषण प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जी मंच पर आये और कहा कि शीघ्र ही महाराज प्रवर सुधासागर जी भूगर्भ चैत्यालय की मूर्तियो को ला रहे हैं। थोड़ी ही देर मे इन्द्रों की वेशभूषा में सुसज्जित लोग भूगर्भ स्थित मूर्तियों को लेकर मंच पर विराजमान करने लगे। विदेह क्षेत्र के इन्द्र भी यह सब अप्रत्येक्ष रूप से देख रहे थे। जैसे ही पूरी 72 मूर्तियां मंच पर आयी, मूसलाधार वर्षा होने लगी। भगवान के अभिषेक करने का ऐसा मौका देवों को भी कहां मिलता है। मृत्यु लोक के इन्द्रों की वेशभूषा के लोग भगवान् पर अभिषेक करे, इससे पहले ही देवो ने बाजी मार ली, ऐसा पत्यक्ष अतिशय देखकर सभी दांतो तले ऊंगली दबा रहे थे। जन समुदाय के आग्रह पर महाराज श्री सुधासागर जी ने अपने उद्घोष में बताया कि मूर्तियो को लाने का मार्ग अनदेखा था। एक सर्प ने उनका मार्ग प्रशस्त किया और सर्प रूप में यक्ष बोला बहुत जल्दी आ गये। फिर भी आप मूर्तियाँ संकल्पित समयावधि के लिए ले जाइये। महाराज श्री दिनांक 15.6.94 की सुबह आठ बजे तक के लिये मूर्तियां लाये थे। मूर्तियो मे तीर्थंकर महावीर, पाश्वरनाथ, शातिनाथ, आदिनाथ चंदाप्रभु और पद्मप्रभु की मूर्तियाँ उल्लेखनीय थी। उनमें से कुछ गोमेद, स्फटिक, गुरुडमणि, पन्ना, नीलम, मरकतमणि, माणिक और मूगा की थी। अनेकानेक मंत्र भी चैत्य में स्थापित है, उनमे से कुछ ऊपर दर्शनाथ भी लाये गये थे।

महाराज श्री ने बताया कि इतना अतिशय पूर्ण स्थान उन्होने अपने जीवन में पहली बार देखा है। यदि आगामी जन्म लेना पड़ा तो प्रभु से यही विनती है कि इसी साँगानेर मे मेरा जन्म हो।

संक्षेप मे यही कहा जा सकता है कि मेरे जीवन का यह अवसर अभूतपूर्व था।

☐ **डॉ. अभय प्रकाश जैन**

☐

सांगानेर में चार दिन

□ **नरेन्द्र प्रकाश जैन, सम्पादक जैन गजट**

राजस्थान का एक प्राचीन नगर सांगानेर अपने विशाल कलात्मक जैन मन्दिरों के लिए प्रसिद्ध है। वहाँ आठ मन्दिर है। इनमें संघीजी का मन्दिर बेजोड़ है। वह सात मंजिला है किन्तु दिखती है केवल दो ही मंजिलें। पांच मंजिलें नीचे जमीन में है आज से हजार-बारह सौ वर्ष पूर्व जिस महाभाग ने यह मन्दिर बनवाया, उसने पांचवीं मंजिल में भी कुछ रत्न प्रतिमायें विराजमान कर दी। वहां तक जाने के लिए एक छोटा-सा रास्ता है। झूककर, बैठकर या कहीं कूद-कूदकर वह रास्ता पार करना पड़ता है। किन्तु आम यात्री आज तक नीचे गया ही नहीं। कहा जाता है कि केवल सिद्धि सन्यासी ही वहां तक जा सकते हैं। इसके पीछे क्या रहस्य है अथवा मन्दिर-निर्माता का क्या सोच रहा होगा। यह सब सोच का विषय है। वैसे सोध श्रद्धा के क्षेत्र में अकिंचित्कर है।

यह तो निश्चित है कि उन मूर्तियों का अभिषेक-पूजन तभी हो पाता है, जब कोई सन्त उन्हें बाहर निकालकर लाते हैं शेष अवधि में वे अनिभिषिक्त ही रहती हैं।

इस बार पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी के शिष्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज का यहां पर्दापण हुआ उनकी प्रेरणा से यहां दिनांक 9,10. एवं 11 जून को एक विद्वत्संगोष्ठी एवं 12, 13 एव 14 जून को एक विधान एवं भूगर्भ-स्थित इन मुनियों के प्रकटीकरण के आयोजन की घोषणा की गई। हमारे पास भी आमन्त्रण आया था। हमें यहां चार दिन रहने का अवसर मिला। इस सबने यहाँ ज्ञान और श्रद्धा के सगंम में स्नान किया।

विद्वत्संगोष्ठी

स्व. आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज (आचार्य श्री विद्यासागरजी के दीक्षागुरु) इस सदी के एक उत्कृष्ट साहित्यसृष्टा थे। उन्होंने संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में अनेक महाकाव्य, चरित्रप्रधान काव्य, मुक्तक, काव्य आदि लिखे। साहित्य-जगत में उनका अच्छा समादर हुआ। उनकी रचनाओं के उक्ति-वैचित्रय, रसपरिपाक, अलंकार-छटा, प्रसाद-गुण आदि ने सगीक्षकों का मन मोह लिया। पहली बार उन्हें पढ़कर पण्डित हीरालाल जी सिद्धान्तशास्त्री ने कहा—**"इधर के पांच वर्षों में ऐसी सुन्दर और उत्कृष्ट काव्यरचना करने वाला अन्य कोई विद्वान जैन समाज में नहीं हुआ है।"** अन्य कुछ मनीषियों ने भी उनमें माय और गारवि के दर्शन किए और उनकी प्रतिमा का लोहा माना।

आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज ने अपनी अधिकांश रचनायें गृहस्थावस्था में लिखी। उस समय वह पण्डित भूरामलजी शास्त्री के नाम से जाने जाते थे। उनका व्यक्तित्व स्व-निर्मित था। जब वह मात्र दस वर्ष के थे तब उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। सबसे बड़े भाई भी उनसे केवल दो ही वर्ष बड़े थे। ऐसी स्थिति में अपना दायित्व उन्हें स्वयं ही संभालना पड़ा और उन्होंने बखूबी उनका निर्वाह किया।

बात लग गई

सुनते हैं कि महाकवि कालिदास पहले पढ़े-लिखे नहीं थे। राजा से चिढ़े हुए कुछ सामन्तों ने छलपूर्वक राजपुत्री से उनका विवाह करा दिया था। जब पत्नी विद्युत्तमा को उनकी मूर्खता का ज्ञान हुआ तो उसने उन्हें खूब खरी-खोटी सुनाई और घर से निकाल दिया। कालिदास को यह अपमान सहन नहीं हुआ और उन्होंने विद्वान बनने की बात की। कोई दृढ़ प्रतिज्ञा करके कोई संकल्प लेता है तो वह पूरा हो ही जाता है। बाद में विद्वान बन चुके कालिदास की वाणी सुनकर उनकी पत्नी भी मुग्ध हुई और उनकी आरती उतारने के लिए द्वार पर आकर खड़ी हो गई।

सन्त तुलसी के पीछे भी उनकी पत्नी रत्नावती की प्रताड़ना की कहानी निहित है। उनकी डांट खाकर ही वह महाकवि बन सके थे।

पं. भूरामलजी ने तो विवाह ही नहीं किया। तब उन्हें महाकवि किस प्रेरणा ने बनाया यह प्रश्न सहज ही मन में उत्पन्न होता है। यह तो सत्य है कि जब तक बात लगती नहीं, तब तक मति-गति बढ़ती नही।

जब यह स्याद्वाद महाविद्यालय, वाराणसी में पढ़ते थे, तब किसी ब्राह्मण महापण्डित से उन्होने जैन साहित्य के गन्थों का अध्ययन करने की इच्छा व्यक्त की थी। साम्प्रदायिक ईर्ष्यावश उन पण्डितजी ने उपहासपूर्वक कह दिया—"जैनों का कोई साहित्य है भी, जो तुम्हें पढ़ाया जा सके। बेचारे जैन तो इस क्षेत्र में निहायत हो गये-बीते हैं।" बस, एक स्वाभिमानी का दिल आहत करने के लिए यह एक कटूक्ति ही काफी थी। छात्र भूरामल को बात चुभ गई और उनके मन में किसी अज्ञात कोने में दबी-ढंकी साहित्य-सृजन की चिनगारी भरभराकर सुलग उठी।

राजस्थान की यह कहावत प्रसिद्ध है कि यश या कीर्ति दो ही बातों से सुरक्षित रह सकती है—"का भीतड़े का गीतड़े" अर्थात् या तो मन्दिर, मठ, धर्मशाला आदि के निर्माण या फिर साहित्य सृजन इसका आधार **"का गीतड़े"** बना और ऐसा फला कि साहित्य के क्षेत्र में आज तक एक कालजयी व्यक्ति बन चुके हैं।

विद्वत्संगोष्ठी के संकल्प

सांगानेर की इस विद्वत्संगोष्ठी में देश भर के संस्कृतज्ञ पच्चीस जैन-जैनेतर विद्वानो ने भाग लिया तथा तीन दिनों में पन्द्रह शोधपत्र प्रस्तुत किए ये, जिसमें उनके 'जयोदय', 'सुदर्शनोदय', 'दयोदय', 'वीरोदय' जैसे महाकाव्यों के भावपक्ष, कलापक्ष, भाषाशास्त्रीय पक्ष, सांस्कृतिक/सामाजिक अवधारणा आदि पर अच्छा विमर्श हुआ तथा सम्यक्त्वसार प्रवचनसार-समयसार-टीका तथा अप्रकाशित ग्रन्थ 'हित सम्पादक' में प्रतिपादिन विषयो पर भी प्रकाश डाला गया। 'ऋषभदेव चरित्र' (हिन्दी) पर भी एक शोधपत्र पढ़ा गया।

जैन शास्त्रों में वैराग्य को ज्ञान का फल बताया गया है। चौबीस से अधिक ग्रन्थों की रचना करते-करते पं. भूरामलजी का हृदयगत वैराग्य भी परिपाक को प्राप्त होता गया और वे संयम के

सोपानो पर क्रमशः। बढ़ते हुए आचार्य ज्ञानसागर बन गए। उन्होंने अपनी कथनी और करनी को एकसा बना दिया। उनकी रचनाओं को पढ़कर यह कोई नहीं कह सकता-

"पर उपदेश कुशल बहुतेरे
जे आचरहि ते नर न घनेरे"

उन्होंने वही कहा, जिसे वे अपने आचरण में उतार चुके थे। 'दयोदय' में मृगसेन भीला की कथा के माध्यम से अहिंसा की, **'भद्रोदय'** में सत्यघोष की कहानी के द्वारा सन्त और आचार्य की तथा 'सुदर्शननोदय' और 'जयोदय' में सेठ, सुदर्शन और जयकुमार की जीवन-प्रसंगों से उन्होने क्रमशः ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह की ही प्रतिज्ञा की है। **'वीरोदय'** महाकाव्य में भगवान महावीर का समग्र जीवन-दर्शन निहित है।

उनके काव्यों पर डॉ. किरण टण्डन और डॉ. (कु.) आराधना जैन के शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो चुके हैं। तथा कुछ शोधार्थी अभी भी विश्वविद्यालयों में उनके कृतित्व पर पी.एच.डी. के लिए पंजीकृत हैं।

संगोष्ठी के अन्तिम दिन निम्न संकल्प घोषित किए गऐ—

- ☐ **वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट सरसावा** उनके सम्पूर्ण साहित्य का पुनप्रकाशन करेगा, ट्रस्ट के मंत्री आचार्य डॉ. शीतलचन्द जी ने यह दायित्व स्वीकार किया।
- ☐ सर्व प्रथम **'वीरोदय'** महाकाव्य का प्रकशन होगा और उसके लिए चार माह की समायावधि स्वीकार की गई। उसका पुनरीक्षण डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर ने शुरू कर दिया है। इसके प्रकाशन का आधा व्यय (लगभग तीस हजार) सांगानेर के संघीजी मन्दिर का ट्रस्ट वहन करेगा, हमारे सुझाव पर ट्रस्ट के मंत्री श्री निर्मल कासलीवाल ने यह घोषणा की।
- ☐ अगली संगोष्ठी अक्टूबर-नवम्बर में कभी होगी। स्थान और तिथियों की घोषणा बाद मे की जायेगी।
- ☐ यह संगोष्ठी केवल **'वीरोदय'** महाकाव्य की समीक्षा तक सीमित रहेगी तथा इसमें पच्चीस-तीस तक विद्वान् भाग लेंगे।
- ☐ डॉ. श्रेयांसकुमार जैन, बड़ौत एवं डा. अशोक कुमार जैन, लाड़नूं को इसके संयोजन और सहसंयोजन का दायित्व सौंपा गया।
- ☐ आचार्यश्री के व्यक्तित्व पर एक ट्रेक्ट लिखने का दायित्व हमें सौंपा गया।

इस प्रकार सांगानेर-संगोष्ठी में विचारों का जो बीज बोया गया, उसके पल्लवित होने का मार्ग प्रशस्त हुआ है। यह एक शुभ शकुन है कि **इस वैचारिक यज्ञ का सम्पूर्ण व्यय-भार वहन करने की घोषणा अजमेर के स्वाध्याय प्रेमी श्रेष्ठी श्री राजेन्द्र कुमार जैन (रद्दीवालों)** ने की। उनके इस उत्कृष्ट ज्ञान-दान के लिए हम उन्हें हार्दिक साधुवाद देते हैं। आदि में दान देने वालों की आज कोई

कमी नहीं है किन्तु ऐसे ज्ञान-वार्ताओं के आयोजन में जो आपकी चंचला लक्ष्मी को समायोजित करने के लिए उद्यत रहते हैं, हमारी दृष्टि में उनका अवदान अधिक महत्व का है। कहा भी है—

"ज्ञानेन पुंसा सकलार्थसिद्धिः"

अतिशयक्षेत्र पद्मपुरा के दर्शन

सांगानेर या जयपुर तक आयें और भगवान पद्मप्रभु की सातिशय मूर्ति के दर्शन न करें, यह कैसे सम्भव है। राजस्थान के दो अतिशयक्षेत्र भारत विख्यात है—एक महावीरजी और दूसरा पद्मपुरा। लोगों का विश्वास है कि यहाँ मनोकामनायें पूरी हो जाती है। **श्रद्धा के सामने तर्क हमेशा बौना बनकर रहता है।**

11 जून को क्षेत्र के कर्मठ मंत्री श्री रतनलालजी नृपत्या एवं कोषाध्यक्ष-सदस्य श्री बिरधीचन्दजी सेठी आदि ने सांगानेर आकर सभी विद्वानों को पद्मपुरा के दर्शनों के लिए आमंत्रण दिया। नेकी और पूछ-पूछ। सबने सहर्ष अपनी स्वीकृति प्रदान की।

एक मैटाडोर में सांयकाल क्षेत्र पर पहुँचे। क्षेत्र की विशालता उसके शानदार भविष्य की सूचक है। एक गोलाकार इमारत की दूसरी मंजिल पर चौंसठ स्तम्भों पर निर्मित मन्दिर वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है। अन्दर ग्यारह वेदियां हैं। मध्यवेदी में स्थानीय **मूला जाट** द्वारा मकान की नींव खोदते समय प्राप्त भगवान् पदमप्रभु की सतिशय प्रतिमा विराजमान है। स्तम्भों की कलात्मकता मन को मोहती है। चांदनी रात में तो मन्दिर बहुत दिव्य लगता है। किसी दिन जब यह पूरा होगा, एसिया की भव्यतम मन्दिरो में इसकी गणना होगी।

मन्दिर-परिसर बहुत विस्तृत है। चारों दिशाओं में आवासीय-व्यवस्था। आधुनिकतम सुविधाओं से सम्मिलित कक्ष और भवन भी है। सहज ही जयपुर के सेवारत श्रावक **स्व. श्री म्होरीलाल गोधा** का स्मरण हो जाता है जिन्होंने यहाँ-स्थित अपनी 37 बीघा भूमि क्षेत्र के लिए निःशुल्क अर्पित कर दी। क्षेत्र विकासोन्मुख है। अनन्त आकार ग्रहण कर सकती हैं/करने वाली हैं। गोधाजी की उदारता को उसका श्रेय देना होगा।

हम सब पन्द्रह विद्वान् यहाँ आए। क्षेत्र की ओर से सबका सम्मान किया गया। प्रतीक-चिन्ह 1993 में प्रकाशित गजरव-स्मारिका और पद्मप्रभु के आकर्षक चित्रादि सबको भेंट किए गये। रात्रि में ही हम लोग सांगानेर वापिस आ गए।

सन्त-समागम

जयपुर में पूज्य श्री 108 आचार्य सन्मतिसागरजी महाराज संसघ विराजमान थे। 10 जून को उनके दर्शनार्थ गए। डॉ. श्रेयांसजी, डॉ. रमेशचन्दजी, डॉ. अशोकजी, डॉ. भगचन्दजी भाष्कर, डॉ. शीतलचन्द जैन प्राचार्य डॉ. अभय प्रकाशजी आदि भी साथ थे। उनसे संत अंकलीकरण-प्रकरण को लेकर उत्पन्न विवाद को विराम कैसे मिले, इस पर सविनय चर्चा की। उनका उत्तर सकारात्मक था। वह भी समाधान/पटाक्षेप चाहते हैं और **चाहते हैं कि यह कार्य ऐसे हो कि उससे किंसी की**

जय-पराजय की ध्वनि न निकले। बात भी सही है। संघ-संचालिका ब्र. मैनाबाई से भी मिले। वह भी प्रकरण से दुःखी ही हैं। लगता है कि निकट भविष्य में कोई-न-कोई रास्ता अवश्य निकलेगा।

दिनाकं 12 जून को पूज्य आचार्य श्री दर्शनसागरजी महाराज का भी जयपुर में मंगल प्रवेश हुआ है। उनसे भी चर्चा-वार्ता हुई है। संघस्थ उपाध्याय श्री समतासागरजी फीरोजाबाद के ही रत्न हैं और निरन्तर ज्ञानाभ्यास में लगे रहते हैं।

13 जून को एत्मादपुर के एक उन्नीस वर्षीय सुकुमार की सीधी मुनि-दीक्षा भी होने वाली थी। बहुत से श्रावक दबी जबान से यह कहते हुए सुने गए कि पहले क्षुल्लक दीक्षा दी जाती और बाद में (पांच-सात वर्षों के पश्चात्) मुनि-दीक्षा तो अधिक उचित रहता। अपने-अपने मत हैं। एक दूसरे को सुनने-समझने की पद्धति का अभी अपने समाज में विकास नही हुआ है। हमारे साथ जो डाक्टर विद्वान थे, जिन्होंने पहली बार साधु-संघों में कुद ऐसा देखा, जो वीतरागता के भेष में फिट नहीं बैठता, उन्होंने कुछ दृश्यों पर साश्चर्य वेदना व्यक्त की। हमने उनसे इतना ही कहा—

रहिमन निज मन की व्यथा, मन ही राखो गोय।

सुनि अठिलैं हैं लोग सब, बाँटि न लैहे कोय॥

उपसंहार

दिनांक 9 से 12 जून तक हमें सांगानेर मे रहनें का सुअवसर मिला। हमारी दृष्टि में विद्वत्संगोष्ठी बहुत सफल और सार्थक रही। हाल में बिहार के **अम्बिकापुर में सम्पन्न संगोष्ठी** के बाद यह दूसरी संगोष्ठी थी।, जिसके केन्द्र में किसी साहित्यकार के कृतित्व का मूल्यांकन करना ही एकमात्र उद्देश्य था और जो मैलों-ठेलों से हटकर की गई थी। सांगानेर समाज के युवा-बाल-वृद्ध सभी समर्पित और एकजुट होकर सेवा-धर्म का निर्वाह कर रहे थे।

ऐसी ज्ञान-गोष्ठियां बार-बार होती रहें, भले ही कुछ पंचकल्याणक कम हो जायें- हमारी तो यही भावना है—

□

संगोष्ठी के निदेशक की कलम से

परम पूज्य मुनि 108 श्री सुधासागर जी महाराज का जब पदमपुरा क्षेत्र पर विहार हुआ, उनके प्रवचन होने लगे तो वातावरण में साहित्य, संस्कृति एवं इतिहास से सम्बन्धित अनेक समस्याएँ सामने आने लगी। पूज्य मुनि श्री के सानिध्य में एक अखिल भारतीय स्तर के विद्वत संगोष्ठी आयोजित करने का निश्चय किया गया। और उस संगोष्ठी का मुझे निदेशक एवं डॉ. शीतल चन्द जी जैन को संयोजक मनोनीत किया। विद्वानों को निमन्त्रण जाने लगे, लेकिन स्थान एवं निश्चित समय अभी तक अनिर्णित ही रहा। मुनि श्री का पदमपुरा से चित्रकूट कोलोनी सांगानेर में विहार हो गया। लेकिन गर्मी की भीषणता कम नहीं हो रही थी और वहाँ संगोष्ठी के उपयुक्त स्थान भी नहीं था। बाद में जब सांगानेर टाऊन में मुनि श्री का वहां के पंचों के विशेष आग्रह से विहार हो गया। सांगानेर का संघी जी का जैन मन्दिर मुनि श्री का विहार स्थल बना। मंदिर कमेटी के अध्यक्ष श्री धनकुमार जी पांड्या एवं मंत्री श्री निर्मल कुमार जी जैन के विशेष आग्रह एवं उत्साह को देखते हुए वहाँ पर संगोष्ठी को आयोजित करने का मुनि श्री का आशीर्वाद एवं सहमति प्राप्त हो गयी।

संगोष्ठी के लिये तत्काल अखिल भारतीय स्तर के 34 विद्वानों को निमन्त्रण भेजे गये। एक दो स्थान पर तो स्वयं संयोजक डॉ. शीतल चन्द जी को भी जाना पड़ा। दिनांक 9,10,11 जून को आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी महाराज का 21 वाँ समाधि दिवस एवं अखिल भारतीय विद्वत संगोष्ठी का आयोजन रखा गया। संगोष्ठी के तत्काल पश्चात् मंदिर के भूगर्भ स्थित एवं देवशक्ति चैत्यालय को तीन दिन के लिए बाहर दर्शनार्थ रखने का निर्णय लिया गया, जिससे चैत्यालय के दर्शनार्थ हजारों की भीड़ आने लगी।

तीन दिवसीय विद्वत संगोष्ठी में 24 विद्वानों ने भाग लिया और आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा लिखित साहित्य का समीक्षात्मक निबन्ध वाचन करके अपने मौलिक विचार प्रस्तुत किये। संस्कृत जगत के प्रख्यात विद्वान (1) डॉ. मण्डन मिश्र, देहली, (2) डॉ. शिवसागर त्रिपाठी जयपुर (3) डॉ. जगन्नाथ जी पाठक, इलाहाबाद, (4) डॉ.जयकुमार जैन, मुज्जफ्फरनगर (5) डॉ. रमेश चन्द जैन बिजनौर (6) डॉ. श्रेयान्स कुमार जैन, बड़ौत (7) डॉ. भागचन्द भास्कर, नागपुर (8) प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश फिरोजाबाद (9) डॉ. प्रभाकर शास्त्री, राज. वि.वि. जयपुर (10) डॉ. प्रेमचन्द रांवका, जयपुर (11) पं. मूलचन्द लुहाडिया, किशनगढ़ (12) डॉ. अशोक कुमार पिलानी (13) वैद्य प्रभूदयाल, भिषगाचार्य, जयपुर (14) डॉ. प्रेमचन्द जैन, जयपुर (15) डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर (16) डॉ. अजित कुमार जैन, आगरा (17) डॉ. सीमा जैन, ललितपुर (18) कु. नीता जैन, ललितपुर (19) पं. सत्यन्धर कुमार सेठी, उज्जैन (20) पं. मिलापचन्द शास्त्री, जयपुर (21) पं. अनूप चन्द न्यायतीर्थ, जयपुर (22) श्रीमती नूतन जैन एवं (23) डॉ. शीतल चन्द जैन, संयोजक, संगोष्ठी तथा डॉ. कस्तूर चन्द कासलीवाल निदेशक, संगोष्ठी ने निबन्ध वाचन करके कितने ही अनछुए विषयों पर अपने विचार रखे। सांगानेर में इस

प्रकार की संगोष्ठी वहाँ के इतिहास में प्रथम बार हुई थी, इसलिए संगोष्ठी के आयोजन से चारों ओर प्रसन्नता छा गयीं।

संगोष्ठी का एक और प्रमुख आकर्षण पूज्य मुनि श्री सुधा सागर जी महाराज का सानिध्य रहा। मुनि श्री पूरे समय संगोष्ठी में विराजते और अन्त में निबन्ध वाचकों के निष्कर्षों पर अपने विचार प्रकट करते थे। पूज्य मुनि श्री के विचार इतनी सधी हुई भाषा एवं शैली में होते थे कि जिन्हें सुनने के लिए श्रोतागण सदैव लालायित से रहते। पूज्य मुनि श्री दुसरे प्रश्नों पर भी अपने विचार प्रकट करते। मुनि श्री के अतिरिक्त संघस्थ पूज्य क्षुल्लक धैर्यसागर जी महाराज एवं पूज्य क्षुल्लक गंभीर सागर जी महाराज की पूर्णकालिक उपस्थिति एवं सानिध्य ने भी संगोष्ठी को गरिमा प्रदान की तथा दोनों क्षुल्लकों ने भी संगोष्ठी में अपने विचार प्रकट किये।

संगोष्ठी में विद्वानों के अतिरिक्त भा.दि.जैन महासभा के अध्यक्ष श्री निर्मल कुमार जी सेठी, कार्याध्यक्ष श्री चैनरूप जी बाकलीवाल, डीमापुर ने भी भाग लिय। संगोष्ठी का समापन सत्र भी माननीय श्री बाकलीवाल जी की अध्यक्षता मे सम्पन्न हुआ। अन्त में सभी विद्वानों को शाल ओढ़ाकर सम्मानित किया गया तथा प्रशस्ति पत्र भेंट किया गया। संगोष्ठी का आयोजन स्थानीय एवं बाहर के जैन समाज को वर्षो तक याद रहेगा।

—डॉ. कस्तूर चन्द कासलीवाल

निदेशक

विद्वत् संगोष्ठी, सांगानेर (जयपुर)

□

इस सदी के अप्रतिम साहित्यसृष्टा आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विद्वत्संगोष्ठी

☐ डॉ. शीतलचन्द जैन

संयोजक, विद्वत्संगोष्ठी

आचार्य प्रवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज के 21 वें समाधि दिवस-समारोह पर दिनांक 9, 10, 11, जून 1994 को त्रिदिवसीय संगोष्ठी परम पूज्य आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज के परम शिष्य मुनिवर 108 श्री सुधासागर जी महाराज के संसघ सान्निध्य में श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी, सांगानेर जयपुर के प्रांगण में सम्पन्न हुई।

सर्वप्रथम श्री सोहनलाल जी पाटनी, गोहाटी वालों के करकमलों द्वारा झण्डारोहण किया गया। मंगलकलश की स्थापना एवं 21 दीपों से आरती भागचन्द जी जैन, जैन गुड्स ट्रांसपोर्ट कम्पनी, नसीराबाद द्वारा सम्पन्न हुई। इस अवसर पर परम पूज्य आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के चित्र का अनावरण अजमेर के श्री निर्मलकुमार जी सोनी द्वारा किया गया। पू. क्षु गम्भीर सागर एवं पू. धैर्यसागर जी महाराज की प्रेरणा से पू. ज्ञानसागर जी महाराज के जीवन पर आयोजित सचित्र जीवन झांकी का उद्‌घाटन श्री मदनलाल जी पाटनी श्यामनगर जयपुर ने किया।

प्रथम उद्‌घाटन सत्र

उक्त कार्यक्रम के पश्चात् सर्वप्रथम विद्वत् संगोष्ठी का उद्‌घाटन श्री सोहनलाल जी पाटनी, गोहाटी वालों ने किया। इसके पश्चात अतिशय क्षेत्र दि. जैन मन्दिर संघीजी के अध्यक्ष श्री धनकुमार जी पाण्डया एवं मंत्री श्री निर्मल कासलीवाल ने संगोष्ठी में समागत विद्वानों का माल्यार्पण एवं बैज लगाकर स्वागत किया। विद्वानों की ओर से प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन, फिरोजाबाद ने ज्ञान गोष्ठी के महत्त्व पर प्रकाश डाला। अन्त में पूज्य मुनिवर 108 श्री सुधासागर जी महाराज ने संगोष्ठी की सफलता के लिए अपना शुभाशीष प्रदान किया। संगोष्ठी के कार्यक्रम एवं पूज्य महाराज श्री के प्रवचन सुनने के पश्चात प्रथम सत्र का समापन घोषित किया गया।

द्वितीय सत्र

उस दिन अपरान्ह में संगोष्ठी का द्वितीय सत्र संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान डॉ. मण्डन मिश्र, देहली की अध्यक्षता में प्रारम्भ हुआ। संगोष्ठी का संयोजक डॉ. रमेशचन्द जैन, बिजनौर ने किया। इस अवसर पर डॉ. भागचन्द जी भास्कर ने "जयोदय महाकाव्य में पशु-पक्षी", डॉ. जयकुमार जैन मुजफ्फरनगर ने "सुर्शनोदय काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन", पं. मूलचन्द जी लुहाड़िया ने "प्रवचनसार की संस्कृत टीका की मौलिकता" विषय पर अपने शोध पत्रों का वाचन किया, जिससे सभी श्रोतागण बड़े प्रभावित हुये। अन्त में संगोष्ठी के अध्यक्ष महोदय ने अपने पवित्र एव मधुर स्वर में पूज्य

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज, आचार्य विद्यासागर जी महाराज एवं पूज्य मुनि श्री सुधासागर जी महाराज को अपनी हार्दिक श्रद्धा अर्पित करते हुये संगोष्ठी की उपयोगिता पर प्रकाश डाला तथा ज्ञानसागर महाराज के साहित्य के पुन: प्रकाशन की आवश्यकता पर बल दिया।

तृतीय सत्र

दिनांक 14 जून को प्रात: 7 बजे संगोष्ठी का तृतीय सत्र प्रारम्भ हुआ। संगोष्ठी की अध्यक्षता जगन्नाथजी पाठक, इलाहाबाद ने की तथा संयोजक का कार्य डा. जयकुमार जी जैन, मुजफ्फरनगर ने किया सर्व प्रथम पं. सत्यन्धर कुमार सेठी ने आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के जीवन पर संस्मरण सुनाये इसके पश्चात डॉ. अशोक जैन, लाडनू तथा डॉ. श्रेयांसकुमार जी बडौत ने निन्बन्ध वाचन किया। अन्त में डा. पाठक साहब ने अपने अध्यक्षीय भाषण में संगोष्ठी की उपयोगिता और उनमें पढ़े जाने वाले पत्रों पर अपने समीक्षात्मक विचार प्रकट किये तथा निबन्धों की उपयोगिता बताई। अन्त में पूज्य मुनिश्री ने अपने ओजस्वी प्रवचन से सब श्रोताओं को मंत्र-मुग्ध कर दिया।

चतुर्थ सत्र

उसी दिन 3 बजे से संगोष्ठी का चतुर्थ सत्र प्रारम्भ हुआ। इस संगोष्ठी की अध्यक्षता संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान डॉ. प्रभाकर शास्त्री जयपुर ने की। इस सत्र का संयोजन संगोष्ठी के निदेशक डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल ने किया इस सत्र में डॉ. श्रेयांशकुमार डॉ. अजितकुमार जैन, आगरा, डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल एवं डॉ. प्रभाकर शास्त्री ने शोध निबन्धो का वाचन किया। डॉ. प्रभाकर शास्त्री ने निबन्धों पर चर्चा की तथा आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के संस्कृत ग्रन्थो एवं हिन्दी रचनाओ के प्रकाशन पर बल दिया। अन्त में महाराज श्री का सुन्दर प्रवचन हुआ और आपने निबन्धों का अपनी पेनी एवं सूक्ष्म दृष्टि से विवेचन किया।

सभी विद्वान शाम को 5.30 बजे पदमपुरा क्षेत्र के दर्शनार्थ गये और वहाँ पर क्षेत्र के मंत्री श्री रतनलाल जी नृपत्या और कोषाध्यक्ष श्री विरधीचन्द जी सेठी विद्वानो के स्वागतार्थ अपनी पूरी कार्यकारणी के साथ उपस्थित थे उन्होंने पुष्पाहार एवं क्षेत्र का प्रतीक चिन्ह प्रदान कर स्वागत किया तत्पश्चात् रात्रि को 9.30 बजे वापिस संगोष्ठी स्थल पर लौट आये।

पंचम सत्र

दिनांक 11 जून को प्रात: 7 बजे संगोष्ठी का पंचम सत्र प्रारम्भ हुआ, जिसकी अध्यक्षता डॉ. भागचन्द जी 'भास्कर', नागपुर एवं संयोजन डॉ. शीतलचन्द जैन प्राचार्य, जयपुर ने किया। इस सत्र मे डॉ. रमेशचन्द जी जैन बिजनौर, डॉ. जगन्नाथ जी पाठक, प्राचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी ने निबन्ध वाचन एवं अपने विचार व्यक्त किये। प्रो. नरेन्द्रप्रकाश जी ने संगोष्ठी की उपयोगिता पर प्रकाश डाला, इस अवसर पर महासभा के कर्मठ अध्यक्ष माननीय श्री निर्मल कुमारजी सेठी ने भी संगोष्ठी को अपना उद्बोधन दिया, तथा उन्होंने महासभा की ओर से दि. जैन मन्दिर संघीजी, सांगानेर के शिखरो का जीर्णोद्धार करवाने हेतु 5 लाख रु. दिलवाने का आश्वासन भी दिया एवं ऐसे आयोजन के लिए

सांगानेर के जैन समाज को धन्यवाद दिया। अन्त में पूज्य मुनिश्री ने ओजस्वी भाषण में कितनी ही महत्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डाला।

समापन सत्र

संगोष्ठी का समापन सत्र दिन के 2.30 बजे प्रारम्भ हुआ। इसकी अध्यक्षता आचार्य नरेन्द्र प्रकाश जी ने की। समारोह के मुख्य अतिथि चैनरूपजी बाकलीवाल, गोहाटी थे। सर्वप्रथम पं. अनूपचन्द जी न्यायातीर्थ ने आचार्य ज्ञानसागर जी के जीवन पर कविता पाठ किया। इसके पश्चात वैद्य प्रभूदयालजी ने निबन्ध वाचन का। संगोष्ठी के संयोजक डॉ. शीतलचन्द जी ने **'हितसम्पादक'** में वर्णित विषय पर प्रकाश डाला। क्षुल्लक श्री धैर्यसागर महाराज ने कविता-पाठ किया। मुख्य अतिथि श्री चैनरूपजी बाकलीवाल ने सभी कार्यों में अपने सहयोग का आश्वासन दिया। अन्त में संगोष्ठी की पूरी रिपोर्ट प्रस्तुत की। पूज्य महाराज श्री ने संगोष्ठी आयोजन के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए सभी विद्वानों को अपना शुभार्शीवाद दिया। प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जैन ने अपने अध्यक्षीय उद्बोधन में आज की ज्ञान-वार्ताओं की सटीक समीक्षा की।

□

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र मन्दिर संघीजी सांगानेर का क्षेत्र परिचय

जयपुर नगर से 13 कि.मी. दक्षिण की ओर स्थित सांगानेर नगर राजस्थान के प्राचीनतम नगरों में प्रमुख स्थान है और इसी नगर की शोभा में चार चांद लगाने वाला श्री दिगम्बर जैन मन्दिर संघीजी सांगानेर का है जो प्राचीनतम स्थापत्य कला का प्रतिनिधित्व करने वाला है। मन्दिर निर्माण की निश्चित तिथि अभी शोध का विषय बना हुआ है लेकिन यह मन्दिर कई चरणों में बनाया गया था और वेदी के एक तोरण में सम्वत् 1011 के लेख के अनुसार अन्तिम चरण का मन्दिर निर्माण 10वी शताब्दी का माना जा सकता है।

मन्दिर के उतंग गगन चुम्बी आठ शिखरों को दूर से देखकर ही दर्शक को मन्दिर में जिन बिम्बों के दर्शनों की जिज्ञासा पैदा होती है और वह खजुराओं के शिखरबद्ध मन्दिरों को स्मरण करा देता है तथा मन्दिर के निर्माताओं के प्रति श्रद्धा से मस्तक झुकाने लगता है। दर्शक या पर्यटक मन्दिर के कलाकृतियों को बाहर से देखकर प्रसन्न होता हुआ जब मन्दिर में प्रवेश करता है तो प्रवेश द्वारो पर प्राचीन कलाकृतियों को देखकर माउंटआबू के देलवाड़ा मन्दिर के प्रवेश द्वारों को स्मृत किये बिना नहीं रहते। प्रथम द्वार के पहले चौक में प्रवेश करते ही दोनों तरफ तिबारे है जिनमे लाल पाषाण के आकर्षक तोरण द्वार है। छज्जों के नीचे स्तम्भों पर वांद्ययंत्र बजाती नृत्य गान करती हुई किन्नर देवियाँ एवं चंवर ढोलती देवांगनाये दिखाई देती हैं। प्रथम चौक एवं द्वितीय चौक मे जाने वाले दोनो ही प्रवेश द्वारों पर विभिन्न आकृतियों एवं मुद्राओं का संग्रह, कलाकार की कलाज्ञान को स्वत: ही उजागर करते हैं। अन्दर दूसरे चौक के प्रवेश द्वार के उत्तर की ओर बाहर की ढोला-मारू का भी अकन है जो आठवीं दशवीं शताब्दी तक के भीति चित्र हैं।

कलापूर्ण वेदी

निज मन्दिर में प्रवेश करते ही चौक में एक पाषाण की विशाल तीन शिखरो की वेदी बनी हुई है जिसके पाषण में कमल पुष्प बेंले एवं तीर्थंकर भगवानों के सिर पर जलाभिषेक करते हुए हाथो का शिल्प सौष्ठव देखते ही बनता है। चंवरी के स्तम्भो के बीच तोरण द्वार एवं छज्जो के नीचे नृत्य करती हुई अप्सरायें हैं। वेदी के तीन शिखर एवं गुम्बद की तक्षणकला अत्यधिक बारीक व नयनाभिराम है। वेदी के मध्य सप्तफणी भगवान पार्श्वनाथ की श्वेत पाषाण की प्रतिमा मनोज्ञ एवं मनभावन है। इस प्रतिमा के अगल-बगल में भी दो पार्श्वनाथ भगवान की ही प्रतिमाए हैं जिन पर सर्पो के फण पार्श्वनाथ भगवान् के चरणों की ओर झुके हुए है।

मूलनायक श्री आदिनाथ भगवान

इसी चौक में चारों ओर चार फेरियां व तीन छोटे जिनालय है जिनमें अनेक प्रतिमाए विराजमान है तथा प्रतिमाओं पर अंकित लेख इतिहास की धरोहर है। वेदी के पीछे जिनालय मे मूलनायक

प्रतिमा बिना चिन्ह व लेख के है जिन्हें आदिनाथ भगवान के नाम से जाना जाता है। यह प्रतिमा पुरात्वेक्ताओं की जानकारी के अनुसार चार हजार वर्ष प्राचीन बताई गयी है जो चतुर्थ काल की प्रतिमा मानी जाती है।

यह मन्दिर सात मंजिला है जिसके तलघर के मध्य में यक्ष देव द्वारा रक्षित भूगर्भ स्थित प्राचीन जिन चैत्यालय विराजमान है। इसकी विशेषता है कि जिस स्थान पर यह विराजमान है वहां मात्र बालयती तपस्वी दिगम्बर साधू ही वहां पर अपनी साधना के बल पर प्रवेश कर सकते हैं। अन्य किसी में वहाँ प्रवेश करने का साहस किया भी तो उसके दुष्परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं। इस चैत्यालय को निकालते समय निकालने वाले साधक को अपनी संकल्प शक्ति व्यक्त करनी पड़ती है कि इस चैत्यालय को इतने दिन के लिए भूगर्भ से बाहर ऊपर श्रावकों के दर्शनार्थ ले जा रहे हैं और अमुक दिन इतने बजे लाकर इस चैत्यालय को वापस यहां विराजमान कर दिया जावेगा। संकल्प समय के अन्दर ही इस चैत्यालय को अन्दर भूगर्भ में वापस ले जाना अनिवार्य होता है। इसमें विलम्ब करने पर अनेक प्रकार के अशुभ संकेत देखने में आते हैं। इस मन्दिर की यह सबसे बड़ी अतिशयता है एवं प्राचीनता स्पष्ट होती है।

मन्दिर के दर्शन हेतु श्रद्धालुजन तो आते ही हैं लेकिन सारे विश्व से बड़ी संख्या में प्रतिदिन पर्यटन मन्दिर की स्थापत्य कला को देखने के लिए आते हैं। कला को देखने के बाद जब अन्दर वेदी में विराजमान जिन प्रतिमाओं की वीतरागता को देखते हैं तो अपनी नास्तिकता को तिलांजली देकर अपनी आस्तिकता की ओर सहज ही आकर्षित हो जाते हैं।

इस मन्दिर की विशालता को देखते हुए साँगानेर में रहने वाले श्रृद्धालुओं के सम्बन्ध में जब हम इतिहास में खोज करते हैं तो ज्ञात होता है कि अतीत में यहाँ लगभग 700 जैन घरों की बस्ती थी। धीरे धीरे काल की चपेट में आजीविका के अभाव में यहाँ का समाज अन्यत्र स्थानो पर चला गया और यहाँ साँगानेर में कुल मात्र 7-8 घर ही शेष रह गये तब इतने बड़े विशाल मन्दिर की व्यवस्था करना कठिन हो गया। परिणाम स्वरूप इस मन्दिर की दशा जीर्ण-शीर्ण हो गई। पुनः पुण्य का योग आया और यहां दिगम्बर जैन समाज के आज लगभग 150 घर हैं। सभी श्रृद्धालुओं की भावना है कि इस मन्दिर का विकास हो और दुनियाँ की दृष्टि में यह अतिशय क्षेत्र जन कल्याण के लिए साधन बनें। भारतीय संस्कृति की गौरव गाथा को पुनः जीवित कर सकें। इस हेतु मन्दिर के जीर्णोद्धार के साथ-साथ यहाँ पर आने वाले यात्रियों के लिए धर्मशाला आदि अनेक सुविधाओं के जुटाने का प्रबन्ध कारिणी कमेटी ने संकल्प किया है।

अतः मन्दिर की निम्नांकित योजनाओं की सफल क्रियान्विती तथा मन्दिर जी के जीर्णोद्धार हेतु अपनी शक्ति को न छिपाते हुए उदार मन से इस कलापूर्ण विख्यात मन्दिर के लिए अधिक से अधिक आर्थिक सहयोग देकर धर्मलाभ अर्जित करें।

मन्दिरजी की भावी निर्माण योजनाएँ

		अनुमानित लागत
1.	मन्दिर जी के 8 बड़े शिखरों के पत्थरों को जोड़ को खुल गये हैं उनका जीर्णोद्धार	प्रति शिखर 50 हजार रुपया
2.	मन्दिर जी के शिलाखण्डों के बाहर से जोड़ जो खुल गये हैं उनका जीर्णोद्धार।	2 लाख रुपया
3.	मन्दिर जी छत के ऊपर आंगन का पुनर्निर्माण।	2 लाख रुपया
4.	शास्त्र, प्रवचन, विधान आदि के लिए हाल का निर्माण।	3 लाख रुपया
5.	पहले से निर्मित कमरों के ऊपर त्यागी भवन का निर्माण।	2 लाख रुपया
6.	मन्दिर जी के चारो फेरियों के 16 द्वारों पर किवांड़ जोड़ियां लगाने हेतु।	4 हजार रुपये प्रति जोड़ी
7.	कुऐ के ऊपर चार स्तम्भों पर पानी की टंकी का निर्माण।	75 हजार रुपया
8.	वेदी के पीछे जिनालय में मूलनायक भगवान की वेदी व जिनालय का जीर्णोद्धार।	1 लाख रुपया
9.	२५ कमरों की धर्मशाला निर्माण हेतु प्रत्येक कमरा की लागत।	25 हजार रुपया प्रत्येक
10.	क्षेत्र जीर्णोद्धार हेतु दातार का नाम संगमरमर पट्टिका पर अंकित किया जावेगा।	प्रति सदस्य 5001 रुपये
11.	वाटर कूलर,2	18000 रुपये प्रत्येक
12.	मन्दिर जी के प्रथम चौक का लोहे का जंगले के निर्माण कार्य।	50,000 रुपये लगभग

मंत्री

श्री निर्मल कासलीवाल

दार्शनिक सन्त ज्ञानसागर जी

(आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का 21 वाँ समाधि-दिवस एवं गोष्ठी का प्रथम सत्र)

• मुनि श्री सुधासागरजी

मैं सबसे पहले इस भूमि को साधुवाद देना चाहता हूं जहां से हमारे वंश का बीजारोपण हुआ था । जयपुर की पवित्र भूमि खानिया जी में श्री ज्ञानसागर जी ने मुनि दीक्षा ली थी ।

मुझे लगता है आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने बाल-अवस्था से ही मुनि बनने की भावना की थी, तभी तो गृहस्थ नही बने ।वो बड़े दार्शनिक थे, वे जानते थे कि जीवन में गृहस्थ नही बनूंगा तभी मुनि बन सकूंगा ।

राजस्थान का वह ज्ञान का बादशाह जिन्होंने पूरा जीवन ज्ञानार्जन में और उसके प्रचार-प्रसार में लगा दिया, उनको शायद यह राजस्थान भी नहीं जानता होगा ।

सन्त होना सरल चीज है, दार्शनिक होना सरल चीज है किंतु दार्शनिक सन्त होना बडा दुर्लभ है जो श्री ज्ञानसागर जी में देखने को मिलता है ।

श्री ज्ञानसागर जी ने 'णाण फलं उपेखा' कुन्दकुन्द के इस कथन में दिया है । ज्ञान का फल है—ख्याति-लाभ उससे कोसों दूर रहे । 'णाण फल उपेखा' यह मंत्र है, इसको वो हमेशा जपते ही रहे । इस मंत्र को आज कोई नही फेरता जो कुन्दकुन्द ने दिया है । इस मन्त्र का क्या अनुभव है यह हमें इस सन्त से सीखना है जो आज से 21 वर्ष पूर्व में इस मन्त्र को फेरनेवाला हुआ था ।

'घर आये नाग, बांमी पूजन जाय' इस युक्ति को यह राजस्थानवाले कर रहे हैं तभी तो जो इस भूमि का गौरव है ऐसे श्री ज्ञानसागर जी के साहित्य से यह राजस्थान लाभ नही ले रहा है, जिस साहित्य ने भारतवर्ष को एक नया आयाम दिया है। उनके साहित्य का हम प्रचार-प्रसार करते हैं, शिक्षण में लाते है तो श्री ज्ञानसागर जी के पर कोई एहसान नही होगा । बल्कि हम उससे उपकृत होंगे ।

जातिवाद, समाजवाद आदि रूढ़ियो को छोड़ने से, उनके साहित्य से लाभ जयपुर का ही नही होगा अपितु सारा राजस्थान और भारतवर्ष उपकृत हो जायेगा ।

'जहां न जाए बैलगाड़ी वहां पर जाए मारवाड़ी'—पर ये कैसे मारवाड़ी हैं जो ऐसे व्यक्तित्व के कृतित्व को नही खोज पाए जिन्होंने ज्ञान-साधना के साथ-साथ आत्म-साधना की है। उसी प्रकार विद्वानों को भी आत्मसाधना की ओर कदम बढ़ाने हैं।

यदि श्री ज्ञानसागर जी दीक्षा लेकर मुनि वेषधारण नहीं करते तो इस पंचमकाल में हम जैसे लोगों का कौन मार्ग प्रशस्त करता ?

आज इस पंचम काल में भौतिकता की चकाचौंध में जब लोग हीन संहनन है और मोक्षमार्ग में चलनेवालों की टांग पकड़कर खींच रहे हैं, ऐसी परिस्थिति में हम जैसे अज्ञानियों को यदि चलने का साहस हो पा रहा है तो इसका श्रेय किसको जाता है ! एक श्री ज्ञानसागर जी को । □

श्रावक का आदर्श

[प्रवचन—मुनि श्री सुधासागर जी महाराज]

आज गोष्ठी का दूसरा सत्र चल रहा है। विभिन्न प्रकार के लेख बांचे गये जिनमे एक लेख सुदर्शनोदय पर भी था । यह सुदर्शनोदय ग्रंथ गृहस्थों के लिए बहुत शिक्षाप्रद है । गृहस्थ कैसा होना चाहिए उस आदर्श को प्रस्तुत करता है । उस सुदर्शन के चरित्र को चित्रित करते हुए कहा है कि एक गृहस्थ अंसयमी होकर भी विवेकवान व दृढसंकल्पी है, कुमार्ग पर जाने के लिए हजारों निमित्त मिले तो भी वे निमित्त उसे कुमार्ग पर नही ले जा सके। सेठ सुदर्शन के जीवन से शिक्षा मिलती हैं कि प्रत्येक गृहस्थ को कम से कम अष्टमी, चतुर्दशी के दिन आरम्भ-सारम्भ आदि व्यापार को छोड़कर एकान्तवास में आत्म-चिन्तनपूर्वक बिताना चाहिए और विपरीत निमित्त मिलने पर भी अपने संकल्प को नहीं छोड़ना चाहिए । सेठ सुदर्शन के जीवन में तीन बार घोर विपत्ति आयी फिर भी वे अपनी संकल्प-शक्ति से च्युत नही हुए । एक बार तो अभया रानी विकारमय नाटकीय दृश्य प्रस्तुत करने के बाद भी सेठ सुदर्शन को स्वदार-संतोष-व्रत से विचलित नहीं कर पायी। उसी अभया रानी के षड़यंत्र से सेठ सुदर्शन को सूली पर चढ़ाया गया तब भी वे अपने पूर्वोपाजित कर्मों का फल मानकर परिणामों में समता रखते रहे, परिणामस्वरूप सूली सिहासन में परिवर्तित हो गई । दूसरा प्रसंग भी वेश्या के द्वारा इसी प्रकार उपसर्ग का है।

आज के इस लेख को सुनकर मुझे एक विशेष बात ध्यान आ रही है, उसे सुन कर आप बुरा नहीं मानना, यदि मान भी जायेंगे तो कोई फर्क नही पड़ेगा। सत्य बात कहने मे भलाई और बुराई का विचार नही किया जाता। बात यह है कि आज लोग कहते है—हमे चतुर्थ-कालीन साधु के समान साधु मिलना चाहिये। यहां उन श्रावक बंधुओं से मेरा कहना है कि उन श्रावको को भी तो चौथे काल जैसा श्रावक होना चाहिये, आज ऐसा कौन श्रावक है जो सेठ सुदर्शन के जैसे अष्टमी-चतुर्दशी को श्मशान मे जाकर ध्यान लगाता है और महान उपसर्ग आने पर भी विचलित नही होता । आप कहोगे की चतुर्थ काल के श्रावक के समान संहनन आज के श्रावकों में नहीं है तो भया! उसी प्रकार चतुर्थ काल के मुनियों के समान आज के मुनि में संहनन नही है । मुनि तो फिर भी चतुर्थ काल के मुनि के समान 50% साधनारत है लेकिन श्रावक सेठ सुदर्शन जैसे एक प्रतिशत-भी नही। आज के विद्वान गद्दियों पर बैठकर मुनियों का तुलनात्मक अध्ययन करते हैं लेकिन श्रावकों का तुलनात्मक अध्ययन करके उन्हे उपदेश नहीं देते। यदि विद्वान लोग पूर्व आदर्श श्रावकों का चरित्र-चित्रण वर्तमान श्रावको के समक्ष उपस्थित करने लग जाये तो समाज का कल्याण हो जाये। आज जो श्रावक पतित है, पतित हो गये हैं वे पुन: सेठ सुदर्शन जैसे श्रावक बनकर, मार्ग पर आकर अगर मुनि बन जाय तो मैं कहता हूँ कि उन मुनि की चर्या कितनी अतिशयकारी होगी यह विचारणीय है । इसलिए सबसे पहले सुदर्शनोदय महाकाव्य से यह शिक्षा लेनी चाहिए कि गृहस्थों को अपना आचार-विचार शुद्ध रखना चाहिए। इस विषय मे वैसे तो बहुत कुछ कहना था लेकिन समय के अभाव के कारण विस्तार से नही कर रहा हूँ।

दूसरा लेख दयोदय चम्पू काव्य के ऊपर बाँचा गया। इस काव्य में एक ऐसे विचित्र जीव की घटना प्रदर्शित की गई है जो हिंसक से अहिंसक बनने पर संकट में पड़ जाता है और बाद में अहिंसा के प्रभाव से संकटमुक्त हो जाता है। प्रथम तो यह दृश्य विचारणीय है कि लोग अपना पेट भरने के लिए कितने जीवों की हत्या करते हैं? जैसे मृगसेन धीवर अपना एवं अपने परिवार का भोजन मछलियों को बनाता है लेकिन इसी कथानक के दूसरी ओर देखते हैं तो धीवर जैसी तुच्छ पर्याय में हिंसक मांसाहारी प्राणी सच्चे गुरु की देशनालब्धि का निमित्त मिलने पर अहिंसा के नियमों को धारण करने के लिए संकल्पबद्ध हो जाता है। और जैसे ही वह नियम लेता हैं कि मैं अपने जाल में आयी हुई प्रथम मछली को नहीं माँरुगा, वैसे ही परीक्षा की घड़ी भी आ जाती है। क्योंकि बिना परीक्षा के नियम प्रभावित नही होता। जिस प्रकार विद्यार्थी सालभर पढ़कर परीक्षा ना दे तो उसकी पढ़ाई प्रामाणिक नहीं होती उसी प्रकार धीवर के उस नियम ने उसी दिन परीक्षा का रूप ले लिया। वह जब भी जल में जाल डालता तब वही प्रथम मछली जाल में आती । शाम तक दूसरी मछली उसके जाल में नहीं आती और वह निराश हो जाता है, वह भूखा रहना पंसद कर लेता है किन्तु नियम नही तोड़ता। आज बड़े-बड़े उच्च कुलवाले धर्मात्मा लोग थोड़ी सी विपत्ति आने पर नियम को तोड़ देते, अच्छे-अच्छे लोग प्रभातकाल का भोजन भरपेट खा गये और रात्रिभोजन का त्याग होने पर भी शाम को खाना न मिलने पर उन्हें नियम तोड़ने के भाव आ जाते हैं और कुछ लोग तो नियम तोड़ देते हैं, इस प्रकार के लोगों को धीवर से शिक्षा लेनी चाहिये जो दिनभर का भूखा होने पर भी अपने नियम को तोड़ने का परिणाम नहीं कर रहा है लेकिन इतने मात्र से धर्म की परीक्षा पूरी नहीं हुई, क्योंकि धर्म की परीक्षा बहुत कठिन होती है। इसमे अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है। जब वह धीवर खाली हाथ घर लौटता है तो पत्नी की प्रताड़ना झेलता है। पत्नि केवल उस को ही प्रताड़ित नही करती बल्कि जिस साधु से उसने नियम लिया उस साधु को भी नास्तिक कहकर अवमानना करती है। तब धीवर वेदो एवं उपनिषदो मे वर्णित साधुओं की चर्या से अपने गुरु की चर्या की तुलना करके कहता है कि साधु का जैसा वर्णन वेदों में है वैसा ही तो यह साधु है। यहां विशेष बात यह देखने लायक है कि धीवर जैसे परिवार मे भी वेदो का ज्ञान पाया जाता है कवि की दृष्टि से। धीवर के समझाने पर भी धीवरी नहीं समझती है और धीवर को घर से बाहर निकालकर किवाड़ लगा लेती है। तब धीवर बाहर ही सो जाता है, वहाँ उसे सर्प काट लेता है। अपने नियम मे दृढ़ रहने के कारण वह मरकर स्वर्ग जाता है। यहां पर एक बात और विचारणीय है— एक दिन धीवर अपने परिवार के लिए भोजन की वस्तु नहीं लाया तो धीवरी ने उसे घर से निकाल दिया, यह संसार की बड़ी विचित्रता है। इसके बाद वह धीवरी जब वह धीवर को मरा हुआ देखती है तो बहुत पछताती है। इससे यहां यह सिद्ध होता है कि स्त्रियां अनर्थ करने के बाद पश्चाताप करती हैं, पहले नही। और दूसरी बात यह ध्यान मे आती है कि एक परिवार में एक व्यक्ति भोगी, स्वार्थपूर्ण विचारधारावाला है और एक व्यक्ति योगी, धर्मपराण विचारवाला है, इन दोनों की स्वार्थपरता किस सीमा तक पहुंच सकती है- यह हमें इस प्रंसग से शिक्षा मिलती है ।

ऐसे कथानक-काव्यों का समाज मे प्रचार-प्रसार होना चाहिए । आज व्यक्ति उपन्यास के माध्यम से कुसंस्कारात्मक किताबे पढ़ते है। परिवार के लोगों को चाहिए कि उन्हें ऐसे कुसंस्कारात्मक किताबों के बजाय ऐसी सुसंस्कारयुक्त किताबें पढ़ने की प्रेरणा दें। और भी अन्य-अन्य लेख इस सत्र में बांचे गये लेकिन समयाभाव के कारण एवं सरल हाने के कारण उनकी विवेचना करने की कोई आवश्यकता नहीं है । लेकिन फिर भी एक-दो लेखों पर मैं अति संक्षिप्त में कह देता हूँ ।

तीसरा लेख पशु-पक्षियों पर बॉचा गया । इस वीरोदय महाकाव्य में ही क्या जब भी कोई उपमा, उपमेय को प्रांसगिक किया जाता है तो पशु-पक्षियो के नाम तो आ ही जाते है । वीरोदय महाकाव्य मे पशु-पक्षियो का तो आलकारिक दृष्टि से प्रयोग किया ही गया है साथ मे पशु-पक्षी मानव के लिए कितने उपकारी है और इस सृष्टि के सौदर्य एव पर्यावरण मे कितने सहकारी है इसका भी वर्णन किया गया है । साथ मे लेखक ने भगवान महावीर के सिद्धान्तो को भी प्रकट किया है कि मनुष्य मात्र के लिए ही दया न दिखाये बल्कि पशु-पीक्षायो के प्रति भी दया दिखाये, इनके भी सुख-दुख का ध्यान रखे, इनके साथ भी आत्मीयता का व्यवहार करे तभी मानव मानवता की कोटि मे आ सकता है और महावीर के अहिसा धर्म का पालक हो सकता है क्योकि मानव की आजीविका के साधन है पशु-पक्षी अत. उनके जीवन का शोषण नही होना चाहिए बल्कि उनके जीवन का पोषण करते हुए उन्हे अपने कार्य मे सहायक बनाना चाहिए ।

इसी सत्र में एक लेख ज्ञानसागर जी के साहित्य मे श्लेष प्रयोग पर बॉचा गया। श्लेष अलकार एक बहुत ही महत्वपूर्ण अलकार है। इस अलकार का सहारा लेकर कवि अपने कथा-प्रसग को तो प्रासगिक करता ही है साथ मे अपनी विचारधारा को व्यक्त करने का मौका भी पा लेता है। जैसे ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने वीरोदय काव्य मे अकलक, समन्तभद्र, प्रभाचन्द्र, आदि शब्द लेकर पर-प्रसंग को तो व्यक्त किया ही है साथ मे दूसरा श्लेषात्मक अर्थ अपने श्रद्धेय आचार्यो को भी व्यक्त करता है।

इसी प्रसग मे एक लेख और बॉचा गया था। ज्ञानसागर जी महाराज का साहित्य इस अलकार से भरा पड़ा है। काव्य मे अलकारो से ओज गुण प्रसाद गुण प्रकट होता है। जिस प्रकार भोजन को मसाले आदि डालकर स्वादिष्ट बनाया जाता है उसी प्रकार काव्य मे रसो का पुट देकर कविता या काव्य को रुचिपूर्ण बनाया जाता है और अलकारो से सुसज्जित और व्यवस्थित किया जाता है । कमरे मे यत्र-तत्र वस्तुए बिखरी पड़ी हो तो अच्छी वस्तुएँ भी बुरी लगती है और उन्ही वस्तुओ को यदि व्यवस्थित ढग से सजाकर रख दिया जाय तो उन वस्तुओ से ही उस स्थान की शोभा बढ़ जाती है और उन वस्तुओ की भी शोभा बढ़ जाती है, देखनेवाला भी आनन्द की अनुभूति करने लगता है और सोचता है कि यह सभ्य प्राणियो का घर है । इसी प्रकार कवि यदि अनुप्रास आदि अलकारो के बिना अपने भावो को प्रकट करेगा तो वह कविता श्रोताओं को रुचिकर नही होगी और वही कविता यदि रस-अलकारो से सुसज्जित हो जाये तो श्रोताओ को आनन्द उत्पन्न करेगी और श्रोता कह उठेगे —वस मोर।

काव्य-महाकाव्य रस और अलकारो के कारण ही विद्वानो के द्वारा समादरणीय हो जाता है।

महावीर भगवान की जय

□

आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के नाम को उजागर किया है आचार्य जयसेन ने

[प्रवचन—मुनि श्री सुधासागर जी महाराज]

तीसरा सत्र गोष्ठी का चल रहा है जिसमें कुछ लेख बाँचे गये है। उनमें मुख्यरूप से समयसार पर चर्चा हुई थी। इसी विषय का आगे और स्पष्टीकरण के लिए हमें सबसे पहले कुन्दकुन्द स्वामी कौन थे, उनका युग कौनसा था—यह समझना होगा। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी इस अध्यात्मरसिक धरा पर दिगम्बर-परम्परा के मुख्य आचार्य थे । और इनका काल एक ऐसा काल था जहां पर अध्यात्मरूपी सिंहनी के दूध को पीतल के पात्रों में दूहा जा रहा था । आप लोगो को ज्ञान होना चाहिए कि पीतल के पात्र में सिंहनी का दूध ठहर नही सकता । वह बर्तन में छेद करता हुआ मिट्टी मे मिल जायेगा । तब आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने इस अध्यात्मरूपी सिंहनी के दूध को धारण करने के लिए स्वर्णपात्र को ग्रहण करने की घोषणा की क्योकि इनके काल में भी दिगम्बर साधु शिथिलाचार ग्रहणकर वस्त्रादि ग्रहण करने के बावजूद भी अपने आप को मुनि अथवा आत्मानुभवी कहने का दम भरने लगे थे । तब कुन्दकुन्द स्वामी ने कहा कि वस्त्रधारी को मुक्ति नही हो सकती चाहे तीर्थंकर ही क्यों न हो और उन्होंने समयसार में आत्मानुभव के सम्बन्ध में कहा—

परमाणु मेत्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि ॥201॥

अर्थात् परमाणुमात्र भी यदि राग की कणिका बैठी है तो वह आत्मा का अनुभव नही कर सकता तो फिर गृहस्थ परिग्रही को कुन्दकुन्द स्वामी के अनुसार आत्मा का अनुभव कैसे हो सकता है! अर्थात् नही हो सकता। अभिप्राय यह है कि बाह्य और आभयन्तर परिग्रह-त्याग के बिना आत्मा का अनुभव नही हो सकता।

अर्थात् सभी संसारी जीव कर्म और कर्मफल-चेतना का अनुभव करते है । ज्ञान-चेतना का अनुभव तो उन्हें ही होगा जो प्राणो से अंतिक्रात हो गये अर्थात् सिद्ध परमेष्ठी को ही ज्ञान-चेतना का अनुभव होता है । अर्हन्त भगवान अभी प्राणों से अतिक्रांत नहीं हुए इसलिये ज्ञान-चेतना के अधिकारी नही है अर्थात् अर्हन्त भगवान कारण समयसार में विद्यमान हैं और कार्य सयमसार का आनन्द तो सिद्ध परमेष्ठी को ही आता है । अर्हन्त भगवान के अभी असिद्धत्व रूप औदयिक भाव भी बैठा है अत: अनंत सुख भले ही ज्ञायक शक्ति के प्रकट हो जाने पर मिल गया लेकिन अव्याबाध सुख प्राप्त नही हुआ । इन सब बातों को देखने पर मालूम होता है कि आज लोग कुन्दकुन्द के ग्रन्थों का स्वाध्याय करके कितना अनर्थ निकाल रहे है। कुन्दकुन्द स्वामी कह रहे हैं कि परमाणु मात्र भी राग है तो आत्म का अनुभव नहीं कर सकेगा लेकिन आज लोगों का परमाणु मात्र भी राग का त्याग नहीं है फिर भी आज लोग आत्मा के अनुभव की बात करते हैं यह कैसी विचित्र बात हुण्डावसर्पिणी काल में हो गयी

है ! परिग्रह के साथ आत्मा के अनुभव की बात करना कुन्दकुन्द स्वामी एवम् उनके शास्त्र के साथ बहुत बड़ा अन्याय है । जिस दिन इन स्वाध्यायी बन्धुओं को कुन्द-कुन्द स्वामी मिलेंगे उस दिन ये लोग उनकी फटकार सहन नहीं कर पायेंगे। लोग बड़े गर्व से उनसे कहेंगे कि हमने आपके शास्त्रों का स्वाध्यायकर प्रसार-प्रचार किया तब कुन्दकुन्द स्वामी कहेंगे कि तुम लोगों ने बहुत बड़ा अनर्थ किया है। जिस प्रकार भरत चक्रवर्ती चतुर्थ वर्ण की स्थापना करके आदिनाथ भगवान के समवशरण में यह सोचकर गया था कि मैने बहुत अच्छा कार्य किया है, प्रभु मेरे इस कार्य की प्रशंसा करेंगे, लेकिन प्रभु ने कहा कि तुमने महाअनर्थ कर दिया, उसी प्रकार कुन्दकुन्द स्वामी कहेंगे कि तुमने हमारे शास्त्रों का प्रचार-प्रसार अनर्थ निकालकर किया है सो ठीक नही है, तुम लोगों ने तो हमारे शास्त्र के वास्तविक हृदय को निकालकर मात्र मरे हुए शरीर का प्रचार-प्रसार किया है । हमारे समयसार का मूल कलेजा था कि परिग्रह के अभाव में ही आत्मा का अनुभव होगा लेकिन तुम लोगों ने परीग्रह सद्भाव में भी आत्मा के अनुभव की चर्चा शुरु कर दी ।

बड़ा अनर्थ हुआ है इस बीसवी शताब्दी मे। हिन्दी अनुवाद में तो अनर्थ किया ही है लेकिन मूल संस्कृत टीकाओं को भी विद्रूप कर दिया है। प्रवचनसार की चारित्र चूलिका में अमृतचन्द्र सूरी कहते हैं कि गृहस्थ को अशुद्ध को प्राप्त करने का अधिकार है और शुद्ध को नही (अशुद्ध अवकाशी अस्ति) इस बीसवी शताब्दी के ग्रन्थो में हिन्दी प्रकाशको ने अशुद्ध के स्थान पर शुद्ध करके बड़ा अनर्थ किया है। आचार्य कुन्दकन्द स्वामी के साहित्य को दो हजार सालो मे बड़े उतार-चढ़ाव देखने पड़े। एक हजार साल तक कुन्दकुन्द स्वामी के ग्रन्थो का यथावत वाचन हुआ । एक हजार साल के बाद आचार्य अमृतचन्द्र सूरी ने आत्मख्याति नामक एक टीका लिखी लेकिन इस टीका की कठिनता ने पाठकों को और संशय में डाल दिया । पहला विकल्प तो समाज मे यह हो गया कि कुन्दकुन्द की मूल गाथायें कितनी थी? क्योंकि अमृतचन्द्र सूरी ने वास्तविक दिगम्बरत्व को प्रदर्शित करनेवाली मूल गाथाओं को टीका का विषय नहीं बनाया बल्कि कुन्दकुन्द स्वामी की मूल गाथाओ को क्रम से भी अलग कर दिया । दूसरा विकल्प आता है कि अमृतचन्द्र सूरी ने टीका लिखते समय स्वयं का नाम तो उपाधि के साथ उल्लेख किया लेकिन जिनकी गाथा को लेकर टीका लिख रहे थे उन उपकारी आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के नाम का उल्लेख भी नहीं किया । इससे बड़ा अनर्थ होने जा रहा था। पंचास्तिकाय, प्रवचनसार, समयसार की आत्मख्याति टीकाओं को स्वोपज्ञ टीका कहना शुरु कर दिया था लोगो ने अर्थात् टीकासहित प्राकृत की मूल गाथाएँ अमृतचन्द्र सूरी की है ऐसा कहना शुरू कर दिया था।

उपर्युक्त दोनो अनर्थ से बचानेवाले आचार्य जयसेन स्वामी हैं । जयसेन स्वामी की टीका मिलने के बाद पाठकों के सारे संशय-विभ्रम दूर हो गये । विचारणीय बात है कि जयसेन स्वामी ने उन्हीं शास्त्रों की टीका की जिनकी टीका अमृतचन्द्र सूरी ने भी लिखी थी। लगता है जयसेन स्वामी की धारणा थी कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी की मूल गाथाओ पर टीका लिखने की कोई आवश्यकता नही है बल्कि अमृतचन्द्र सूरी ने टीकाओ के माध्यम से मूल गाथाओं के अभिप्राय को पाठकों के लिए उलझा दिया है। उसे सुलझाने की विशेष आवश्यकता है । अमृतचन्द्र सूरी ने समयसार, पंचास्तिकाय,

प्रवचनसार पर टीका लिखीं, इन्हीं तीन ग्रंथों पर जयसेन स्वामी ने भी तात्पर्यवृत्ति नाम की टीका लिखी। अष्टपाहुड आदि अन्य ग्रन्थों पर अमृतचन्द्रसूरी की टीका नहीं है तो उन पर जयसेन स्वामी ने भी टीका नहीं लिखी और जयसेन स्वामी ने उन्हीं मुद्दों को विशेषरूप से उद्धृत किया है जिनको अमृतचन्द्रसूरी ने छोड़ दिया था । आप ने टीका में बार-बार प्रसंग समाप्त होने पर उल्लेख किया है कि कुन्दकुन्द स्वामी के द्वारा इतनी गाथायें लेना और अमृतचन्द्रसूरी के द्वारा इतनी, बार-बार कुन्दकुन्द स्वामी का नाम लेने से सिद्ध होता है कि जयसेन स्वामी के समय में भी यह बात दृष्टिगोचर हो गयी थी । अमृतचन्द्र सूरी द्वारा कुन्दकुन्द का नाम नहीं लिया जाना किसी विशेष रहस्य की तरफ संकेत करता है और बार-बार यह कहना कि कुन्दकुन्द स्वामी के अनुसार इतनी गाथाएँ लेना, यह बात भी इस ओर संकेत करती है कि अमृतचन्द सूरी ने कुछ गाथाएँ छोड़ दी है जिन्हें जयसेन स्वामी को उजागर करना पड़ा और कुन्दकुन्द स्वामी की स्त्री-मुक्ति-निषेध आदि सम्बन्धी गाथाओं को छोड़ने का रहस्य दृष्टिगोचर होता है—जो विद्वानों द्वारा विचारणीय है।

इस प्रकार यदि जिनसेन स्वामी टीका नहीं लिखते तो उपर्युक्त ग्रन्थ कुन्दकुन्द स्वामी के हैं ये निर्णय आज करना कठिन हो जाता । ऐसी उपकारी टीका को जनमानस के बीच पठनपाठन हेतु लाने के लिए आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने उसकी हिन्दी टीका की है । समयसार पर पूर्व में भी कई टीकाएं लिखी गईं लेकिन हिन्दी में विशेषार्थ देकर गाथा के मूल अर्थ का लोप कर दिया है। आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने कुन्दकुन्द की गाथा का अभिप्राय जयसेन स्वामी के अनुसार प्रासंगिक कर उलझे हुए प्रसंगों को हिन्दी टीका में सुलझाने का प्रयास किया है । विशेषार्थ के माध्यम से आज वर्तमान के प्रश्नों के उत्तर भी दिए है ।

अभी दूसरा लेख प्रवचनसार पर भी बॉचा । इस ग्रंथ पर भी उपर्युक्त दोनों आचार्यों की टीकाएँ मिलती है और इन दोनों टीकाओं को आधार बनाकर कई विद्वानों ने हिन्दी टीकायें की हैं लेकिन उन हिन्दी टीकाओं में विशेषार्थ के माध्यम से पाठकों को कुन्दकुन्द स्वामी के हृदय से पृथक् कर दिया है। हालांकि कुछ विद्वानों ने समीचीन भाव भी प्रकट किये लेकिन पूर्णरूप से स्पष्ट करने का साहस नही कर पाये, लेकिन आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने पूर्ण साहस के साथ कहा कि घड़ा बनने की चर्चा एवं घड़े के गुणों का वर्णन तो सब लोग कर लेते हैं और सुन लेते हैं लेकिन जब तक घड़ा बनाने के साधनों पर चर्चा और चिन्तन नहीं होगा तब तक घड़े के शीतल जल को पीने का प्रयास करने का अर्थ बंध्या के पुत्र की शादी के समान है ।

ज्ञानसागर महाराज ने प्रवचनसार की समस्त गाथाओं को युगल बनाकर सारांशरूप में अर्थ प्रतिपादित किया है । हालांकि सारांश में भी कुछ ऐसे विषय विशेषरूप से दिए है जो विषय विद्वानों के लिए विचारणीय हैं।

□

कीचड़ में गिराना अधर्म और कीचड़ से उठाना धर्म

[प्रवचन—मुनि श्री सुधासागर जी महाराज]

आज गोष्ठी का चतुर्थ सत्र चल रहा है। आज जो आलेख बाँचे गए उन में कुछ मुख्य तथ्य आलेखकर्ताओं ने समाज के सामने रखे । इसी के अन्तर्गत एक प्रश्न आया था कि जैन धर्म क्या जाति विशेष का धर्म है अथवा किसी वर्ण विशेष का धर्म है और इसी के अन्तर्गत एक प्रश्न और आया था कि जैन धर्म में पापियों के लिए स्थान है या नहीं ? बड़ी ज्वलन्त समस्याओं से भरे हुए है ये प्रश्न आज के समय में । इन प्रश्नों को सुनते ही मुझे आचार्य ज्ञानसागर महाराज का वह कथन ध्यान में आ रहा है कि पंचम काल में यह धर्म क्षत्रियो के पास न रहकर बनियो के पास चला गया है । इसलिए ऐसे प्रश्न होने लग गये अन्यथा जैन धर्म ऐसा महान, पवित्र और विशाल धर्म है जिसमें प्राणिमात्र को स्थान दिया जाता है । जैन धर्म का तो मुख्य नारा भी यही है कि "जैन धर्म किसका है—जो माने उसका है"। इस नारे से समस्त प्रश्नों का हल स्वत: हो जाता है लेकिन फिर भी रूढ़िवादी परम्पराओं और धर्म को अपनी बपौती माननेवालो को इतने मात्र से सन्तुष्टि नही होती है। आज का धर्म तो जाति विशेष का धर्म हो गया है लेकिन जैन धर्म में जाति विशेष को कोई स्थान नही है। इसलिए पहला प्रश्न था कि जैन धर्म कोई जाति विशेष का है क्या? इसका उत्तर यह है कि जैन कोई जाति नही है, तो फिर जैन धर्म जाति विशेष का कैसे हो सकता है? जैन शब्द गुणवाचक है, किसी भी जाति व वर्ण का व्यक्ति जैन धर्म के सिद्धान्तों को अपनाने के बाद जैन कहला सकता है। फिर जैन मदिरों में क्षुद्रो के लिए प्रवेश वर्जित आचार्य शान्तिसागरजी के समय मे क्यों किया गया था? ध्यान रखना कि क्षुद्रो के लिए जैन धर्म में प्रवेश वर्जित था , है और रहेगा इसमें कोई विकल्प नही है। तो आप लोग प्रश्न उठा सकते हो कि फिर जैन धर्म प्राणिमात्र का धर्म नही है। सो यह बात कहना ठीक नही है। क्योकि जैन धर्म तो प्राणिमात्र का धर्म है। इस बात को समझने के लिए पहले यह समझना होगा कि क्षुद्र कौन है, कौन नही है? शास्त्रों में क्षुद्र उसे कहा गया जो भक्ष्य के विचार से रहित हो, नैतिक सदाचार से दूर हो एवम् हिंसात्मक पतित कार्य करता हो।

जैन धर्म जाति-कुल से, वर्ण-व्यवस्था से क्षुद्र नहीं मानता बल्कि कर्म एवं आचार-पद्धति से वर्ण-व्यवस्था को अंगीकार करता है। जिसके कर्म नीच हैं वह क्षुद्र है, जिसके कर्म उच्च हैं वह उच्च है। यदि क्षुद्र कुल में जन्म हुआ व्यक्ति जैन धर्म के समस्त आचार-विचारों को ग्रहण कर लेता है एवम् क्षुद्र कुल-परम्परा से चले आये हुए निन्द कार्य त्याग कर देता है तो जैन धर्म कहता है कि वह क्षुल्लक-पद धारण कर सकता है। अत: जैन धर्म प्राणिमात्र का धर्म होते हुए भी आचार-पद्धति को विशेष ध्यान मे रखते हुए जीवो को स्थान देता है।

करणानुयोग की पद्धति के अनुसार तो मातंग भी सम्यक्‌दर्शन का अधिकारी है क्यों कि वहां कहा गया कि संज्ञी पंचेन्द्रिय मनवाला भी सम्यक् दर्शन प्राप्त कर सकेगा और सम्यक्‌दर्शन की उत्पत्ति के जो कारण हैं वे कारण संज्ञी पंचेन्द्रिय के लिए ही निमित्तभूत है, यहां पर जाति विशेष को कोई स्थान नहीं है। सम्यक्‌दर्शन के कारणों में जिनबिम्ब-दर्शन भी आया है, उस जिनबिम्ब-दर्शन का अधिकारी भी संज्ञी पंचेन्द्रिय ही है। लेकिन सम्यक्-दर्शन में जिनबिम्ब के दर्शन उसी के लिए निमित्त बनेंगे जिसके आचार-विचार शुद्ध हों इसलिए जैन धर्म को जाति विशेष का धर्म न कहकर के शुद्ध आचार-विचारवालों का धर्म कहा है चाहे वह किसी भी जाति-वर्ण का व्यक्ति क्यों न हो।

दूसरा प्रश्न है—पापियो को जैन धर्म में स्थान है या नहीं? इसका सीधा सा उत्तर है कि जैन धर्म जैसा पवित्र धर्म पापियो लिए हो ही नही सकता और पापी जीव कभी भी धर्म ग्रहण नहीं कर सकता। अर्थात् जैन धर्म में पापियों के लिए स्थान नहीं है। किन्तु पाप के त्यागनेवाले के लिए स्थान है। इस रहस्य को बहुत सावधानी से समझना बन्धुओं, कोई पापी कहे कि मैं पाप करता जाऊँ फिर भी मैं धर्मात्मा कहलाऊँ यह बात उचित नहीं है लेकिन किसी जीव ने पाप कर लिया है और वह उस पाप को छोड़कर धर्म-मार्ग में आना चाहता है तो ध्यान रखना ऐसे जीवो के लिए तो जैन धर्म का दरवाजा खुला है। धर्म वही है जो पतितो का उद्धार करे। ध्यान में रखना कि जैन धर्म का मूल सिद्धान्त पाप का समर्थन करना नहीं है पर यदि पापी पाप से उठना चाहता है तो उस जीव से घृणा नहीं करना अर्थात् किसी जीव को कीचड मे गिराना अथवा गिरने का समर्थन करना अधर्म है और यदि कोई कीचड़ में गिर गया हो तो उसे कीचड़ में से नही उठाना और भी बड़ा अधर्म है। कितना उदार है हमारा यह जैन धर्म। यह पाप का समर्थन करता नही पर पापियो के उद्धार के लिए हमेशा तत्पर रहता है। अंजन चोर जैसे पापियो को भी पाप त्यागने के बाद शरण दी। जैन धर्म अतीत के पापों को नहीं देखता बल्कि वर्तमान के शुद्ध आचरण की पद्धति पर ध्यान देता है। अतीत की तरफ देखा जाए तो प्रत्येक प्राणी का इतिहास काला है। आज समाज में बहुत कुरीतियां चल रही हैं कि किसी व्यक्ति से पूर्व में पाप हुआ या उसके पूर्वजो ने कोई पाप किया तो पाप का दण्ड ये समाज उनकी संतान को देती है, यह कितना बड़ा अनर्थ है। जबकि जैन धर्म मे तो अपने-अपने पाप के फल का भोक्ता स्वयं ही है दूसरा नहीं।

आज जितने लोग धर्म के ठेकेदार बने फिरते है यदि इनके परिवार की अथवा इनके आस-पास की, इनके सम्बन्धियो की गवेषणा की जाए तो ना जाने कितने गुप्त पापों मे लिप्त पाये जाएंगे जो किसी गरीब व्यक्ति द्वारा पाप हो जाने पर एवं उसके द्वारा भविष्य में नहीं करने का संकल्प लेने पर भी उसके लिए धर्म का दरवाजा नही खोलते। उन लोगों की दलील होती है कि यदि हम पापियों को उठाएंगें तो पापियों की संख्या बढ़ जाएगी क्योंकि पापी लोग समझेंगे—कितना ही पाप कर लो जैन धर्म प्रायश्चित कर लेने के पश्चात् शुद्ध कर देता है। पर ऐसी दलील युक्तियुक्त नही है क्योंकि कोई भी व्यक्ति अपने बस चलते पापरूपी कीचड़ में नहीं गिरना चाहता। गिरने में कोई न कोई मजबूरी होती

है। इसलिए उसे पुनः सम्भलने का मौका मिलना चाहिए। हां, यदि वह यह कहता है कि मैंने तो पाप किया ही नहीं तो उसका कहना गलत है, ऐसे व्यक्ति को धर्म में स्थान नहीं मिलना चाहिए।

आपका समय हो रहा है अतः अंत में यही कहना है कि जैन धर्म एकान्तवादी धर्म नहीं है इसलिए कब, कहां, क्यों, कैसे कार्य किया गया है इस विवक्षा को देखकर ही उसे हेय-उपादेय कहना चाहिए अर्थात् जैन धर्म को जाति-वर्णरूपी कोढ़ से ग्रस्त करके नहीं, जैन धर्म के मूल आचार-विचार-पक्ष को प्रस्तुत करके उसके दरवाजे खुले रखने चाहिए और कोई पापी जीव प्रायश्चित लेकर, पापों को त्याँग कर धर्म-मार्ग पर आना चाहता है तो उसे गले लगाना चाहिए। लोक व्यवहार में देखा जाता है कि कोई व्यक्ति कीचड़ में गिरना और गिराना अच्छा नहीं मानते लेकिन कोई कीचड़ में गिर जाए, स्वयं उठने मे समर्थ न हो और लोग-बाग किनारे बैठकर तमाशा देखते रहें तो भी अच्छा नहीं माना जाता। इन सब बातों पर विचार करने के बाद मेरा निर्णय यही है कि कभी किसी को कीचड़ में नहीं गिराना, कीचड़ में गिरने की सलाह नहीं देना और यदि कोई कीचड़ मे गिर गया हो और तड़प रहा हो ता उस कीचड़ से उठाकर नहला- धुलाकर अपने साथ ले लेना चाहिए। यही अभिप्राय आचार्य ज्ञानसागर महाराज का था और यही अभिप्राय महावीर का था तथा यही अभिप्राय हमारे सभी भारतीय धर्मों का है।

□

जितना जाना उतना कहा नहीं

[प्रवचन—मुनि सुधासागर जी महाराज]

आज गोष्ठी का पांचवां सत्र है। इसमें एक आलेख एक विचित्र कथा के सम्बन्ध में बांचा गया जो धार्मिक वेश धारण करके दुनिया के लिए आदरणीय पद प्राप्त करता है लेकिन अपने से वह बगुला बना रहता है (परिणामों से बगुला बना रहता है)।

वह रत्नों के लोभ के कारण जीवनभर की साधना एवं यश-प्रतिष्ठा पानी में मिला देता है,इसलिए लोभ को पाप का बाप कहा है शास्त्रकारों ने। लोभ के कारण व्यक्ति अपने सगे-सम्बन्धियों की भी हत्या कर देता और अपने प्राण भी संकट मे डाल देता है। इस कथा-प्रसंग में नारी का चातुर्य भी प्रदर्शित किया गया है कि कभी-कभी नारी पुरुष से भी चतुर निकलती है और दूसरा इसी प्रसंग के उपसहार में यह भी बताया है कि दुर्जन व्यक्ति सर्प के समान है,उसे किना ही ताड़ित करो लेकिन मौका पाते ही वह जहर ही उगलेगा, उसी प्रकार सत्यघोष दण्डित होने के बाद राजा से बैर बाध लेता है और भव-भव तक शत्रु बनकर बदला लेता रहता है। इस लेख मे यह भी चर्चा आई कि काव्य की परम्परा क्यो आवश्यक है? काव्य लिखने में, पढ़ने मे, समझने में कठिनता भी महसूस होती है इसलिए काव्य के स्थान पर गद्य को महत्ता देनी चाहिए। इसका उत्तर बहुत अच्छी तरह से ध्यान में आ रहा है, धवलाकार कहते हैं कि अर्थ अनन्त हैं, शब्द सीमित है इसलिए काव्य के माध्यम से शब्दों का कम प्रयोग करके श्लेष आदि अंलकारों के माध्यम से बहुत अर्थ ले लिया जाता है, यह गद्य में संभव नहीं है। जैन दर्शन के अनुसार भगवान की अर्थरूप वाणी को गणधर परमेष्ठी ने पद्यरूप में ही ग्रंथित किया है। पद्यरूप मे कहने का अभिप्राय उनका यह था कि मैं पूर्ण कहने में समर्थ नही हू लेकिन पद्यात्मक प्रयोग करके पूर्ण अर्थ को तो प्रकट कर सकता हूं। अल्प-कथन से पूर्णग्रहण करना ही पड़ता है,भगवान जितना जानते है उसका अनंतवॉ भाग ही कह पाते हैं, जितना भगवान कहते हैं उसका अनंतवा भाग ही गणधर परमेष्ठी पकड़ पाते है और जितना गणधर परमेष्ठी सुन पाते है उसका असख्यात अथवा संख्यातवां भाग ही शब्दरूप बन पाता है ऐसी स्थिति में कितना अर्थरूप छूट गया है, उस अर्थ को व्यक्त करने के लिए काव्य की विद्या अपनाई गई। यहॉ यह चर्चा आई कि समुद्रदत्त चरित्र महाकाव्य के अन्तर्गत आ सकता है या नही? तो सर्गादि की सामान्य विवक्षा में देखे तो यह महाकाव्य को प्राप्त होता है। महाकाव्य के बहुतायत लक्षण समुद्रदत्तचरित्र में विद्यमान है लेकिन फिर भी जयोदय व वीरोदय जैसे प्रौढ़ महाकाव्य की बराबरी नही कर सकता है लेकिन वर्तमान विवक्षा में देखते हैं तो इस काव्य से निम्न स्तर के काव्य भी आज महाकाव्य की संज्ञा पा रहे हैं। ऐसी दृष्टि से तो समुद्रदत्तचरित्र कही अधिक अच्छा है तथा इसे महाकाव्य कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। आचार्य ज्ञानसागर महाराज के चार महाकाव्य है—जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय और भद्रोदय (समुद्रदत्तचरित्र)। समस्त जैन-अजैन विद्वानो से मेरा कहना है कि ज्ञानसागर महाराज के इन चारों महाकाव्यों का समादर कर इन्हें शिरोधार्य करना चाहिए और नवनिर्मित विद्वानों को इनके पठन-पाठन के लिए प्रेरित करना चाहिए। यहॉ मंडन मिश्र जैसे विद्वान बैठे हैं, इनको मैं विशेषरूप से निर्देशित करना चाहता हूं कि संस्कृत महाविद्यालयों के कोर्स में एवं पी.एच.डी. करने वाले छात्रों के लिए इन महाकाव्यों के गर्भित विषय की तरफ निर्देशित करना चाहिए तभी मुझे प्रसन्नता होगी कि आज भी कॉलेजों मे, विद्वानो में निष्पक्षता है।

एक-एक पुस्तक एक-एक रत्न है

[प्रवचन, मुनि श्री सुधासागर जी महाराज]

आज गोष्ठी का अन्तिम दिन है। इसमें शेष लेखों का वाचन अति तीव्रगति से किया गया। भक्ति-संग्रह नाम का एक ग्रंथ भी आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने लिखा। आचार्य पूज्यपाद स्वामी और ज्ञानसागर जी महाराज के बाद कसी भी व्यक्ति ने संस्कृत में भक्तियों की रचना नही की। इन भक्तियों में पूज्यपाद स्वामी के भावों को बहुतायत से स्वीकार किया है लेकिन कुछ विशेष वर्णन भी किया गया है। हालांकि इस ग्रंथ को अभी स्वयं मैंने भी पूर्णरूप से नही पढ़ा इसलिए विशेषरूप से इस पर प्रकाश नही डाल सकूंगा।

सम्यक्त्वसार शतक पर बड़ा महत्वपूर्ण लेख बांचा गया।इस ग्रंथ में सम्यक् दर्शन के विषय को प्रासंगिक करते हुए वर्तमान में स्वाध्यायी-बन्धुओं के बीच में जो विसंवादित विषय है उनको भी बड़े सरल और सहज ढ़ग से प्रस्तुत किया गया है। जैसे—निमित्त और उपादान की प्रासंगिकता को महत्वपूर्ण बताते हुए कहा कि जितना महत्व उपादान का है उतना ही महत्व निमित्त का है। छः द्रव्यों का वर्णन, सात तत्वो मे बंध की विशेष व्यवस्था, काललब्धि आदि को भी बड़े अच्छे ढंग से इस ग्रंथ मे दर्शाया गया है। द्रव्यलिंगी मुनि को अधर्मात्मा कहते हुए अविरत सम्यक्दृष्टि को धर्मात्मा कहा है। इससे लेखक की गुणग्राहिता एवं गुण-प्रियता प्रकट होती है।

आत्माभिमुखी वृतिवाले के लिए तीन कषायों का अभाव होना नितान्त आवश्यक है—लेखक ने ऐसा भाव व्यक्त किया है।इसलिए वर्तमान में कषाय की एक चौकड़ी के अभाव में जो आत्मानुभव मानते हैं उन्हें विचार करने के लिए मौका दिया है। आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने कहा है कि शुद्ध भाव ही भेद-विज्ञान है जो अप्रमत्त भाव के स्थान से नीचे नही होता। शुद्धोपयोग की भूमिका में आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने आचर्य वीरसेन स्वामी एवं आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी का अनुकरण करते हुए कहा है कि रागांश का जब तक सद्भाव है तब तक शुद्धोपयोग संभव नही। और यह भी कहा है कि चारित्रमोहनीय के कारण सम्यक्दर्शन में हीनाधिकता होती रहती है। पुलाक आदि मुनियों का निरूपण भी आचार्य महाराज ने किया है। समय की कमी के कारण इस ग्रंथ की विशेषताओ का हम उल्लेख नही कर पा रहे हैं। इतना ही कहूंगा कि वर्तमान में यदि स्वाध्यायी बंधु-श्रावक इसका स्वाध्याय करलें, हठग्राही नही हो तो इस ग्रंथ को पढ़ने के बाद मिथ्याशंकाओ का निराकरण अवश्य ही हो जायेगा, ऐसा मेरा विश्वास है। आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज की एक-एक पुस्तक एक-एक रत्न है। इन रत्नों की कीमत आंकनी चाहिए। लेकिन क्या करें! हमारे समाज में बड़े-बड़े सरस्वती-पुत्र हैं लेकिन वे उनके शास्त्रों को प्रकाशितकर समाज के बीच में नहीं ला रहे हैं,यह बड़े खेद की बात है।

आचार्य श्री के ग्रंथों पर शेध करनेवाले छात्रों के सामने सबसे बड़ी समस्या यह है कि उन्हें आचार्य ज्ञानसागर महाराज का सम्पूर्ण साहित्य उपलब्ध नहीं हो पाता। जो थोड़ा-बहुत उपलब्ध होता भी

है तो वह एक स्थान से न मिलने के कारण उन्हें उसके अध्ययन से वंचित रहना पड़ता है। श्रीमानों और धीमानों की संगोष्ठी को मैं आदेश तो नहीं लेकिन उपदेश तो दे सकता हूं कि निकट भविष्य में आचार्य ज्ञानसागर जी के साहित्य को एक स्थान में प्रकाशित कर दिया जाये तो उन सरस्वती-पुत्र ने ये शास्त्र लिखकर हम पर जो उपकार किया है उसका कुछ अंश तो हम उन ग्रंथों को प्रकाशितकर प्राप्त कर सकते हैं। साधु तो अपनी भावना एवं वचन वर्गणाओं को ही प्रदर्शित कर सकता है उसे कार्यरूप देना गृहस्थो का ही काम है।

हित-सम्पादक नामक ग्रंथ पर भी एक संक्षिप्त लेख बांचा गया। यह एक अप्रकाशित ग्रंथ है।इस ग्रंथ की मूल पांडुलिपी (हस्तलिखित) को मैंने थोड़ा सा देखा था। बड़ा क्रांतिकारी ग्रंथ है,इस ग्रंथ में रूढ़िवादी और क्रियाकाण्डियों को सम्यक् मार्ग-दर्शन दिया गया है। जब यह ग्रंथ प्रकाशित होकर समाज के बीच मे आयेगा तो क्रियाकाण्डी और रुढ़िवादी व्यक्ति क्षुब्ध होंगे और जो जैन दर्शन के मूल को समझनेवाले होगे वे आनन्दित होगे।

आज तत्वार्थ सूत्र की टीका पर भी एक लेख बांचा गया । इस हिन्दी टीका में षटखंडागम एवं वेद-वेदांगो को उद्धृत करके इस ग्रंथ के सूत्रों के अभिप्राय को आचार्य ज्ञानसागर ने स्पष्ट किया है। और भी अन्य छोटे-छोटे लेख बांचे गये। लेकिन समयाभाव के कारण एवं सुगम होने के कारण उनको प्रासंगिक नही कर रहे है क्योंकि तीन घन्टों मे बांचे गये लेखों के सारांश एवं समीक्षा के लिए 25-30 मिनट ही तो शेष बचते है। तीन घन्टे मे बांचे गये लेखो को 30 मिनट मे पूर्णरूप से समीक्षा करना कैसे सम्भव है ? अत: मैने अति सक्षेप में मुख्य-मुख्य बिन्दुओ को यहां प्रासंगिक करके प्रवचन का रूप दिया है। यहां विद्वानों के अलावा सामान्य जनता भी बैठी है जो इन लेखों का सारांश प्रवचन के रूप में सुनना चाहती है। इतने गहन विषयो को अल्प समय में प्रवचन का रूप देना कठिन तो होता है।

किसने क्या कहा और देखा

मैं चाहता हूँ इस मन्दिर का शीघ्र ही जीर्णोद्धार हो दि. जैन समाज इस ओर अवश्य ध्यान दें। यह एक एतिहासिक मन्दिर है, वास्तुकला की शान है यहाँ की कला देखते ही बनती है। पर्यटक लोग इस कला को देखने के लिए दूर-दूर से आते हैं मेरा तो मन बहुत यहाँ पर लगा, मेरा स्वास्थ्य भी सुधर गया।

भगवान् आदिनाथ, पार्श्वनाथ की भव्य प्रतिमा है। गुफा में विराजमान 70 प्रतिमा व दूसरी गुफा में विराजमान जिन प्रतिमा चौबीसी आदि हैं। एक प्रतिमा तो अत्यन्त प्राचीन है जो सं. 55 और एक 15 की मात्र है। दर्शन करते ही बनती है। मेरा यहाँ की समाज को व कार्यकर्ताओ को बहुत-बहुत आशीर्वाद है।

गणधराचार्य कुन्थुसागर-

सांगानेर में श्री दिगम्बर जैन मन्दिर जी के दर्शन करके हृदय गद्गद हो गया। वर्तमान समय का एक भव्य जिन मन्दिर है जहाँ पर अति प्राचीन कलात्मक जिन बिम्ब है।

राजकुमार जैन,

अध्यक्ष—दि. जैन साधु सेवा समिति,

सहारपुर (उत्तरप्रदेश)

आज दिनांक 23.10.92 को सांगानेर बड़ा मन्दिर जी के दर्शन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। ऐसे मन्दिर इस भारतवर्ष में बिरले ही मिलते हैं। मैं तो दर्शन कर धन्य हो गया। ट्रस्ट कमेटी को मेरा सुझाव है कि इसके प्रचार-प्रसार की ओर ध्यान दें। ताकि ज्यादा से ज्यादा (दर्शनार्थी) समाज इस के दर्शन कर अपने को धन्य करें।

जितेन्द्र कुमार जैन

श्री दि. जैन अतिशय क्षेत्र नसियां ट्रस्ट,

सिरोंज-जिला विदिशा (मध्यप्रदेश)

सौभाग्य से एवं पूर्व कर्मों के उपार्जन से भव्य मन्दिर जी के दर्शन आज तारीख 2.4.1993 को हुऐ। दर्शन से मन को अति विचित्रता प्रतीत हुई। परन्तु यह सत्य है कि यहाँ की मूर्तियाँ बहुत ही मनोरम है और धर्म का लाभ देने वाली है। मैं समझता हूँ की दर्शन करने से कुछ पापो का बन्ध अवश्य टूटेगा।

दिगम्बर प्रसाद जैन

देहली

Wir haben den schonen Pashnathjee Tempel Bewundert und den Interessanten Ausfuhrungen von herrn sowaghmal gelausclit.

Wir wonschen Dem Tempel and Setnem caretaker Alles Gate **Foriegner**

1060 Vienna,

Gumpendorferstr 114/21

Austria.

- ☐ ज्ञान आदि परिपक्व होता है तो अमृत का जन्म होता है।
- ☐ जैन सन्त साधना और तपस्या के मूर्तिमान स्वरूप होते हैं।
- ☐ भव्य दृष्टि ऊंचे-ऊंचे मन्दिर यह धर्मशालायें बनाने में नही, साहित्य का महल खड़ा करने में लगनी चाहिए। यदि साहित्य ही सुरक्षित नहीं रहेगा तो संस्कार भी विदा हो जाऐंगे और जब संस्कार ही नही रहेंगें तो फिर देव-मन्दिरों में आयेंगे कौन?
- ☐ आचार्य ज्ञानसागरजी महान् साहित्यसृष्टा थे। उनकी समस्त रचनाओं का प्रकाशन भाषानुसार दो वोल्यूम्स में होना चाहिए-कालिदास ग्रन्थावली की तरह।
- ☐ साहित्य की उम्रदेव-मन्दिरो से अधिक होती है। उसे बहुमान दीजिए, विशेष महत्व दीजिए।

डॉ. मण्डन मिश्र

नई दिल्ली

- ☐ आचार्य श्री ज्ञानसागरजी महाराज के काव्यग्रन्थों का एक-एक खण्ड एक-एक शोध-प्रबन्ध का विषय है।
- ☐ मुझे दुःख है कि मैंने उन्हें अब तक पढ़ा क्यों नही।
- ☐ अलंकार-योजना के तो वह सिद्धपुरुष हैं। यद्यपि उससे उनके काव्य मे साहित्य आया है किन्तु वह नारिकेल-सदृश्य है जैसे नारिकेल को फोड़ने पर उसका माधुर्य प्रकट होता है, ऐसे ही उनके काव्य की बखिया उधेड़ने पर अनिर्वचनीय आनन्द आता है।

—डॉ. शिवसागर त्रिपाठी

जयपुर

- ☐ पण्डित भूरामलजी शास्त्री (आचार्य ज्ञानसागर का पूर्व नाम) निःसन्देह एक महाकवि थे। उनकी अतुलनीय-शब्द-सम्पदा को समझने के लिए संस्कृतज्ञो को भी कभी-कभी कोश देखना पड़ता है। अद्‌भुत प्रतिभा के धनी थे वह।"

डॉ. जगन्नाथ पाठक

इलाहाबाद

आनन्द अपार आज

(रचयिता-प्रो. सुशील पाटनी 'शील', अजमेर)

(दि. १२ जून को सांगानेर में संघीजी के मन्दिर में भूगर्भस्थित चैत्यालय को निकालने के अवसर पर पठित

धन्य-धन्य आज घड़ी कैसी शुभकार है।

आनन्द अपार आज, आनन्द अपार है॥ टैक ॥

खुशियां अपार आज हरदिल पै छाई है,

दर्शन के हेतु सब जनता यहां आई है।

गांव-गांव शहर-शहर, आये नरनार हैं॥ आनंद ॥१ ॥

राजधानी राजस्थान, जयपुर सुहावनी,

नगरी गुलाबी विश्व, जनमन लुभावनी

सांगानेर वास्तुकला, अनुपम अगार है॥ आनंद ॥२ ॥

सहस्त्र वर्ष पूर्व बना मन्दिर लुभावना,

'संघीजी' जग-प्रसिद्ध, नैन मनभावना।

जहां 'यक्षरक्षित' चैत्यालय सुखकार है॥ आनंद ॥३ ॥

भूगर्भस्थित पुराना चैत्यालय यह,

बालयति लाते हैं संकल्प करके वह

सुधासागर मुनिवर ने किया चमत्कार है॥ आनंद ॥४ ॥

दर्शन करन को यहां जनता जो आई है,

करने को पुण्य-बंध, घड़ियां सु पायी हैं।

धन्य 'शील' दरशन पाये, जिनबिम्ब, सुखकार है॥ आनंद ॥५ ॥

चारित्र-विभूषण, ज्ञानमूर्ति, आचार्य 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज की जीवन-यात्रा- व्यक्तित्व एवं कृतित्व

☐ निहाल चन्द्र जैन

प्राचीन काल से ही भारत वसुन्धरा ने अनेक महापुरुषों एवं नर-पुंगवों को जन्म दिया है। इन नर रत्नों ने भारत के सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक, आध्यात्मिक एवं शौर्यता के क्षेत्र मे अनेकों कीर्तिमान स्थापित किये हैं। अन्य धर्मों की तरह जैनधर्म भी इस भारत भूमि का एक प्राचीन धर्म है, जहाँ तीर्थंकर, श्रुतकेवली, केवली भगवान के साथ-साथ अनेकों आचार्यों, मुनियों एवं सन्तों ने इसधर्म को अनुसरण कर मानव समाज के लिए मुक्ति एवं आत्मकल्याण का मार्ग प्रशस्त किया है। यद्यपि इस युग के प्रवर्तक भगवान आदिनाथ (ऋषभदेव) हुए। लेकिन जैन आगमनुसार जैन धर्म अनादि है।

इस 19-20वी शताब्दि के प्रथम दिगम्बर जैनाचार्य परमपूज्य, चारित्र चक्रवर्ती, 108 श्री शान्तिसागर जी महाराज थे जिनकी परम्परा में आचार्य वीर सागर जी मुनिश्री चन्द्रसागर जी आचार्य शिवसागर जी इत्यादि तपस्वी साधुगण हुए।

मुनि श्री ज्ञानसागर जी आचार्य श्री शिवसागर जी महाराज से वि.स.2016 खानियाँ (जयपुर) में मुनिदीक्षा लेकर अपने आत्मकल्याण के मार्ग पर आरूढ़ होगये।

मुनि श्री ज्ञानसागर जी का जन्म राणोली ग्राम (सीकर-राजस्थान) मे दिगम्बर जैन खण्डेलवाल के छाबड़ा कुल मे सेठ सुखदेव जी के सुपुत्र श्री चतुर्भुज जी की धर्मपत्नी घृतावरी देवी की कोख से हुआ था। आपके बड़ें भ्रताश्री छगनलाल जी थे तथा दो छोटे भाई और थे तथा एक भई का जन्म तो पिताश्री के देहान्त के बाद हुआ था। आप स्वयं भूरामल के नाम से जाने जाते थे। प्रारभिक शिक्षा गॉव की प्राथमिक शालाओ में हुई। साधनों के अभाव में आप आगे विद्याध्ययन न कर अपने बड़े भाई जी के साथ नौकरी हेतु गयाजी (बिहार) आ गये। वहाँ 13-14 वर्ष की आयु मे एक जैनी सेठ की दुकान पर आजीविका हेतु कार्य करते रहे। लेकिन आपका मन आगे पढ़ने के लिए छटपटा रहा था। संयोगवश स्याद्वाद् महाविद्यालय वाराणसी के छात्र किसी समारोह मे भाग लेने हेतु गयाजा (विहार) आये। उनके प्रभावपूर्ण कार्य को देखकर युवा भूरामल के भाव भी विद्या प्राप्ति हेतु वाराणसी जाने के हुए। विद्या-अध्ययन के प्रति आपकी दृढ़ताएवं तीव्र भावना देखकर आपके बड़े भ्राता ने 15 वर्ष की आयु में आपको वाराणसी जाने की स्वीकृति प्रदान कर दी।

श्री भूरामल जी बचपन से कठिन परिश्रमी, अध्यवसायी, स्वावलम्बी एवं निष्ठावान थे। वाराणसी में आपने पूर्ण निष्ठा के साथ विद्याध्ययन किया और संस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहन अध्ययन करके शास्त्री परीक्षा पास की। जैन संस्कारित श्री भूरामल न्याय, व्याकरण एवं प्राकृत ग्रन्थों को जैन सिद्धान्तानुसार पढ़ना चाहते थे, जिसकी उस समय वाराणसी में समुचित व्यवस्था नहीं थी। मन क्षुब्ध हो उठा लेकिन साथ में आपने जैन साहित्य, न्याय और व्याकरण को पुनर्जीवित करने का भी दृढ़ संकल्प कर लिया। अढिग विश्वास, निष्ठा एवंसंकल्प के धनी श्री भूरामल ने जैन एवं जैनेतर विद्वानों से जैन ग्रन्थो की शिक्षा प्राप्त की। वाराणसी में रहकर ही आपने स्याद्वाद महाविद्यालय से शास्त्री की परीक्षा पास कर आप पंडित भूरामल के सम्बोधन से जाना जाने लगे। वहाँ पर ही आपने जैनाचार्यों द्वारा लिखित न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धान्त एवं अध्यात्म विषयों के अनेक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया।

बनारस (वाराणसी) से लौटकर आपने अपने ही गाँव के विद्यालय में अवैतनिक अध्यापन का कार्य प्रारम्भ किया लेकिन साथ साथ में निरन्तर साहित्य साधना और साहित्य लेखन के कार्य में भी अग्रसर होते गये। आपने संस्कृत में अप्रकाशित ग्रन्थों का गहन अध्ययन कर उनका हिन्दी अनुवाद किया। गाँव और घर में रहने पर स्वाभाविक था कि विवाह हेतु अनेकों प्रस्ताव आपके समक्ष उपस्थित हुए लेकिन आपने आजन्म ब्रह्चर्य व्रत को अंगीकार कर माँ जीनवाणी और सरस्वती की सेवा में अपने आपको समर्पित कर दिया। जीवन के 50 वर्ष आपने साहित्य साधना लेखन मनन एवं अध्ययन में व्यतीत कर पूर्ण पाण्डित्य प्राप्त कर लिया। वर्तमान शताब्दी में संस्कृत भाषा के महा काव्यों की रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले विद्वानों में आपका नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 51 वर्ष की आयु तक आप बाल-ब्रह्मचारी के रूप में पूर्ण उदासीनता के साथ गृहस्थाश्रम में ही रहे।

सर्व प्रथम 52 वर्ष की आयु में सन् 1947 मे आपने अजमेर नगर में ही आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से सप्तम प्रतिभा के व्रत अंगीकार किये। 54 वर्ष की आयु में समस्त परिवारजनों का परित्याग कर आत्म कल्याण हेतु आप जैन सिद्धान्तों के गहन अध्ययन में लग गये। सन् 1955 मे 60 वर्ष की आयु में आपने आचार्य श्री वीरसागर जी महाराज से क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण कर ज्ञानभूषण के नाम से विख्यात हुए। सन् 1957 में 62 वर्ष की आयु में आचार्य श्री शिवसागर जी से खानियाँ जयपुर में मुनि दीक्षा अंगीकार कर 108 मुनिश्री ज्ञानसागर जी के नाम से विख्यात हुए। संघ में आपने उपाध्याय पद के कार्य को पूर्ण विद्वता एवं सजगता के साथ सम्पन्न किया। रूढिवाद से कोसो दूर मुनि ज्ञान सागर जी ने मुनिपद की सरलता एवं गंभीरता को धारण कर मन, वचन, काय से दिगम्बरत्व की साधना में लग गये। आगमानुकूल मुनिचर्या को आप। कठोरता से पालन करते हुए दिन रात आपका समय ध्यान, अध्ययन, अध्यापन एवं लेखन में व्यतीत होता रहा। कुछ समय बाद सचित्त-अचित्त के प्रश्न पर आप संघ से अलग होकर धर्म-प्रभावना हेतु राजस्थान में ही विहार करने निकल गये। उस समय आपके साथ मात्र दो चार त्यागी भी जिनमें ऐलक श्री सन्मतिसागर जी,

क्षुल्लक श्री संभवसागर जी, क्षुल्लक श्री सुखसागर जी व एक दो ब्रह्मचारी ही थे। इसी बीच आप किशनगढ़ रेनवाल, खाचरियावास तथा फुलेरा इत्यादि स्थानों पर विहार कर जन-समुदाय को आत्मकल्याण के मार्ग पर चलने की प्रेरणा देते रहे। मुनिश्री उच्च कोटि के शास्त्र-ज्ञाता, विद्वान एवं उच्च कोटि के तात्विक वक्ता थे। पंथवाद से दूर रहते हुए आपने सदा जैन सिद्धान्तों को जीवन में उतारने की प्रेरणा दी और एक सदगृहंस्थ का जीवन जीने का आव्हान किया।

गुरुवर ज्ञान सागर जी महाराज के प्रथम दर्शन करने का सौभाग्य मुझे उस समय प्राप्त हुआ जब में नरायना (जयपुर) की राजकीय सैकण्डरी विद्यालय का प्रधानाध्यापक था। करीब 15 दिन महाराज का संसंघ प्रवास नरायना में रहा और इसी अवधि में 5-7 स्थानों पर महाराज श्री का प्रवचन आम जनता और जन साधारण के लिए हुआ। हमारे विद्यालय के जिस प्रांगण में उनका प्रवचन हुआ उस स्थान को स्थायी बनाने हेतु एक बड़ा स्टेज (चबूतरा) वहाँ पर बना दिया गया था। आप इसी तरह विहार करते हुए 1965 में मदनगंज-किशनगढ़ होते हुए अजमेर आये। अजमेर समाज ने भी आपके प्रवचन जन साधारण हेतु खुले (पब्लिक) स्थान पर कराये अजमेर का विद्वत समुदाय आपकी मुनिचर्या एवं ज्ञान-ध्यान और साधनासे काफी प्रभावित हुआ। उस वर्ष का काचातुर्मास अजमेर में ही हुआ। फिर आप विहार करते हुवे ब्यावर पधारे जहाँ जैन समाज ने बड़े उल्लास व उत्साह के साथ आपका स्वागत किया। ब्यावर में पं. हीरालाल जी शास्त्री ने आपके द्वारा लिखत ग्रन्थों व पुस्तकों को प्रकाशित कराने की बात कही तो आपने कहा कि जैन वाड्.मय की रचना करने का काम मेरा है, प्रकाशन आदि का कार्य आप लोगों का है। इस तरह विहार करते हुए 1967 में आपके संघ का चातुर्मास मदनगंज किशनगढ़ में स्थापित हुआ। आपके मौलिक विचारों तथा प्रवचन शैली से पूरा समाज प्रभावित हुआ।

उधर जयपुर नगर की चूलगिरी क्षेत्र पर आचार्य देशभूषण जी महाराज की वर्षा योग चल रहा था—चूलगिरी की निर्माण भी आपके मार्ग. दर्शन एवं संरक्षण में हो रहा था। उसी समय सदलगा ग्राम निवासी, एक कन्नड़ भाषी नवयुवक आपके पास ज्ञानार्जन हेतु आया। आचार्य देशभूषण जी ने शायद उस नवयुवक की भावना को पढ़ लिया था, सो उन्होंनं उस नवयुवक, विद्याधर को मुनिवर ज्ञान सागरजी के पास ज्ञानार्जन हेतु भेज दिया। गुरुज्ञान सागर जी वृद्धावस्था की ओर बढ़ रहे थे और वे वर्तमान पीढ़ी के नवयुवकों व शिक्षार्थियों के मनोभावों को समझते थे। मुनि ज्ञानसागर जी ने विद्याधर में ज्ञानार्जन की एक तीव्र कसक एवं ललक देखी। मुनिश्री ने पूछ ही लिया कि अगर विद्यार्जन के बाद (विद्याधर) छोड़ के चला जावेगा तो उनका परिश्रम व्यर्थ जायेगा। नौवजवान विद्याधर ने आजीवन सवारी का त्याग कर दिया। मुनि ज्ञानसागर जी इस त्याग भावना से काफी प्रभावित हुए और टकटकी लगाकर उस नवयुवक के मनोहारी, गौरववर्ण तथा मधुर मुस्कान के पीछे छिपे दृढ़-संकल्प को देखते ही रह गये। शिक्षण प्रारम्भ हुआ योग्य गुरु के योग्य शिष्य विद्याधर ने ज्ञानार्जन में कोई कसर नहीं छोड़ी—तत्पश्चात उन्होंने अखण्ड ब्रह्मचर्य व्रत को भी धारण कर लिया। ब्रह्मचारी विद्याधर की साधना, तत्परताएवं प्रतिभा तथा क्षयोपशम को देखकर गुरु ज्ञान सागर इतने

प्रभावित हुए की विद्याधर की मुनि पद धारण करने की भावना को फलीभूत करने हेतु, कड़ी परीक्षा लेने के बाद, उन्हें मुनि पद ग्रहण करने की स्वीकृति प्रदान कर दी। इस कार्य को सम्पन्न करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ अजमेर नगर और उसके जैन धर्मावलम्बियो को। 30जून 1968 तदनुसार आषाढ़ शुक्ला पंचमी को ब्रह्मचारी विद्याधर को विशाल जन समुदाय के समक्ष जैनेश्वरी दीक्षा प्रदान की गई और विद्याधर मुनि विद्यासागर के नाम से सुशोभित हुए।

तत्पश्चात मुनि श्री ज्ञान सागर जी का संघ विहार करता हुआ नसीराबाद पहुँचा। वहाँ आपने एक निर्मोही को मुनि दीक्षा प्रदान की और उन्हें मुनि 108 की विवेक सागर जी का नाम दिया। इसी अवसर पर स्थानीय एवं उपस्थित जैन समाज द्वारा आपको आचार्य पद से सुशोभित किया गया।

आचार्य ज्ञान सागर जी की एक ही हार्दिक अभिलाषा थी—उनके शिष्य वर्ग उनसे अधिक से अधिक ज्ञानार्जन करले। आचार्य श्री अपने ज्ञान के अथाह सागर को समाहित कर देना चाहते थे विद्यासागर में और दोनों ही गुरु और शिष्य उतावले थे एक दूसरे मे समाहित होकर ज्ञानामृत का निरन्तर पान करने और कराने मे। आचार्य ज्ञानसागर जी सच्चे अर्थो में एक विद्वान-जौहरी और पारखी थे तथा बहुत ही दूर दृष्टि वाले थे। उनकी काया निरन्तर क्षीण होती जा रही थी। गुरु और शिष्य की जैन सिद्धान्त की आराधना, पठन-पाठन एवं चर्चा-परिचर्चा निरन्तर अबाधगति से चल रही थी। 1972 मे पुन: आपके संघ का चातुर्मास नसीराबाद में हुआ। गुरु ज्ञानसागर जी महाराज की अस्वस्थ्यता मे उनके परम शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी ने पूर्ण निष्ठा और निस्पृह भाव से इतनी सेवा की कि क्या कोई लखपति बाप का बेटा भी इतनी निष्ठा के साथ अपने पिताश्री की सेवा कर पाता होगा। कानो सुनी बात तो एक बार झूंठी हो सकती है, लेकिन आँखों देखी बात को शत-प्रतिशत सत्य मानकर ऐसी गुरुभक्ति के प्रति नत-मस्तक होना ही पड़ता है।

नसीराबाद चातुर्मास समाप्ति की ओर था। आचार्य ज्ञानसागर जी शारीरिक रूप से काफी अस्वस्थ्य एवं क्षीण हो चुके थे। साइटिका का दर्द कम होने का नाम ही नहीं ले रहा था। आचार्य श्री दर्दकी भयंकर पीड़ा के कारण चलने-फिरने में असमर्थ थे। 17-18 मई 1972 की बात है। आचार्य श्री ने अपने योग्यतम शिष्य मुनि विद्यासागर से कहा, "विद्यासागर! मेरा अन्त समीप है। मेरी समाधि कैसे सधेगी?"

इसी बीच की एक महत्वपूर्ण घटना नसीराबाद चातुर्मास के समय घटित हो चुकी थी। आचार्य श्री के देह त्याग से करीब एक माह पूर्व ही दक्षिण प्रान्तीय मुनि श्री पार्श्व सागर जी आचार्य श्री के सान्निध्य मे उनकी निर्विकल्प समाधि मे सहायक होने हेतु नसीराबाद पधारचुके थे। वे कई दिनो से आचार्य श्री ज्ञानसागर जी की सेवा सुश्रुषा एवं वैय्यावृत्ति कर अपने जीवन को सार्थक बनाना चाहते थे। परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। एकाएक 15 मई 1972 को पार्श्व सागर महाराज को शारीरिक व्याधि उत्पन्न हुई और 16 मई को वे प्रात: करीब 7.45 पर अरहन्त सिद्ध को स्मरण करते हुए इस नश्वर देह का त्याग कर स्वर्गारोहण हो गये। अत: अब यह प्रश्न मुनि श्री विद्यासागर जी के

सामने उपस्थित हुआ। समाधि हेतु आचार्य पद छोड़कर किसी आचार्य की सेवा में जाने का आगम में विधान है। आचार्य श्री के लिए इस भयंकर अस्वस्थ्यता में किसी अन्य आचार्य के पास जाना भी संभव नहीं था। आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने अपने शिष्य मुनि 108 श्री विद्यासागर जी को कहा "मेरा शरीर आयुकर्म के उदय से रत्नत्रय आराधना में शनैःशनैः कृश होरहा है। अब में उचित समझता हूँ कि अब, अपने परमशिष्य को ही शेष जीवन काल में आचार्य पद पर पदासीन कर मैं समाधिस्थ होने हेतु तैयारी करना चाहता हूँ। मेरा विश्वास है कि आप श्री जिन शासन के वर्धन एवं श्रमण संस्कृति का संरक्षण करते हुए इस पद की गरिमा को बनाये रखोगे तथा संघ का कुशलता पूर्वक संचालन कर समस्त समाज को सही दिशा प्रदान करोगे।" जब मुनि विद्यासागर जी ने इस महान बोझ को उठाने में ज्ञान, अनुभव और उम्र से अपनी लघुता प्रकट की तो आचार्य ज्ञानसागर जी ने कहा "तुम मेरी समाधि साध् दो, आचार्य पद को स्वीकार करलो। फिर भी तुम्हें संकोच है तो गुरुदक्षिणा स्वरूप ही मेरे इस गुरुतर भार की धारण कर मेरी निर्विकल्प समाधि करादो। अन्य उपाय मेरे सामने नहीं हैं।"

मुनि विद्यासागर अत्यन्त विचलित हो गये। काफी मंथन किया, विचार-विमर्श किया और निर्णय लिया कि गुरु दक्षिणा तो गुरु को हर हालत में देनी ही होगी। और इस तरह उन्होंने अपनी मौन स्वीकृति गुरुचरणों में समर्पित कर दी।

अपनी विशेष आभा के साथ 22 नवम्बर, 1972 का सूर्योदय हुआ। आज जिन शासन के अनुयायियो को साक्षात् एक अद्‌भुत एवं अनुपम दृश्य देखना था। कल तक जो श्री ज्ञानसागर जी महाराज संघ के गुरु थे, आचार्य थे, सर्वोपरि थे, आज वे ही साधु एवं मानव धर्म की पराकाष्ठा की एक उत्कृष्ठ उदाहरण प्रस्तुत करने जा रहे थे। यह एक आश्चर्यकारी दृष्य था, मुनि श्री संज्वलन कषाय की मंदता का सर्वोत्कृष्ठ उदाहरण था। आगमानुसार आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने आचार्य पद त्याग की घोषणा की तथा अपने सर्वोत्तम योग्य शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी को समाज के समक्ष अपना गुरुत्तर भार एवं आचार्य पद देने की स्वीकृति मांगकर, उन्हे आचार्य पद से विभूषित किया। जिस बड़े पट्टे पर आज तक आचार्य ज्ञानसागर जी बिराजमान होते थे, उससे वे नीचे उतर आये तथा मुनि श्री विद्यासागर जी को उस पट्टे पर पदासीन किया। जन समुदाय की ऑखें सुखानन्द के ऑसुओ से तरल हो गई। जय घोष से आकाश और मंदिर का प्रांगण गूंज उठा। आचार्य श्री विद्यासागर जी ने अपने गुरु के आदेश का पालन करते हुवे पूज्य गुरुवर श्री ज्ञान सागर जी की निर्विकल्प समाधि के लिए आगमानुसार व्यवस्था की। गुरु ज्ञानसागर जी महाराज भी परमशान्त भाव से अपने शरीर का ममत्व त्याग एवं रस त्याग की ओर अग्रसर होते गये।

आचार्य विद्यासागर जी ने अपने गुरु की संल्लेखना पूर्वक समाधि कराने में कोई कसर नही छोडी। रात दिन जागकर भी आचार्य विद्यासागर जी ने मुनिवर की शांतिपूर्वक समाधि कराई। निरन्तर आचार्य श्री अपने गुरुवर को आतम से बोधन देते रहे और अन्त में समस्त आहार-पान के पूर्व में ही त्याग कर मिती जेष्ठ कृष्णा अमावस्या, वि.सं. 2030 तदानुसार शुक्रवार, एक जून 1973 को दिन मे 10 बजकर 50 मिनट पर गुरु ज्ञानसागर जी इस नश्वर शरीर का त्याग कर आत्मलीन हो गये। और दे

गये समस्त समाज को एक एकसा सन्देश कि अगर सुख शांति और निर्विकल्प समाधि चाहते हो तो कषयों का शमन कर रत्नत्रय मार्ग पर आरुढ हो जाओ, तभी आत्म कल्याण संभव है।

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने विशाल जैन साहित्य की मौखिक रचना कर माँ सरस्वती की अपूर्व सेवा की है। उन्होंने 3 महाकाव्य, कुछ चरित्तकाव्य, कुछ हिन्दी काव्य एवं अन्य मौलिक रचनायें भी की है। उनके द्वारा लिखित महाकाव्यो पर अनेक विद्वानों ने शोध पत्र तैयार कर डॉ. की उपाधि भी प्राप्त की है। तथा जून 94 माह के अंतिम दिनों में एक विशाल एवं भव्य विद्वत्त सम्मेलन का आयोजन सांगानेर में भी परम पूज्य मुनुराज श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य मे सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा चुका है। पुन: उनके वीरोदय महाकाव्य पर एक ऐसी ही अखिल भारतीय स्तर की विद्वत्त गोष्ठी माह अक्टूबर 94 मे अजमेर नगर मे भी सम्पन्न होने जा रही है। यह गोष्ठी भी मुनि श्री सुधा सागर जी के संरक्षण नेतृत्व एवं मार्गदर्शन तथा उनके सानिध्य में ही आयोजित की जा रही है।

इस तरह आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने आत्म साधना की एक ऐसी धारा को प्रवाहित किया जो आज तक निरन्तर गतिमान है। हमारे पूज्य गुरुवर ज्ञानसागर जी महाराज वीरशासन के प्रभावक आचार्यों में से थे जिन्होंने त्यागियों व्रत्तियों एवं आत्म साधकों की एक ऐसी वंशावली का बीजारोपण किया जो कालान्तर में निश्चित ही एक वटवृक्ष का रूप लेगा।

अन्त में श्रमण संस्कृति के महान साधक, महान तपस्वी, ज्ञानमूर्ति, चारित्र विभूषण, बालब्रह्मचारी परमपूज्य आचार्य श्री 108 श्री ज्ञानसागर जी महाराज के पुनीत चरणों में सादर नमोस्तु करता हुआ उनके चरणों में शत-शत वन्दन, शत-शत अभिनन्दन करता अपनी विनीत श्रद्धान्जली समर्पित करता हूँ।

—रिटायर्ड प्रिन्सीपल,
सुन्दरविलास, अजमेर।

□

परम पूज्य आचार्य ज्ञानसागर द्वारा प्रवचन सार की हिन्दी टीका पर एक - अध्ययन

□ परम-पूज्य मुनि श्री सुधासागरजी महाराज

परम पूज्य आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी इस युग के सबसे बड़े प्रभावक आचार्य माने गये हैं। अध्यात्म प्रेमियों के विशेष श्रद्धा के पात्र रहे हैं, यहाँ तक कि जैन मतावलम्बियों ने इनके नाम को मंगलमय मानकर गौतम गणधर के बाद श्रुतकेवली भद्रवाहु को मंगलरूप में लिपिबद्ध न करके परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी को लिपिबद्ध किया है इनकी मुख्य तीन कृतियाँ रत्नत्रय के रूप में मानी जाती है जिनमें एक प्रवचनसार भी है। जिस ग्रन्थ की वर्णन शैली दार्शनिक एवं बाह्य क्रियाकाण्डों से रहित, बड़े सुन्दर ढंग से अध्यात्म को प्रकट करती है। अध्यात्म से परिपूर्ण दार्शनिक शैली की विशेषता यह हैकि प्रवृत्ति परक भी स्थूल दृष्टि से देखो तो निवृत्तिपरक जैसा प्रतीत होता है ये गाथाये सहज, सरल, गहन और गंभीर है। जब सहजता, सरलता गंभीरता से जुड़ जाती है तब उस व्यक्तित्व से लाभान्वित हो पाना कठिन होता है। प्रवचनसार पर परमपूज्य अमृतचन्दाचार्य स्वामी की टीका उपलब्ध तो होती है लेकिन वह सामान्य वस्तु तत्त्व का कथन करती है। और जिस वस्तु विषय को परम पूज्य श्री अमृतचन्दसूरि ने नहीं खोला उसका स्पष्टीकरण परमपूज्यआचार्य जयसेन स्वामी जी ने अपनी टीका में किया है जो आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के हृदय को उजागर करती है एवं आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के कथानुसार दिशा का निर्देश करती है लेकिन उस दिशा को प्राप्त करने की दशा को स्पष्ट नही करती अर्थात् अध्यात्म को प्राप्त करने की दशा को स्पष्ट करती अर्थात् अध्यात्म को प्राप्त करने का साधन क्या है? इस बात को मध्यम एवं जघन्य बुद्धि वाले जिज्ञासुओ को सोचने का मौका देती है। किन्तु उन दोनों टीकाओं का आधार बनाकर कई विद्वानो ने हिन्दी टीका की है लेकिन उन टीकाओं के मध्य में अपनी तरफ से विशेषार्थ लिखकर पाठकों को आचर्य कुन्दकुन्द स्वामी के हृदय से पृथक कर दिया है। हालांकि कुछ विद्वानों ने समीचीन भाव भी प्रकट किये। लेकिन पूर्व स्पष्ट रूप से कहने का साहस नही कर पाय। परन्तु इसका साहस परमपूज्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी ने प्रवचनसार की मुख्य-मुख्य गाथाओं के ऊपर दिशा और दशा, साधन और साध्य तथा साधनों के साधनों को बड़े अच्छे ढंग से स्पष्ट करके भव्य जीवों को परमपूज्य आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के पास तक पहुँचाने का मार्ग सुलभ किया है। आज वर्तमान में इतना कहने से लोगों को समझ में नहीं आता है कि घड़ा मिट्टी से बनता है उनको इस बात का स्पष्टीकरण देने की आवश्यकता है कि घड़ा किन-किन साधनों से बनता है। इन सब बातों का ध्यान परमपूज्य आचार्य 108 श्री ज्ञानसागर महाराज

जी ने अपनी लघु हिन्दी टीका जो की सारांश रूप में है उसमें दिया है। और जिन सरल गाथाओं की हिन्दी टीका सरल जानकर छोड़ दी थी। उसकी हिन्दी परिशिष्ट के रूप में इनके ही पट्ट शिष्य परमपूज्य संत शिरोमणि सन्मार्गदर्शी आचार्य श्री विद्यासागर महाराज जी ने किया है। हिन्दी व्याख्या के साथ आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी ने मूलगाथाओं की संस्कृत एवं हिन्दी छायार्थ भी भावार्थ रूप में पद्यात्मक शैली में प्रकट किया है। उन्होंने अधिकतर दो-दो गाथओं का युगल बनाकर हिन्दी व्याख्या की है। हाँलाकि सम्पूर्ण गाथाओ को युगल रुप बनाना युक्ति संगत नही है। क्योंकि युगल उन्हीं गाथाओं का बनाया जाता है जिनका विषय मिलाने पर ही पूर्ण होता है। परमपूज्य आचार्य अमृतचन्द जी एवं आचार्य जयसेन स्वामी जी ने कुछ गाथाओं को ही युगल रूप ग्रहण किया है, न कि सम्पूर्ण गाथाओं को।

"प्रवचनसार ग्रन्थ को तीन अधिकारों में विभाजन किया है,"

"ज्ञानाधिकार"

"क्रमश: गाथाओं की हिन्दी टीका में निम्न विशेषताएँ"

गाथा नम्बर 1 की हिन्दी व्याख्या से व्याख्याकार की शैली ऊहापोहात्मक रही है ऐसा ज्ञात होता है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने भगववान महावीर स्वामी जो कि चार घातियाँ कर्मों से रहित उनको नमस्कार किया है। इस पर हिन्दी व्याख्याकार ने स्वयं शंका उठाई है कि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के समय महावीर स्वामी आठ कर्मो से रहित थे परन्तु आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने चार घातियॉ कर्मों को नष्ट करने वाले महावीर को नमस्कार क्यों किया। इस उपर्युक्त शंका का समाधान करते हुये स्वयं हिन्दी व्याख्याकार करते हैं कि उन आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने वर्तमान के महावीर स्वामी को नमस्कार नही कया। बल्कि भगवान महावीर स्वामी की उस दशा को नमस्कार किया जिस दशा से तीर्थ का प्रवर्तन हुआ था।

गाथा नं. 5—इस गाथा में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने रत्नत्रय की परिभाषा बतायी है। लेकिन हिन्दी टीकाकार ने रत्नत्रय के सराग और वीतराग दो भेद किये जो कि मूल गाथा में नही है। लेकिन आचार्य जयसेन स्वामी के अभिप्राय को ग्रहण कर हिन्दी व्याख्याकार ने रत्नत्रय के दो भेदों को प्रकट करना उचित समझा। सराग रत्नत्रय को परम्पराको मोक्ष का कारण एवं वीतराग रत्नत्रय को साक्षात् मोक्ष का कारण बतलाकर हिन्दी व्याख्याकार नेवर्तमान स्वाध्यायशील बन्धुओं की मिथ्या धारणाओं को सम्यक् करने का सामयिक प्रस्तुतिकरण किया है।

गाथा नं. 6—इस मूल गाथा में सम्यक दर्शन ज्ञान चारित्रधारी को निर्वाण की प्राप्ति एवं देव, असुर एवं मनुष्यों में उत्पन्न कराया है तब इस गाथा के भाव से स्वाध्यायशील बन्धु उलझन मे पड़ जाते है कि सराग और वीतराग रत्नत्रय भावलिङत्व रूप है फिर असुरों और मनुष्यों में कैसे उत्पन्न करा दिया। इस पर हिन्दी व्याख्याकार ने इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार दिया है कि रत्नत्रय धारण

करने वाला कोई जीव जब असुरकुमारादि की विभूति देखकर सम्यक्त्व को नष्ट करता हुआ निदानबंध कर असुरों में उत्पन्न हो गया। इस प्रकार भूतप्रज्ञापन नय की अपेक्षा से रत्नत्रयधारी को असुरकुमारादि और मनुष्यों में उत्पन्न कराने की बात कहकर गाथा की उलझन को सुलझा दिया है।

गाथा नं. 9-10—इस गाथा की हिन्दी व्याख्या में हिन्दी व्याख्याकार ने द्रव्य और गुण की परिभाषा अपने ढंग से प्रस्तुत करके स्वाध्याय शील बन्धुओंको उलझा सादिया है। "अपने आपको स्वीकार करता हुआ भी और से और रूप होता रहे उसे द्रव्य कहते हैं।" इसमें "और से और" शब्द डालकर सोचने का मौका दिया। क्योंकि "और से और" कहने का अभिप्राय इस प्रकार कहा है कि द्रव्य से द्रव्यान्तर रूप है अथवा स्वयं एक ही द्रव्य की पर्यायों कापर्यायान्तर होना है यानि इन दोनों में से क्या है। और जो द्रव्य की स्थिरता रखने वाली शक्ति को गुण की परिभाषा करते हुए कहा है तो इसमें द्रव्य की स्वतंत्र शक्ति गौणता को प्राप्त हो ही गई किन्तु साथ में गुणों का अस्तित्व भी स्वतंत्र नही रहा। इसलिये इन युगल गाथाओं में वस्तु अथवा अर्थ की एवं द्रव्य की परिभाषा भिन्न-भिन्न होने से थोड़ा सोचने के लिए मजबूर किया है। वस्तु या अर्थ की परिभाषा करते हुये उन्होंने कहा-ज्ञान के द्वारा जानने में जो आवे उसे वस्तु या अर्थ कहते हैं। वह अर्थ द्रव्य, गुण और पर्यायात्मक सत्ताको स्वीकार करते हुये सद्रूप होता है। इस अर्थ को पढ़ने के बाद ऐसा लगता है कि द्रव्य और वस्तु (अर्थ) की भिन्न-भिन्न परिभाषायें क्यों कहीं है। क्योंकि जहाँ पर अर्थ की परिभाषा बनायी है वहाँ पर प्रमेयत्वगुण को ध्यान में रखकर और जहाँ द्रव्य की परिभाषा बनायी वहाँ पर द्रव्यत्व गुण को ध्यान में रखा गया हो।

गाथा नं. 11-12— इस गाथा का हिन्दी व्याख्या करते हुये व्याख्याकार ने एक विशेष बात को प्रकट किया है कि उपयोग शब्द शुभ और शुद्ध के साथ लगाया है जबकि अशुभ के साथ उपयोग शब्द न लगाकर उदय शब्द लगाया है तब इस अशुभ के साथ उदय शब्द के प्रयोग की बात को स्पष्ट करते हुये कहा है कि अशुभोपयोगी पूर्ण कर्म सापेक्षी है अर्थात् कर्म के उदय मे ही अशुभ उपयोग होता है इस नियामक अध्वान रून कारण की अपेक्षा अशुभोपयोगी को अशुभ के साथ उदय शब्द से प्रस्तुत किया है।

गाथा नं. 13-14—हिन्दी व्याख्या में हिन्दी व्याख्याकार ने शुद्धोपयोग की परिभाषा करते हुये उसमें अभाव एवं साधनकारण को भी ध्यान में रखा है वह इस प्रकार है—जिसने अशुभोपयोग से अपनी परिणति हटाकर शुभोपयोग रूप की है। इसी शुभोपयोग से अपनी परिणति हटाकर शुभोपयोग रूप की है। इसी शुभोपयोग के बल पर सम्पूर्ण बाह्य पदार्थों को त्यागकर, सूत्रों को जानकर, संयम तप से युक्त वीतरागी साधु सुख-दुःख में समता परिणाम रखता है वह शुद्धोपयोगी है।

हाँलाकि मूलगथा में भी अभाव एवं सद्भाव कारण मौजूद होते हुये हिन्दी व्याख्याकार ने उपयोग की तारतम्यता में अभाव एवं सद्भाव (साधन) कारणों को व्यक्त किया है।

गाथा नं. 15-16—इस गाथा में विशुद्ध उपयोग से घातियाँ कर्म को नाश करने की बात कही है। लेकिन हिन्दी व्याख्याकार ने एक विचित्र रूप से विशुद्ध उपयोग की व्याख्या करके स्वाध्यायशील बन्धुओं को स्वाध्याय की अबाध गति में बाधा प्रस्तुत की है। उसमें इस प्रकार कहा कि - जब यह जीव अशुभ से शुभ में आताहै तब गुरुमुख से तत्त्व का उपदेश सुनकर ठीक ठीक श्रद्धान करता है। फिर राम-दम के द्वारा विशुद्ध से विशुद्धतर के रूपन में परिणित होने वाले अपने परिणाम को प्राप्त करता है। और अपनी अन्तरंग की क्षुद्रताको जीतकर बीतरागी होता हुआ घातियाँ कर्म को नष्ट कर सर्वज्ञ हो जाता है। इस गाथा के अर्थ में संदेह यह होता है कि शुभोपयोगी होने के बाद गुरुमुख से तत्त्व का उपदेश सुनकर तत्त्व का श्रृद्धान करता है यह बात युक्ति युक्त नही लगती है। क्योंकि शुभोपयोग होने के पहले ही तत्त्व श्रद्धान या निर्णय हो जाता है न कि शुभोपयोगी होने के बाद।

गाथा नं. 17-18—मूलगाथा में आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी ने परिणमन के दो भेद नहीं किये जो कि हिन्दी व्याख्याकार ने विलक्षण और स्वलक्षण की अपेक्षा से दो भेद किये हैं। जिसमें विलक्षण का अर्थ हरे रंग के आम का पीले रूप में हो जाना और स्वलक्षण का अर्थ - हरे रंग काआम हरेपन को न छोड़ते हुये पक्वता रूप परिणमन करना। इस प्रकार बुद्धिशाली व्यक्तियों के लिये हिन्दी व्याख्याकार ने नया विषय प्रस्तुत किया है।

गाथा नं. 21-22—इन गाथाओं की हिन्दी व्याख्या करते हुये हिन्दी व्याख्याकार मूलगाथाओं के अर्थ से ही नहीं हटे बल्कि अन्य आचार्यों के कथन से हटकर एक नया विषय प्रस्तुत कियाहै कि अर्हन्तों के वेदनीय कर्म का फल छत्र चामरादि है इस उपर्युक्त विषय को प्रस्तुत करके विद्वानो की विश्रामित बुद्धि को पुनः श्रम करने के लिए शायद कष्ट दिया हो।

गाथा नं. 33—हिन्दी व्याख्याकार ने श्रुतकेवली की परिभाषा करते हुये कहा है कि जीवाजीवादि पदार्थों का निर्णय करके यथार्थ रूप में अपने हृदय में अवधारण करने को द्रव्य श्रुतज्ञान कहते हैं1 उन इतर पदार्थों पर से अपने उपयोग को दूर हटाकर संकल्प विकल्प से रहित होकर ज्ञायक स्वरूप अपने आत्म स्वभाव में स्थित होने को भावश्रुतज्ञान कहते हैं। ये परिभाषायें द्रव्यश्रुत और भावश्रुत में तो ठीक प्रतीत होती है लेकिन हिन्दी व्याख्याकार आगे कहते है कि ऐसी ही अवस्था मे यह आत्मा श्रुलकेवली कहलाता है। इससे यह जिज्ञासा प्रकट होती है कि द्रव्यश्रुतज्ञान को द्रव्यश्रुतकेवली और भावश्रुतज्ञान से भावश्रुत केवली पना असंयत सम्यग्दृष्टी के भी प्रकट होगा क्यो? क्योंकि द्रव्यश्रुत और भावश्रुत की परिभाषा जो यहाँ बनाई है इसके अनुसार सभी सम्यग्दृष्टि केवलीपने के अधिकारी बनते हैं।

गाथा नं. 39-40—इन गाथाओं की व्याख्या करते हुये हिन्दी व्याख्याकार ने बड़ी अच्छी शंका प्रक्ट की है कि जो पर्याय अभी प्रकट नही हुई है उसे केवलीज्ञान प्रत्यक्षवत् कैसे जानते हैं। परन्तु इस शंका का समाधान संतोषजनक नही है।

गाथा नं. 41-42—हिन्दी व्याख्याकार ने इस गाथाओं की व्याख्या करते हुये शंका उठाकर कहा है कि अवधिज्ञान व मन: पर्ययज्ञान अतीन्द्रिय है, फिर भी बंध का कारण है तो फिर केवल इन्द्रिय ज्ञान के द्वारा ही बन्ध होता है ऐसा क्यों कहा गया है। इसका समाधान देते हुये कहा है कि अवधिज्ञान मन: पर्यय ज्ञान अतीन्द्रिय होते हुये भी बुद्धिपूर्वक लगाये जाते हैं इसलिये कारण मन रूपी इन्द्रिय बनी। इन दोनों के द्वारा जाने हुये पदार्थों में इष्टानिष्ट की अल्पना होती है। और यह इष्ट अनिष्ट की कल्पना इन्द्रयाधीन है। इस प्रकार कारण और कार्य इन्द्रियाधीन होने के कारण ये कथाञ्चित इन्द्रिय ज्ञान है। इसलिये इनको भी इन्द्रिय ज्ञानके समान मानकर सामान्य रूप से बंध का कारण है। ऐसा कहा है।

गाथा नं. 43-44—हिन्दी व्याख्याकार ने इस गाथा के गहन अर्थ को सरल ढंग से प्रस्तुत किया है कि चेतना कर्म बंध का कारण नहीं, मन वचन काय की चेष्टा एवं कर्म का उदय भी कर्म बन्ध का कारण नहीं है। बंध का कारण तो विकार हैं। इसी 44 नं. गाथा में हिन्दी व्याख्याकारने जो कुछ बातें कही है वे विचारणीय हैं।

जैसे—कर्मोदय के दो भेद किये—(1) प्रदेशोदय (2) विपाकोदय।

प्रदेशोदय बाल विवाह की तरह विकास कारक न होकर प्रक्रम मात्र है। विपाकोदय वयस्क विवाह की तरह विकार कारक होते हैं। इसउपर्युक्त कथन में अर्हन्त भगवान के कर्मों का उदय प्रदेशोदय के रूप में सिद्ध होता है जो कि अन्यत्र ऐसा कथन आगम में दृष्टिगोचर नहीं होता। दूसरी बात अर्हन्त भगवान की चेष्टा के निहीरा, समीहा ऐसे दो भेद। निरीहा चेष्टा के अनुसार निद्रित व्यक्ती के समान हिलने/दुलने/ बोलने आदि की चेष्टा के समान कहा है। इसलिये तीर्थंकारों की क्रियायें कर्मोदय जन्म तो है मगर कर्मबन्ध का कारण नहीं है। समीहा चेष्टा जागृत अवस्था की क्रियाओं के समान कहा हैं।

गाथा नं. 45-60—इन गाथाओं के अर्थ को स्पष्ट करने के लिये तत्त्वार्थसूत्रादि अन्य ग्रन्थों का उद्धरण के रूप में सहारा लिया हैं।

गाथा नं. 69-60—शुभोपयोग की परिभाषा बनाते हुये लिखा है कि विषय कषायों से बचने के लिये और आत्मस्वरूप में स्थित होने के लिये देव शास्त्र गुरु की पूजा एवं दानादि की क्रिया शुभोपयोग कहलाती हैं। मूल गाथा में शुभोपयोग की क्रिया देव शास्त्र गुरू की पूजा एवं दानादि की क्रिया ही है ऐसा कहा है लेकिन इससे यहाँ यह शंका होती है कि मिथ्यादृष्टि सांसारिक कार्यों के लिये देव शास्त्र गुरु की पूजा एवं दानादि की क्रिया करें तो क्या वह क्रियायें भी शुभोपयोग मे लायेगी! लेकिन इस शंका का निराकरण हिन्दी व्याख्याकार से हो जाता है कि विषय कषाय से बचने के लिये और पुन: आत्मस्वरूप में स्थित होने के लिये जो देव, शास्त्र, गुरु की पूजा एवं दानादि क्रिया है वह शुभोपयोग में आयेगी। मिथ्यादृष्टि की क्रिया नहीं।

गाथा नं. 77 से 80—इन गाथाओं को हिन्दी व्याख्याकार आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी ने उदाहरण देकर आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के ह्रदय को उजागर कर वर्तमान समाज की अध्यात्मिक समस्याओं को सुलझा दिया है। शुभोपयोग की हेयता एवं उपादेयता को एक छोटे से सरल दार्शनिक उदाहरण के से व्यक्त् किया है कि कोई व्यक्ति अपने घर को छोड़कर सम्मेद शिखर जाने के लिये 5 किलोमीटर चलकर स्टेशन तक आया। तब स्टेशन परआकर देखता है कि वहाँ पर गाड़ी नहीं तो वह स्टेशन मास्टर से पूछने जाताहै और उससे पता चलता है कि गाड़ी अभी नहीं आयी हैं। वह तो एक घंटे बाद आयेगी। तो फिर क्या उस व्यक्ति को पुन: अपने घर लौट जाना चाहिये या गाड़ी का इंतजार करते हुये वहीं पर बैठ जाना चाहिये। यदि सच्चे मन से शिखर जी जाने वाला विवेकवान व्यक्ति होगा तो वह वहीं पर विश्राम करते हुये गाड़ी का इन्तजार करेगा और अविवेकी होगा तो वह गाड़ी का इंतजार न करके घर लौट जायेगा। उसी प्रकार कोई व्यक्ति अशुभ को छोड़कर शुद्ध को पाना चाहता है। लेकिन कारणवशात् शुद्ध को प्राप्त नहीं होता तो क्या उसे पुन: अशुभ में लौट जाना चाहिये अर्थात्, नहीं बल्कि शुभ में स्थित होकर शुद्ध को प्राप्त करने की साधना करना चाहिये। इस उदाहरण से हिन्दी व्याख्याकार की दार्शनिकता प्रकट होती है। शुभोपयोग की हेयता और उपादेयता सिद्ध होती है। क्योंकि आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी जी ने भी 70-69-72 वीं गाथाओं में शुभोपयोग की हेयता प्रकट की है वहीं आगे 82वीं गाथा में शुभोपयोग की उपादेयता बतायी है।

गाथा नं. 85—इस गाथा की टीका के अर्थ में हिन्दी व्याख्याकार का सम्यक् साहस चरम सीमा पर दृष्टिगोचर होता है। जहाँ पर परम पूज्य अमृतचन्द्रसूरि ने आचार्य कुन्दकुन्द स्वमी की गाथा में करूणाभाव नामक समासान्त शब्द का अर्थ करुणा का भाव मोह का चिन्ह है अर्थात् मिथ्यात्व का चिन्ह है। ऐसे कथन को दृष्टि में रखते हुये। जैनधर्म का मूल 'दयाधर्म' सम्यक् दर्शन का साधनभूत अनुकम्पा का लोप न हो जाये इस भय से परमपूज्य अमृतचन्द्र सूरि के उपर्युक्त कथन को प्रमाद सूचक कह दिया हो अथवा उसके बाद किसी लिपिकार महोदय की कृपा से ऐसा अर्थ का अनर्थ कर दिया गया हो। लेकिन आचार्य जयसेन स्वामी जी ने अपेक्षाकृत इस कथन का सामञ्जस्य करने का प्रयास किया है।

(शुद्धोपयोग एवं उपेक्षा संयम की अपेक्षा करुणा का भाव मोह का चिन्ह है) लेकिन हिन्दी व्याख्याकार कहते हैं कि आचार्य जयसेन स्वामी भी इस सामंजस्यको बैठालने में सफल नहीं हो पाये। क्योंकि किसी भी उपेक्षा से जैनधर्म में करूणाभाव को मोह (मिथ्यात्व) का चिन्ह नही कहा गया बल्कि करुणा का अभाव मोह (मिथ्यात्व) का चिन्ह सर्वत्र दृष्टिगोचर होता है।

"ज्ञेयाधिकार'

गाथा नं. 1—इस गाथा में हिन्दी व्याख्याकार ने स्वसमय और परसमय की व्याख्या बड़े सुन्दर ढंग से की है। उन्होंने कहा है कि चतुर्थगुणस्थानवर्ती सराग सम्यग्दृष्टि निश्वास की अपेक्षा स्वसमय बन चुका है क्योंकि व्यवहार में तो माता-पिता मेरे हैं ऐसा मानता है। लेकिन द्रव्यलिंङ्गी साधु ने

माता-पिता आदि को तो छोड़ चुका है किन्तु विश्वास में भोगाकांक्षा बनी रहती है। यह स्वसमय एवं परसमय की यह दार्शनिक परिभाषा अध्यात्म के रहस्य को खोलती है।

गाथा नं. 9-10– मूल गाथा में उत्पाद व्यय ध्रौव्य को पर्याय कहा है तो हिन्दी व्याख्याकार ने शंका उठायी कि उत्पाद व्यय पर्याय हो सकते हैं। ध्रौव्य कैसे? इसका जो उत्तर दिया है उससे शंका का निराकरण नहीं होता है।

गाथा नं. 23-24– उत्पाद व्यय ध्रौव्य की अपेक्षा भी सप्तभंगी का कथन हिन्दी व्याख्याकार ने किया है जो ग्रहण करने योग्य है। क्योंकि प्रायः सप्तभङ्गी स्व और पर की अपेक्षा से घटाते हैं लेकिन इन्होंने स्व द्रव्य में ही उत्पाद व्यय ध्रौव्य की अपेक्षा सप्तभङ्गी घटाकर सप्तभङ्गी पने की व्यापकता सिद्ध की है।

गाथा नं. 39-32–कर्म चेतना के दो भेद किये। सत् कर्मचेतनाऔर असत्कर्मचेतना। यह भेद न तो मूलगाथाओं मे है और न टीकाकारों ने वर्णित किये हैं। सत्कर्म चेतना में दानपूजादि क्रिया को ग्रहण किया है। और असत् कर्मचेतना में पंचेन्द्रिय के विषयों को ग्रहण किया है। और असत् कर्मचेतना मे पंचेन्द्रिय के विषयों को ग्रहण करने वाला कहा है। यह विषय भी कर्मचेतना के रहस्य को खोलता हुआ उसकी व्यापकता का सिद्ध करता है।

गाथा नं. 33-34–मूलगाथाओं के भाव को हिन्दी व्याख्याकार ने स्पष्ट शब्दों में कहा- कर्म चेतना और कर्मफल चेतना का त्यागी साधु ही होता है। इस स्पष्ट घोषणा से आज जो वर्तमान समय में कर्मफल चेतना और कर्मचेतना का त्यागी गृहस्थ भी होता है इस बात का खण्डन हो जाता है।

गाथा नं. 44-45–इन गाथाओ का अर्थ बताते हुये परमाणु की परिभाषा बतायी -परमाणु त्रसरेणु से असंख्यातवाँ भाग प्रमाण सूक्ष्म है सो यह कथन आगामानुकूल नहीं है। क्योंकि आगम में परमाणु को त्रसरेणु का अनन्तवां भाग कहा है।

गाथा नं. 51-52–इनमें काल को अप्रदेशी कहने का अर्थ प्रदेश रहित न लेकर बहु प्रदेशत्व से रहित है ऐसा कहा। इस व्याख्या से अप्रदेशी पने का अर्थ सुगम हो जाता है।

गाथा नं. 89-90–इन गाथा में शंका उठाई कि शुभोपयोग राग रूप है तो क्या शुभोपयोग की दशा में द्वेष की अवस्था नहीं बनती? यह शाका बहुत ही अच्छी थी लेकिन उसका समाधान युक्ति युक्त नहीं दिया गया। किन्तु समाधान में ऐसा अर्थ प्रतीत होता है कि राग की ही परिणति शुभोपयोग दशा में है द्वेष की नहीं।

गाथा नं. 103-104–इन गाथाओं की हिन्दी व्याख्या में व्याख्याकार ने तो एक ऐसा स्पष्ट उदाहरण देकर गृहस्थों के शुद्धोपयोग दशा का सर्वथा निषेध कर दिया गया। हिन्दी व्याख्या में शंका उठायी गई की क्या गृहस्थ को शुद्धात्मा (शुद्धोपयोग) का ध्यान नहीं हो सकता? तो इसका समाधान देते हुये कहा है कि नहीं हो सकता। क्योंकि रंगीन चश्मा लगाने वाले को वस्तु सफेद नहीं दिख

सकती। यदि कोई कहे कि गृहस्थ दशा में भी शुद्ध अवस्था आ सकती है तो ऐसा कहना झूठ है और पागल व्यक्ति का व्यर्थ प्रलाप के समान ही है।

गाथा नं. 105-106—इसमें कहा है कि अर्हन्त जब संसारी है। तो अनन्त सुखी कैसे? इसका उत्तर यह दिया है कि सुख का अर्थ निराकुलता है। अर्हन्त भगवान चूंकि निराकुल है इसलिये अनन्त सुखी है। इस समाधान से स्वाध्यायशील बन्धुओं के मन में प्राय: जो शंका होती थी उसका समाधान बड़े सहज/सरल तरीके से होता है।

"चारित्राधिकार"

चारित्राधिकार में मंगलाचरण के पूर्व एक और मंगलाचरण निबद्ध किया गया है जो अन्यत्र परमपूज्य अमृतचन्द्रसूरी एवं परमपूज्य जयसेनाचपर्य जी की टीकाओं में मंगलाचरण रुप गाथा उपलब्ध नहीं होती है। यह गाथा परमपूज्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी ने कहॉ से उद्‌घृत की है जो कि विचारणीय विषय है। तथा इस अनुपलब्ध गाथा से ही चारित्राधिकार प्रारंभ किया है। वह गाथा इस प्रकार है—

दंसणं संसुद्धाणं सम्मण्णाणोववोग जुत्ताणं।
अव्वाबाधरदाणं णमो णमो सिद्ध साहूणं॥ 1॥

गाथा नं.3-4—इन गाथा में "आपिच्छ बंधुवग्गं" की व्याख्या अच्छे तरीके से की है। जिसको चारित्र धारण करना है। वह बन्धु वर्ग से आज्ञा इस प्रकार से लेवे की मैं आपके साथ संतोषपूर्वक रहा। आपने मेरे जीवन के कार्यों में अच्छी तरह सहायता की और आदर भी किया। इसलिये मैं आपका आभार मानता हूं। अब मुझे आप लोगों से पृथक् होकर निर्द्वन्द जीवन बिताने की आवश्यकता प्रतीत हुई है। अत: मैं श्री गुरू के पास जाकर संयमी बनना चाहता हूँ। इस शुभ कार्य के लिये आप बस लोग सम्पत्ति प्रदान करेंगे। ऐसी हम आशा करते हैं इस प्रकार नम्रता/मृदुला/भद्रता पूर्वक बिदा ले लेता है। इस बात को व्यक्त करने के बाद हीन्दी व्याख्याकार ने इस कथन के सम्बन्ध में अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है कि संयमी बनने वाले को यह अनिवार्य नही है कि वह परिवार वालों से पूछकर उनकी सम्मती पूर्वक ही दीक्षा ले क्योंकि आगम में ऐसे भी अपवाद देखे जाते हैं। जैसे—सुकुमाल ने परिवार के बिना पूछे ही दीक्षा ग्रहण की। हिन्दी व्याख्याकार के इस मत से दीक्षा लेने वालों को बड़ी सुलभता प्राप्त हो गयी। अन्यथा मूलगाथा से ऐसा प्रतीत होता था कि दीक्षा लेने के पूर्व अपने परिवार वालों की अनुमति लेना अनिवार्य है तो ऐसी परिस्थिति में बड़ी कठिनता महसूस होती क्योंकि ऐसे परिवार वाले बहुत कम देखने में आते हैं जो अपने परिवार के सदस्यों को सहजता से दीक्षा देने की सम्मति देते हैं। इसलिये दीक्षार्थियों को हिन्दी व्याख्याकार के मत से उपकृत होकर उनके उपकार को कभी नहीं भूल सकेंगे।

गाथा नं. 9-10—इन गाथाओं की व्याख्या सीधी शंका से प्रारम्भ की है कि खड़ें होकर आहार लेना, एक बार आहार लेना। यह ठीक नहीं है ऐसा श्वेताम्बर लोग कहते हैं। उन श्वेताम्बर बन्धुओ को श्वेताम्बर शास्त्रों का आधार लेकर इन गाथाओं के अर्थ की प्रमाणिकता सिद्ध की है। जैसे—श्वेताम्बर शास्त्र तत्त्वार्थाधिगम में बाईस परिषहो में एक नग्न परीषह बतलायाहै इसलिये नग्नता श्वेताम्बरों में भी सिद्ध है। तो फिर श्वेताम्बर बन्धु के अभिप्राय को लेकर प्रतिशंका की है नग्न शब्द परीषह में आया है न कि मूलगुण मे। तो इसका उत्तर हिन्दी व्याख्याकार ने यह दिया है कि मूलगुण में बाधा डालने वाले को परीषह कहते हैं अर्थात् नग्न मूलगुण होगा तभी नग्न परिषह बनेगा।

एक बार भोजन के सम्बन्ध में श्वेताम्बर शास्त्र उत्तराध्ययन के समाचारी नामक 26 वे अध्याय में लिखा है कि—

दिवसस्य चउरोभागे भिक्खु कुंज्जा विपक्खणो।
तवो उत्तरगुणे कुंज्जा दिढ भागेसु चउसुवि॥ 1॥

पढमं पोररसि समज्झायं वीयं झाणं छिपायइ।
तइयाये भिक्खायरि यं पुणो चउत्थि ये सज्झायं॥ 2॥

यानि मुनि दिवस के चार भाग कर लेवे उसके प्रथम भाग में स्वाध्याय। दूसरे में ध्यान। तीसरे में भिक्षावृत्ति। चौथे भाग में पुन: स्वाध्याय करें। इससे सिद्ध होता है कि एक बार भोजन करने का विधान श्वेताम्बर शास्त्र में भी सिद्ध होता है। और रात्रि के चार भागों का बँटवारा भी उस प्रकारा है—पहले भाग में स्वाध्याय। दूसरे में ध्यान। तीसरे में निद्रा। चौथे में पुन: स्वाध्याय। एक स्थान से आहार लेने का विधान श्वेताम्बर धन्नाचरित्र से सिद्ध होता है। दिगम्बरत्व की सिद्धि करने के लिये हिन्दी व्याख्याकार ने वैदिक साहित्य का भी आलम्बन लिया है।

श्लोक—

एकाकी निष्पृह: शांत: कर्म निर्मूलन क्षय:।
कदाऽहं संभविष्यामि पाणिपात्रो दिगम्बर:॥

भर्तृहरि के इस श्लोक से स्पष्ट होताहै कि करपात्र भोजी एवं नग्न दिगम्बर साधु बने बिना कर्मों का नाश नहीं किया जा सकता यह निर्विवाद सिद्ध है।

श्वेताम्बर के उववाइ सूत्रों के प्रश्न 29 में बतलाया है दिगम्बरत्व से मुक्ति प्राप्त होती है। घर सम्पदा परिवार आदि सब कुछ त्यागने पर भी दिगम्बरत्व साधु हुये बिना अधिक से अधिक अच्युत स्वर्ग तक जाकर जन्म ले सकता है।

गाथा नं. 11-14—इनमें मुनि को यत्नाचार पूर्वक चलने पर भी जीव मर जाये तो भी अहिंक। इस विरोधाभास को हिन्दी व्याख्याकार ने बड़े दार्शनिक तरीके से प्रस्तुत किया है कि यत्नाचार पर्वूक

चलने पर जीव मर जाये तो साधक के कैसे परिणाम होना चाहिये तब वह अहिंसक कहलायेगा। इसको बताया है कि जैसे चलते हुये जीव मर गया और बाद में पता चल गया कि जीव मर गया तो फिर पश्चाताप करेगा। वह यह नहीं सोचेगा कि मैं तो देखकर चल रहा था जीव मर गया तो मैं क्या करुं ? यदि ऐसा भाव आ गया तो फिर वह हिंसक की कोटि में आयेगा।

अधिवासे वा विवासे का अर्थ स्थविर कल्पी और जिनकल्पी से लिया है। अधिवासे का अर्थ-स्थविरंकल्पी जो की संघ सहित रहते हैं। और विवासे का अर्थ जिनकल्पी जो कि संघ रहित एकाकी विचरण करते है जैसे—सुदर्शन आदि। हाँलाकि ऐसाअर्थ संस्कृत टीकाकारों ने नहीं लिया है। लेकिन हिन्दी व्याख्याकार का एका अर्थ निकलना आगम विरुद्ध भी नहीं है।

गाथा नं. 16–'भत्ते वा खमणे वा' का अर्थ करते हुये कहा है कि आगम विरुद्ध आहार पापबंध का कारण है ही लेकिन आगमुनुकूल आहार भी सर्वस्व भूत समता भाव से दूर करने वाला ही है और प्रादेशिक ममता को उत्पन्न करने वाला होने से परिग्रह रूप बन जाताहै। और जहाँ परिग्रह का संस्कार आ जात है वहाँ हिंसा अंश रूप में आये बिना नहीं रहती है। इस प्रस्तुत विषय से साधक हो यह शिक्षा मिलती है कि आगमानुकूल आहार भी मेरा स्वभाव नहीं है। इसी 'भत्ते वा खमणे वा' की व्याख्या में आहर को शरीर की क्रिया कहा तो उपवास करना भी शरीर की क्रिया है।

गाथा नं. 17 से 23–इन गाथाओं की हिन्दी व्याख्या में यत्नाचार की व्याख्या करते हुये एक गृहस्थ का व्यावहारिक उदाहरण देकर कहा है कि एक पुरुष अपनी स्वस्त्री के साथ बार-बार सहवास करता है। तो बहुत हिंसा होती है। लेकिन बहुत हिंसा होने पर भी उस लोक व्यवहार में पापी नही कहा जाता । लेकिन कोई पुरुष दूसरी स्त्री के साथ एक बार भी सहवास करता हो उसमें अल्प हिंसा होती है। लेकिन अल्प हिंसा होते हुये भी लोक व्यवहार मे पापी कहा जायेगा।

परमपूज्य अमृतचंद्राचार्य ने रागद्वेष को हिंसा कहा। तो हिन्दी व्याख्याकार ने इसका खण्डन किया है कि रागादिभावों का नाम परिग्रह है। हिंसा नहीं क्योंकि परमपूज्य कुन्दकुन्द स्वामी ने हिंसा के साथ बंध का अविनाभावी सम्बन्ध नहीं घटाया बल्कि परिग्रह के साथ अविनाभावी सम्बन्ध बंध के साथ बताया है। और रागद्वेष बंध के साथ अनिनाभावी संबंध रखते हैं इसलिये रागद्वेष को परिग्रह लेना चाहिये। हिन्दी व्याख्याकार के इस युक्तियुक्त कथन से ज्ञात होता है कि व्याख्याकार कुन्दकुन्द स्वामी के अभिप्राय को सुरक्षित रखने के लये परमपूज्य अमृतचन्द्रसूरि के द्वारा कथित अर्थ को गौण करके सम्यक् साहस प्रकट किया है।

गाथा नं. 32 से 39–इन गाथाओं की व्याख्या में इस अभिप्राय को ध्यान में रखते हुये कि श्वेताम्बर मतावलम्बियों को दिशाबोध मिले इस प्रकार की व्याख्या की है। हिन्दी व्याख्याकार ने उन्हें श्वेताम्बर मतावलम्बियों की स्त्रीमुक्ति सम्बन्धी धारणा पर खेद व्यक्त करते हुये कहा है कि श्वेताम्बर लोग स्त्री मुक्ति कैसे मानते हैं ये मुझे समझ में नहीं आता है। क्योंकि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में उववाई सूत्र नं. 12 में पृष्ठ 205 में लिखा है कि स्त्री के वज्रवृषभनाराचसंहनन नहीं होता है। वजवृषभनाराच

संहनन धारी पुरुष ही मोक्ष जा सकता है। विमलसूरि रचित पाउमचरिउ में पर्व 77 में कहा है कि श्रेणिक राजा से गौतम गणधर के प्रति प्रश्न करवाया है कि हे प्रभो! तपस्या करके भी नारी कौन सी गति को प्राप्त कर सकती है उस पर उत्तर मिलताहै कि सीता जैसी घोर-घोर तपस्या करने वाली स्त्रियाँ भी स्वर्ग तक ही जा सकती है उसके आगे नही। और श्वेताम्बर शास्त्रों में स्त्रियों को ग्यारह अंग से अधिक ज्ञान नहीं बताया फिर वह केवलज्ञान की अधिकारी कैसे हो सकती है।

गाथा नं. 40-42—ये गाथायें आज वर्तमान जिज्ञासुओं की जिज्ञासा का विषय बनती है। इसी जिज्ञासा के समाधान के लिये जब ज्ञानसागर महाराज जी की हिन्दी व्याख्या देखते हैं तब भी जिज्ञासु की जिज्ञासा अतृप्त ही रह जाती है। क्योंकि हिन्दी व्याख्या में इन गाथाओं की व्याख्या में विशेष स्पष्टीकरण नही दिया गया है। हाँलाकि ज्ञानसागर महाराज जी जैसे तात्त्विक दार्शनिक व्यक्तित्व को इन गाथाओं के विशेष कथन को स्पष्ट कर जिज्ञासुओं की जिज्ञासा को तृप्त करना चाहिये था। क्योंकि मूल गाथाओं में कुन्दकुन्द स्वामी ने दीक्षा लेने वाले को कैसा होना चाहिये। तो उसके बारे में सुन्दर मुख आदि लक्षण बताकर एक जिज्ञासा के लिये स्थान दिया जबकि करणानुयोग में हुंडक संस्थान वालों को भी मोक्ष स्थान प्राप्त करना बताया है तो फिर यहाँ पर इस प्रकार की शर्त क्यों रखी गयी यह बात हिन्दी व्याख्याकार को खोलना चाहिये था। पर नहीं खोला। यह हम लोगों के दुर्भाग्य का ही सूचक है।

गाथा नं. 77-78—इसकी व्याख्या में एक सामयिक कुरीति को समाप्त करने के लिये इन गाथाओं के मध्य में कहा है कि जो जादू-टोना करके साधारण लोगों को मंत्रादि देकर प्रसन्न करके अपनी सेवा सुश्रुषा आदि करते हैं अथवा करने वोले जीव भी अभियोग और किल्विष जाति के देवों में उत्पन्न होते हैं।

इस प्रकार प्रवचनसार के तीन अधिकारों पर आचार्य ज्ञानसागर महाराज जी की हिन्दी व्याख्या को अध्ययन करने के बाद अपनी अल्प बुद्धि से कुछ संक्षेप में विशेषताएँ यहाँ पर प्रकट की है। वैसे इस व्याख्या में और भी गहन विशेषतायें हो सकती है। अत: स्वाध्याय बन्धुओं को परम पूज्य आचार्य ज्ञानसागर महाराज कीहिन्दी व्याख्याका पठन पाठन करना चाहिये। पढ़ने वाले एक दार्शनिक मनीषी की विचारधारा से परिचित होंगे एवं आगम के गहन अर्थ को कहाँ? किस समय? किस प्रकार से कथन करना चाहिये यह विद्या भी ज्ञात होगी।

□

आचार्य ज्ञानसागर का मानवतावादी दृष्टिकोण

□ क्षु. १०५ धैर्यसागरजी महाराज

२०वीं शताब्दी के साहित्य जगत के नक्षत्र लोक में आचार्य ज्ञानसागरजी का व्यक्तित्व अभिनव सूर्य पुञ्ज के रूप में उदित होना मानों सम्पूर्ण मानव जाति को मानवता के लिए चुनौति देता हुआ ललकार रहा हो।

उनका व्यक्तित्व कैसा था यह बताने की अपेक्षा उनके जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय जैसे महाकाव्य आदि साहित्य का आलोड्न किया जाय तो मानस पटल पर एक सुन्दर सा पोट्रेट बन कर मानवता का एक जीता जागता आदर्श सामने नयनाभिराम होने लगता है।

आज जबकि सारा विश्व भौतिक सुखसुविधाओं के लिए नये-नये अनुसन्धान करने में लगा है तो वहां पुरातन संस्कृति का आधार आत्म अनुसंधान का फलानुभाव रूप स्वर्ग मोक्ष का श्रेयस्कर रूप परिणति को कल्पना की उड़ान मात्र मानकर उससे पराङमुख हो इन्द्रिय प्रत्यक्ष प्रायोगिक क्रिया कलाप प्रधान हो गये हैं। इसलिए प्रत्येक मानव अपने जीवन को सुख साधन सम्पन्न मय बनाना चाहता है।

वर्तमान विश्व का प्रत्येक मानव अपने जीवन मे जैसे हो वैसे इन्द्रिय सुख संसाधनों को एकत्रित करने में कमर कसके लगा हुआ है। इस संबंध मे आचार्य ज्ञानसागर जी ने खेद व्यक्त करते हुए वीरोदय में लिखा है कि "अहो ये संसारी लोग कितने स्वार्थी हैं, वे सोचते है कि संसार मे मैं सुख से रहूँ, यदि अन्य कोई दुख में गिरता है तो गिरे हमारे मन मे अन्य जनकी चिन्ता क्यो हो? इस प्रकार सर्व जन (प्राय: लोग) अपने-अपने स्वार्थ साधन के सिद्धान्त को प्राप्त हो रहे हैं।"[१]

वर्तमान विश्व में आदमी इस तरह स्वार्थान्ध हो गया है कि वो अपने जीवन के अलावा अन्य जीवन को तो मनुष्यों की उपयोगिता का एक मात्र साधन मानता है ऐसे स्वार्थ लोलुपियों के बारे मे आचार्य ज्ञानसागर जी वीरोदय मे लिखते है कि "आज लोग दूसरे के खून से अपनी प्यास शान्त करना चाहते हैं और दूसरे के प्राणों के विनाश से अर्थात् उनके मॉस से अपनी भूख मिटाना चाहते है। आज मैं अपनी ऑख से जगत में ऐसी स्वार्थ परायणता की स्थिति को देख रहा हूँ।[२]

उपरोक्त खेद पूर्ण वचन से ज्ञात होता है कि कवि हृदय को ऐसा देखना कितना पीड़ा दायक लगा है। कवि हृदय और संत हृदय एक सिक्के के दो पहलु है क्योकि सन्त के अन्दर स्वाभाविक करूणा होती है तो कवि के अन्दर करुणा रस का योग होता है। सन्त कबीर फक्कड़ कवि के रूप मे पहचाने जाते हैं उन्होंने अपने समय की परिस्थितियो से व्यथित होकर मानव की स्वार्थ पूर्ण प्रवृत्तियो को अपनी लेखनी के माध्यम से नंगा कर दिया था। एक स्थान पर वो लिखते है कि—

"तुरकी धरम बहुत हम खोजा

बहु बजगार करे ए बोधा

गाफिल गरब करे अधिकारी

स्वारथ अरथि बधे ए गाई

जाको दूध धाई करि पीजे

ता माता को बध क्यू कीजै ?"

एक ओर तो मानव अपने आपको धर्म का अधिकारी कहकर अहंकार करता है और दूसरी ओर मिथ्याचरण करता हुआ जिव्हाकी स्वार्थ हेतु गाय का वध करता है। बकरी का खारा दूध पीना और मीठा दूध देने वाली गौ की हत्या करना यह क्या मानवता हो सकती है ?

किसी भी भारतीय धर्मों में जीव हत्या को अच्छा नही माना गया है। अहिंसा को ही सर्वश्रेष्ठ धर्म की प्रतिष्ठा दी गई है। भारतीय साहित्य का तो प्राण है अहिंसा।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने उसी अहिंसा तत्व को प्राणों के रक्षार्थ धूर्त लोगों की मुखबिरी को उजागर करते हुए व्यंग्य किया है कि "अहो। धूर्तजन कहते हैं कि जगदम्बा बकरे की बलि से संतुष्ट होती है। किन्तु यदि माता भी पुत्र के खून को पीने लगे तो फिर रात्रि में भी सूर्य उदित हुआ समझना चाहिए।[३] आगे उन्होने मनुष्य की इस प्रकार की स्वार्थकृति को देखते हुए "महानीचता जैसे तुच्छ शब्दों का भी प्रयोग किया है।"[४]

महाकवि ज्ञानसागरजी अध्यात्म रस के सिद्ध हस्त अनुभवी थे उन्होंने संसार स्वरूप का जो वास्तविक चित्रांकन किया है इससे ज्ञात होता है कि यह सब उनकी दृष्टि से अछूता नही रहा है और रह भी कैसे सकता है संसार में यह सब तो होना मानो एक नियति बन गई है। जिसकी परिणति आचार्य ज्ञानसागर जी की लेखनी मे परिलक्षित होती है। .वो लिखते हैं कि "अहो आज लोग बुढ़ापे में भी नवोढ़ा के साथ संगम चाहते हैं।

आज करुणा सहित हुए कितने ही निर्दयी लोग दुष्कामी सिंह के हाथ में अपने उदर से उत्पन्न हुई बालिका को मृगी के समान स्वयं बेच रहे हैं।

"आज संसार में मनुष्य अयोग्य वचनो से गुरुजनो का अपमान कर रहा है और पिता भी स्वार्थी बनकर अपने पुत्र का परित्याग कर रहा है। एक उदर से उत्पन्न हुए दो सगे भाईयों में आज परस्पर अकारण की शत्रुता दिखाई दे रही है और स्त्री पुरुष में कलह मचा हुआ है।[५]

उपरोक्त कथन से यह स्पष्ट होता है कि जर जोरु जमीन के लिए जूझता परिवार अपनी श्वासों को जोह रहा है तो समाज के हुलिया का रूप भी बदरूप होता जा रहा है।[६]

आज यदि विश्य में अशान्ति फैल रही है तो एक मात्र-अन्तर्राष्ट्रीय बाजार के अर्थ तन्त्र को शासित करने के लिए सम्राट का मुकुट पंहनने की होड़ के कारण ही, फलतः युद्ध की विभिषिका का महा विकराल रूप पूरे विश्व पर मंडराने लगा है। जिससे मानव मात्र के ही नही वरन् विश्व प्राणी के अस्तित्व पर प्रश्न चिन्ह लग गया है। आचार्य ज्ञानसागर जी विश्व की भेड़ चाल को देख चिन्तित

होकर लिखते हैं कि "आज इस भूतल पर समस्त जन अपनी अपनी रोटी को मोटी बनाने मे लग रहे हैं। कोई भी किसी अन्य भी भलाई विचार नहा कर रहा है। अहो आज तो यह स्वार्थ परायणता रूपी राक्षसो सारे मनुष्य लोक को ही ग्रस रही है।'

आज का यह मानव खीर खाने की इच्छा करते हुए भी दूसरों का चना खाने के लिए उद्यत देखकर उदर पीड़ा से पीड़ित हुआ दिखाई दे रहा है। अर्थात् भूख का ढोंग दिखाता है। दु:ख होता है कि आज धरातल पर यह नाम मात्र से मनुष्य बना हुआ है

उपरोक्त कथन से स्पष्ट है कि वर्तमान ने भूत की प्रतिमा खण्डित की है और जिसने भूत से कुछ सीख न ली हो तो क्या भविष्य में महामानव का निर्माण कर सकता है?

एक ओर तो इस युग ने विश्व को महामानव दिये हैं भगवान् महावीर, बुद्ध, नानक, ईसा मसीह के रूप में और टैगोर, विवेकानन्द, अरविंद, गॉधी, अरस्तु, जरथुस्त कालीदास, शेक्सपीयर जैसे विचारक दिये हैं वहॉ पर मानवता का अध: पतन देखकर हृदय विदारक संताप होना सहज ही है।

इस सब का कारण खोजा जाय तो यही पता चलता है मानव आदिभौतिक वादी का अभ्यस्त हो गया' है। विज्ञान ने नये-नये आविष्कारो को देकर मनुष्य का विश्वास हासिल कर उसे भौतिकता के सामने नतमस्तक कर दिया है।

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो विश्वास समर्पण का कारण है और समर्पण श्रद्धेय रूप क्रिया का हेतु है। अत: विज्ञान ने मनुष्य की सनातन धर्म संस्कृति की श्रद्धा पर कुठाराघात किया है। फलत: मनुष्य प्राचीन ऋषि मुनियो की परम्परा को छोड़ उनके उपदेशों को भुला बैठा और आचार विचार से उच्छृखंल हो स्वैर विहारी हो गया।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने ऐसी ही निम्न आचार विचार वाली मनोदशा के बारे में लिखा है कि "कही पर कोई सुरा (मदिरा) पान करने मे सलंग्न है, तो कहीं पर दूसरा मॉस खा खाकर अपने उदर को कब्रिस्तान बना रहा है, कही पर कोई मकान के किसी कोने में बैठा हुआ पराई स्त्री का आत्मसात् कर रहा है। कहीं कोई पराये धन का अपहरण कर रहा है, तो कही पर कोई अपने झूंठे वचन को पुष्ट करने वाले के लिए उपहार दे रहा है, कहीं पर कोई हठात् पराई स्त्री को हर रहा है, तो कही पर कोई अपने उदर पूर्ति के लिए अपनी जटाएँ फैला रहा है।"[3]

उपरोक्त कथन से ज्ञानसागर जी ने मानव के पतित होते हुए विवेक स्तर को बाखूबी से सूचित किया है। देखा जाये तो मानव भी संसार के प्राणियो की तरह एक प्राणी है, वह भी एक जानवर है, फर्क इतना ही है कि वह विवेक पूर्ण क्रियाएँ करके "जान" अर्थात् "प्राण" "वर" अर्थात् श्रेष्ठ यानि कि प्राणो वालो में "श्रेष्ठ जानवर" है। विवेक के स्तर के नीचे आने पर वह पशु तुल्य है क्योकि पशुओं मे भी आहार भय मैथुन और परिग्रह सज्ञाएँ, (मुर्छाएँ) क्रियाएँ हैं तो मनुष्यो में भी है। हड्डी चमड़ी मांस रस रुधिर वीर्यादि मनुष्यों में है तो पशु भी इसमे समानता रखता है।

तब फिर मनुष्य किस बात मे श्रेष्ठ है उन तिर्यन्चों की अपेक्षा से जो रात्रि में खाने पीने की

बात तो छोड़ो बोलते तक नहीं है। चलना फिरना छोड़ जो एक स्थान पर रहते हैं फिर क्यों पूजा जाता है मनुष्य देवता तुल्य? इसका समाधान आत्मायन में मिलता है कि चरित्र से ही मनुष्य देव तुल्य और चरित्र से ही राक्षस होता है। आगे इसी ग्रन्थ में मानता को नमस्कार किया गया है कि जगत को धारण करने वाली पराशक्ति स्वरूप विश्व शान्ति की संस्थापना करने वाली तथा श्रेय ओर प्रेय को बढ़ाने वाली है मानवता तुझे मेरा नमस्कार है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि मनुष्य नहीं मनुष्यता पूजी जाती है क्योंकि मनुष्यता से ही सम्पूर्ण विश्व में सुख शान्ति आनन्द के योग्य वातावरण बनाया जा सकता है। और वहीं मनुष्य अपना वास्तविक विकास पर आत्मोपलब्धि कर सकता है।

"मनुष्य जन्म की सार्थकता मनुष्यता से है" इस सम्बन्ध में आ. ज्ञानसागरजी ने बहुत ही सुन्दर विचार प्रगट किये हैं, वो लिखते हैं कि—"माता के उदर से जन्म लेते ही मनुष्य तो हो लेता है फिर भी मनुष्यता प्राप्त करने के लिए प्रकृति की गोद में पलकर समाज के सम्पर्क में आना पड़ता है। वहां इसे दो प्रकार के सम्पर्क प्राप्त होते हैं एक तो इसका बिगाड़ करने वालों के साथ, दूसरे इसका भला चाहने वालों के साथ। अतः इसे भी दोनों ही तरह की प्रेरणा प्राप्त होती है। अब यदि यह इसका भला करने वालों के प्रति भलाई का व्यवहार करता है। अमुक ने मेरा अमुक कार्य निकाला है मैं उसे कैसे भूल सकता हूँ। इसके बदले में मेरा सर्वस्व अर्पण करके भी मैं उनसे उऋण नहीं बन सकता। इस प्रकार आभार मानने वाला एवं समय आने पर यथाशक्य उसका बदला चुकाने की सोचते रहने वाला आदमी मनुष्यता के सम्मुख होकर जन से सज्जन बनने का अधिकारी होता है। हाँ। अपने अपकार का भी उपकार करना जानता हो उसका तो फिर कहना ही क्या वह तो महाजन होता है। कोई ऐसा भी होता है कि जो भलाई का बदला भी बुराई के द्वारा चुकाया करता है उसे जन कहे या दुर्जन। अतः बुराइयों में फंसकर अवनत बनने की अपेक्षा से भलाई के कार्य करते चले जाना एवं अपने आप को उन्नति से उन्नतर बनाना ही मनुष्यता है।"[१]

जहाँ चाह है वहाँ राह है, लक्ष्यहीन वैसा ही है जैसा कि कागज का फूल जिसमें सुगंधि नही होती। आज का मानव निस्सार फूहड़पन के अलावा कुछ नही है। मानव जीवन भर कठिन परिश्रम करके नश्वर भौतिक आविष्कारों को प्राप्त कर जीवन की उपलब्धि मानकर आनन्द मना रहा है। पर उसका यह आनन्द आंशिक है जैसे कि पटाखे के विस्फोट से निसृज चिंगारियों से किसी को संतुष्टी नहीं हुआ करती अपितु होती है धन जन धर्म और समय की बरबादी।

मरता है तो मरजा पर जीते जी कुछ कर जा भारतीय संस्कृति के पुरातन ऋषि मुनियों ने मानव जन्म को सार्थक बनाने कि प्रेरणा देते हुए यह सूक्ति दी है। भारतीय संस्कृति का यह विश्वास है कि जीवात्मा जैसा कर्म करती है वैसा ही फल पाने के लिए पुनर्जन्म को धारण करती है । इस सम्बन्ध में ज्ञानसागर जी ने करनी का क्या फल मिलता है के बारे में लिखा है कि यह जीव अपने क्रोध रूप भाव से नरक जाता है, लुब्धता से कृमि-कीट आदि की पर्याय पाता है, छल प्रपंच से पशुपना को प्राप्त होता है परोपकार से देव लक्ष्मी की प्राप्ति और असन्तोष से मनुष्यपने को पाता है।

भारतीय विचारधारा में चौरासी लाख योनियों की भटकन से बचने के लिये चार प्रकार के आश्रमों की व्यवस्था की है जिसमें मनुष्य चार पुरुषार्थ धर्म अर्थ काम और मोक्ष पुरूषार्थ करके अपनी आत्मा को नर से नारायण, भक्त से भगवान बना लेता है और जन्म मरण के दु:खों से मुक्त हो जाता है।

आचार्य ज्ञानसागर जी ने जयोदय में लिखा है कि अर्थ पुरुषार्थ लौकिक सुख के लिये है जन्मान्तरीय आगामी सुख के लिए मोक्ष पुरुषार्थ है। किन्तु धर्म पुरुषार्थ की तो कोए की ऑख में स्थित कनीनिका के समान दोनों ही जगह आवश्यकता है। इस प्रकार ये चार पुरुषार्थ होते हैं।[11]

पुरुषार्थ का अर्थ होता है कि पुरुष यानि आत्मा और अर्थ यानि प्रयोजन तात्पर्य, अर्थात् धर्म अर्थ काम को आत्म प्रयोजन के लिये किया जाये तभी मोक्ष की प्राप्ति हो सकती है। यहां पर आत्म प्रयोजन सामान्य है प्रत्येक आत्मा का हित छिपा हो जिसमें वह पुरुषार्थ कहलाता है।

अत: धर्म अर्थ काम की क्रियाएँ ऐसी हों जिसमें स्वकल्याण के साथ परकल्याण भी होवे और यह तभी सम्भव है जब नीति न्याय पुर्वक इन क्रियाओं को किया जाय। तभी मानव से महामानव बना जा सकता है।

मानव का आचार विचार ओर आहार कैसा होना चाहिए इस सम्बन्ध मे आचार्य ज्ञान सागर जी ने बहुत ही सूक्ष्म वर्णन किया है। वो लिखते हैं कि मनुष्य को चाहिए कि वह अपने कुलक्रम से आयी हुई आजीविका को चलाता रहे और पाप पाखण्ड से बचता रहे एवं जैसा अपने आपको रुचे, उसी समुचित आश्रम में निरत रहकर अपना जीवन बिताये। लेकिन जिस आश्रम को जब तक अपनाये रहे, तब तक उस आश्रम के नियमों का उल्लंघन कभी न करो।

जिन्दगी नदी के प्रवाह के समान है। जिस प्रकार से नदी दो पुलों से बन्धकर बहती है तो स्व पर कल्याणी होकर सार्थक होती है और तट बन्धन का उल्लंघन कर बहती है तो सर्वनाश कर निरर्थक सिद्ध होती है। उसी प्रकार से जीवन नीति न्याय पूर्वक होता है तो स्वपर कल्याणक सिद्ध होता है और अनीति अत्याचार अन्याय अनुशासन हीन होता है तो स्वकल्याण के साथ-साथ पर कल्याण को भी तहस नहस कर असन्तुलित कर देता है जिसका प्रभाव समाज देश और विश्व पर पड़ता है।

इसलिए मनुष्य को अपना जीवन कैसा बनाना चाहिए इस सम्बन्ध में ज्ञान सागर जी लिखते है कि मनुष्य को चाहिए कि जुला खेलना, मॉस खाना, मदिरा पीना, पर स्त्री संगम, वेश्यागमन, शिकार और चोरी तथा नास्तिकतापना इन सभी को त्याग दे। अन्यथा यह सारा भूमण्डल तरह तरह की आपदाओ से भर दिया जायेगा।

आगे इन व्यसनों को विश्लेषित करते हुए लिखते हैं कि महापुरुषों ने शर्त लगाकर कोई भी काम करना द्यूत कहा है। इसमें हारने और जीतने वाले दोनों सक्लेश पाते हुए नाना प्रकार के कुकर्मो मे प्रवृत्त होते हैं। इसलिए हे भव्य। राजन। तुम इसे दूर से ही छोड़ दो।

जसों चर जीवों के शरीर मांस नाम से प्रसिद्ध है, जिसका खाना तो दूर नाम लेना भी विद्वानों के बीच सर्वथा निषिद्द माना गया है। इसलिए उत्तम शाक फलादि के रहते हुए मनुष्य उस मांस को खाना चाहता है, यह बड़े आश्चर्य की बात है दूसरे के रक्त के प्यासे उस मनुष्य को धिक्कार है।

इस भूतल पर भाग, तम्बाखू, सुलभा, गांजा आदि वस्तुओं को निर्लज्ज हो स्वीकार करने वाला मानव बुद्धि विकार परवशता और अत्यन्त दीनता प्राप्त करता है। इसीलिए जो इन मदकारी पदार्थों से मत हो जाता है, वह धन्य नहीं अर्थात् निन्द्य है ऐसा मैं कहता हूँ।

"शुद्ध शहद की मक्खियों के समूह घात से उत्पन्न और उन मक्खियो के मेदे की धाराओ से भार होता है वह निर्दयता पूर्वक मक्खियों के छत्ते को निचोड़कर लाया जाता उसे सांसी लोग, म्लेच्छ और घाघे पीते हैं। भले पुरुष उसे कभी नही पीते।"

"इस संसार मे मनुष्य कुत्ते की तरह दूसरे का झूठन और वैसे ही पर स्त्री के सेवन की चेष्टा करता है। दरवाजे-दरवाजे भटकने वाले, उस रंक, भ्रष्टाचारी पुरुष को भी धिक्कार है।"

"अधिक क्या कहे, गुप्त रूप से विषय लोलुप और परायी स्त्री को घूरने वाले मनुष्य माता बहन और पुत्री तक भी गमन करता है।"

"वेश्या मानों सम्पूर्ण पापों का हाट है, चौराहे पर रखी जलकी मटकी के समान सभी के लिये भोग्या है। उसके उपभोग में कल्याण का लेशमात्र नही होता। किन्तु इसके विपरीत वह शरीर का शोषक है, अनेक प्रकार के उपदंश आदि रोग पैदा करके शरीर का नाश करती है। अत: उसके साथ प्रणय सर्वथा अनैतिक हैं।"[२४]

"हे वत्स। खेद की बात है कि जो लोग शिकार खेलते है वे विनोद वंश निरपराध प्राणियों का संहार करते हैं। प्राणि मात्र के शत्रु उन लोगों को धिक्कार हैं।"[२५]

"धन तो संसार भर के प्राणियों से भी अधिक प्रिय होता है, उसका अपहरण करने वाले का चित्त स्वयं ही भयभीत हुआ करता है। अपनी शीघ्र मृत्यु के लिये अपने हाथों खोदे गये गड्ढे के समान इस चौर्य-कर्म को कौन समझदार करना चाहेगा?"[२६]

उपरोक्त व्यसनिक विश्लेषण से ज्ञात होता है कि आचार्य ज्ञानसागर जी ने विश्व मानव की आधार शिला को रखने के लिये गर्भ शोधन कर मानव विकृति को निकाल बाहर फेका है और एक सभ्य समाज की रचना के लिये मानवीय कर्तव्यों को निषेधपक्ष से उद्‌घाटित कर सचेत कर दिया है कि विश्व की मांग विश्वमानव का निर्माण और शांति समस्व की उपलब्धि रूप विश्व बन्धुत्व का सपना तभी पूरा होता जब विश्व का प्रत्येक मानव मानवीय कर्त्तव्य की अनुपालना करेगा। अन्यथा यह भूमण्डल युद्ध रूपी महा विकराल काले के गाल में जा फसेगा और खो बैठेगा अपने स्वत्व को।

विश्व मानव के जन्म के संबंध में मानव व्याख्या नामक लेख में वासुदेवशरण अग्रवाल जी लिखते हैं कि "यज्ञीय भावों को सम्पूर्णतया अपनाये बिना हम उन मानसिक वासनाओं से बच ही नही सकते जो हमें अधिकार लिप्सा, स्वार्थ साधना या हिंसा की ओर ले जाती हैं। मानव का स्थूल हिंसा

प्रधान जीवन क्षाजधर्म हैं। इससे ऊपर प्रेम और त्याग का जीवन वृक्ष संस्कृति है। वह देवी अंश है। वह अमृत भाग हैं। वहीं श्रेष्ठ कर्म है जिसे यज्ञ भी कहा हैं। विश्वात्मा के लिये यज्ञीय भावना आत्म समर्पण के बिना विश्व मानव का जन्म असम्भव है। जिसका सीधा सादा अर्थ यही है कि एक मानव मे जो अधिकार और-स्वार्थ की सत्ता है वह दूर होनी चाहिये। जो हालत एक मानव की है वहीं एक समूह सम्प्रदाय जाति या देश की होनी चाहिये।"[२७]

यही कारण हैं कि उपरोक्त सार्वभौमिक विचारों से आज विश्व मे राजनीति विज्ञान और समाज आदि सभी क्षेत्रों में मानव अधिकारों की रेखायें खीचीजा रही हैं। खींची गई है।

समाज और विश्व की सुख शांति को कायम करने का मुख्य आधार यही है कि विश्व के प्रत्येक प्राणी को जीने का समान अधिकार होवे, जब तक मानव जीवन में सहिष्णुता नही आयेगी तब तक एकता अखण्डता सुखशांति आकाश के फूल के समान खुली आखो के सपनों की शोभा बढ़ाते रहेगे।

इस संबंध मे आचार्य ज्ञानसागर जी मानव अधिकारो की ही बात नही करते अपितु वो तो पृथ्वी पर जो भी उत्पन्न हुआ है उसका भी पूर्ण बराबर का अधिकार की घोषणा करते है। क्योकि पृथ्वी के प्रत्येक प्राणी पृथ्वी के संतुलन को बनाये रखने में एक अहं भूमिका निभाता है और जीवन को अनिवार्य देय भी प्रदान करता है। अत: प्रत्येक प्राणी एक दूसरे के बिना अधूरे हैं। यथा हैं पुरुषोत्तम इस भूतल पर जो भी उत्पन्न हुआ है, वह चाहे मूर्ख हो या विद्वान, राजा हो या दास या अज (बकरा) इस पृथ्वी पर जितना आपका अधिकार है उतना ही दूसरे का भी अधिकार है, ऐसा विचार करना चाहिये।[२८]

आगे उन्होंने तैसा का तैसा की व्यवहारिक लोक नीति को स्पष्ट करते हुये लिखा है कि "हे आत्मन् यदि तुम यहाँ सुख से रहना चाहते हो तो औरो को भी सुख से रहने दो। यदि तुम स्वयं दु:खी नहीं होना चाहते हो तो औरों को दु:ख मत दो। "

"मनुष्य जैसा व्यवहार स्वयं अपने लिये चाहता है, वैसा ही व्यवहार उसे दूसरे दिन-कायर पुरुषो तक के साथ रहना चाहिये यही एक तत्व धर्म का मूल है और शेष सर्व कथन तो इसी का विस्तार है।"[२८]

उपरोक्त कथन में आचार्य ज्ञानसागर जी का मनोविज्ञान, यह दर्शाता है कि विश्व कल्याण, विश्व शांति, विश्व मानव के निर्माण के लिये सह अस्तित्व, सह धर्मिता के सिद्धान्त का पालन होना अनिवार्य है।

एक पवित्र मानव जीवन कैसा होना चाहिये इस संबंध में आचार्य ज्ञानसागर जी ने "पवित्र मानव जीवन" नामक एक लघु काय पुस्तक ही लिख दी है, जिसमें मानवता का दिग्दर्शन कराते हुये लिखते हैं कि—

ऊपर से नर होकर भी दिल से राक्षसता अपनाई।
अपनी मूंछ मरोड़ दूसरों पर निष्ठुरता दिखलाई॥
लोगों नेइसलिये नाम लेने को भी खोटा माना।
जिसके दर्शन हो जाने से रोटी में टोटा जाना॥
कौन काम का इस भूतल पर ऐसे जीवन का पाना।
जीवन हो तो ऐसा जनता का मन मोहन हो जाना॥
मानवता है यही किन्तु है कठिन इसे अपना लेना।
जहाँ पसीना बहे अन्य का अपना खून बहा देना॥
आप कष्ट में पड़कर भी साथी को कष्टों को खोवे।
कहीं बुराई में फंसते को सत्पथ का दर्शक होवे।
पहिले उसे खिला करके अपने खाने की बात करे।
उचित बात के कहने में फिर नहीं किसी से कभी डरे॥
कही "किसी के हकूक पर तोक भी नहीं अधिकार करे।
अपने हक में से भी थोड़ा औरों का उपकार करे॥"[10]

उपरोक्त पंक्तियों से ज्ञात हो जाता है कि लेखक का मानस मानवता के रंग में कितना सरावोर हो चुका है। लगता है आचार्य ज्ञानसागर जी एक अच्छे शिल्पी के पक्ष में एक अच्छे सामुद्रिक शास्त्र के ज्ञाता थे तभी तो मानव मूर्ति को गढ़ने में उनकी कलम रूपी छैनी ने एक एक दोषों को बाहर निकाल फैंका है और सुन्दर आकृति के लिये मानवीय गुण को बखूबी से उभारा है। जैसे साम्य, समता, स्वपर सम्मान, सहिष्णुता, सन्तोष सहनशीलता, सज्जनता, सेवा, सहायता, न्यायप्रियता, कर्तव्यनिष्ठा, गुणग्राही आदि।

मानवता के लिये इन अवांछनीय तत्त्वों से संबंधित आचार्य ज्ञानसागर जी लिखते हैं कि "जो दूसरे सज्जन पुरुष की बात का सम्मान करताहै, उसकी छोटी सी भी भली बात को बड़ी समझता है, वही आज वास्तव में मनुष्ता को धारण करता है। जो औरों को तुच्छ समझताहै उनकी ओर देखता भी नहीं है, स्वयं अहंकार में मग्न रहता है, क्या उसे भी कोई देखता है। नही क्योंकि वह लोगों की दृष्टि से गिर जाता है। अतएव दूसरे का सम्मान करना ही आत्म उत्थान का मार्ग है।"

"आत्म हित के अनुकूल आचरण का ही नाम मनुष्यता है केवल अपने सुख में प्रवृत्ति का नाम मनुष्यता नही है। जैसा आत्मा अपना समझते हो वैसा ही दूसरे का भी समझना चाहिये। अत: विश्व भर के प्राणियों के लिये हित कारक प्रवृति करना ही मनुष्यता का धर्म है, औरों के सुख में कण्टक बनना महान् अधर्म है।"

"पाप को छोड़कर ही मनुष्य पवित्र कहला सकता है (केवल उच्चकुल मे जन्म ले लेने से ही कोई पवित्र नहीं हो जाता, कीट कालिमादि युक्त सुवर्ण सम्माननीय होता है, इसलिये पाप से घृणा करना चाहिये किन्तु पापियों से नही। मनुष्यता स्वभाव से ही यह संदेश देती है।"[३१]

"मनुष्य को चाहिये कि वह विपत्ति के आने पर हाय हाय न करे, न्यायोचित मार्ग से कभी च्युत न होवे और सदा प्रसन्न रहकर अपना कर्त्तव्य पालन करे।"

"दूसरे के दोष को कभी भी प्रगट न करे उसके विषय मे मौन धारण करे अपनी वृत्ति से दूसरे का पालन पोषण करे, दूसरे के गुणों का ईर्ष्या-दोषादि से रहित होकर अनुकरण करे औरइस प्रकार सच्ची मनुष्यता को प्राप्त होवे।"

"बुद्धिमान को चाहिये कि अपने से बड़े वृद्धजनो के साथ अनुकूल आचरण करे, अपने से छोटो को अपने समान तनमन धन से सहायता पहुँचावे किसी भी मनुष्य को दूसरा न समझे सभी को अपना कुटुम्ब मानकर उनके साथ उत्तम व्यवहार करे। इस प्रकार उदार मनुष्य सच्ची मानवता को प्राप्त करे॥"[३२]

उपर्युक्त कथन से स्पष्टत: ज्ञात होता है कि आचार्य ज्ञानसागर जी ने भगवान महावीर की देशना और उनकी परम्परा के आचार्यो का अनुकरण किया है। जहाँ एक और स्वकल्याण की बात कही है वही पर कल्याण के लिये व्यवहारिक न्याय नीति नियमो का उल्लेख किया है।

काश! आचार्य ज्ञानसागर जी के द्वारा वर्णित सच्ची मानवता यदि विश्व मानव के जीवन मे आचरित हो जाय तो वह दिन दूर नही होगा जब सम्पूर्ण विश्व मे रामराज्य सम सुख शान्ति का साम्राज्य व्याप्त होगा।

और होगा मैत्री प्रमोद कारूण्य सन्तोष समत्व सदाचार युक्त मानव की सगठन शक्ति के रूप मे वसुधैव कुटुम्बकम् का सपना पूरा।

□

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

(१)	विरोदय	—	९/२/पृ.१३७
(२)	वही	—	९/३/पृ.१३७
(३)	विरोदय	—	९/४/पृ.१३८
(४)	वही	—	९/५/पृ.१३८
(५)	वही	—	९/५/पृ. १३८ एवं ९/८/पृ. १३९
(६)	वही	—	९/९/पृ. १३९ एवं ९/१२/पृ. १४०
(७)	वही	—	९/१४/पृ. १४० एव९/१५/पृ. १४१
(८)	आत्मायन/मानवीय लक्ष्य	—	७/पृ. ४१ एवं मानवता को नमन्-१/पृ. ३
(९)	कर्तव्य पथ प्रदर्शन	—	१/पृ.१
(१०)	वीरोदय	—	१४/२७/पृ. २१६
(११)	जयोदय	—	२/१०/पृ. ६५
(१२)	वही	—	२/११६/पृ. ११०
(१३)	वही	—	२/१२५/पृ. ११४
(१४)	वही	—	२/१२७/पृ. ११५
(१५)	वही	—	२/१२८/पृ. ११६
(१६)	वही	—	२/१२९/पृ. ११६
(१७)	वही	—	२/१३०/पृ. ११७
(१८)	वही	—	२/१३१/पृ. ११७
(१९)	वही	—	२/१३२/पृ. ११८
(२०)	वही	—	२/१३/पृ. ११८
(२१)	वही	—	२/१३४/पृ. ११८

(२२)	**वही**	—	२/१३५/पृ. ११९
(२३)	**कल्पवृक्ष, मानव व्याख्या**	—	पृ. ३३-३४
(२४)	**वीरोदय**	—	१७/१/पृ. २५२
(२५)	**वही**	—	१६/२/पृ. २४१ एवं १६/६/पृ. २४२
(२६)	**पवित्र मानव जीवन से**	—	
(२७)	**वीरोदय**	—	१७/५/पृ. २५३, १७/६/पृ. २५३ एवं १७/७/ पृ. २५४
(२८)	वही	—	१७/१०/पृ. २५५, १७/९/पृ. २५५ एवं १७/८/पृ. २५४

□

जयोदय महाकाव्य में पशु-पक्षी

☐ डॉ. भागचन्द्र जैन 'भास्कर'

आचार्य ज्ञानसागरजी आधुनिक युग के संस्कृत महाकवियों में सर्वाधिक प्रभावक कवि माने जा सकते हैं। उन्होंने जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, श्री समुद्रदत्त चरित्र, दयोदय चम्पू, मुनि मनोरञ्जनशतक जैसे काव्य लिखकर अपनी कल्पना शक्ति का जो मधुर प्रदर्शन किया है उसने उन्हें निश्चित ही माघ और भारवी जैसे कवियों के समकक्ष बैठा दिया है। इस तथ्य का मूल्यांकन यद्यपि अभी प्रतीक्षित है पर उनकी उत्प्रेक्षाओं, उपमाओं और रूपको को देखकर यह कह देना असंगत नहीं होगा बल्कि इसके आगे यह भी कहा जा सकता है कि चूंकि आचार्य ज्ञानसागरजी के काव्यों मे धर्म और दर्शन भी अपने ढंग से विवेचित हुआ है। वे उन पूर्ववर्ती कवियों से आगे ही निकल जाते हैं।

आचार्य श्री की प्रतिमा बहुमुखी रही है जो हिन्दी काव्यों तथा काव्योत्तर ग्रन्थों में परिलक्षित होती है। भूरामल के नाम से विख्यात महाकवि अपने काव्य के प्रत्येक सर्ग के अन्त में एक-एक श्लोक लिखते हैं जिसमें स्वयं को "वाणी भूषण वर्णिनं घृतवरी देवी च पंघीचयम्" कहते हैं। उनके इस कथन को सिद्ध करना एक लघु निबन्ध में संभव नहीं है। यहां हम मात्र उन सन्दर्भों को स्पर्श करेगे जो पशु-पक्षियों से सम्बद्ध है। गज, मृग, गण्डक, चकोर, हंस कोकिल, चातक, गरुड़ आदि को पक्षी जगत में लिखा जा सकता है। मेरे सामने मात्र जयोदय काव्य रहा है इसलिए हम उसी के आधार पर महाकवि की प्रतिमा की परख करेंगे।

गज

संस्कृत काव्यों मे गज और ऐरावत का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन परम्परा में भी ऐरावत का उल्लेख आता है जिसका उपयोग तीर्थंकरो को जन्माभिषेक के समय विशेश रूप से होता रहा है। उसका रंग सफेद और सर्वाधिक बलशाली प्राणी माना गया है। कालिदास ने उसे समुद्रमन्थन से उत्पन्न इन्द्रवाहन कहा है।[1] बुद्धचीन (1.4) मे उसे "सितं ददर्श द्विपराजमेकमं' कहकर उसके सफेद होने की पुष्टि की है। आचार्य श्री ने भी उसे इसी रूप मे स्वीकर है।

गज एक शाकाहारी प्राणी है। उसीक व प्रकीड़ा बड़ी प्रसिद्ध है। वह नदियों के तट को गिरा देता है और पर्वत पर सिर पटकता है। पानी से उठे अत्यन्त प्रेम है इसलिए वह स्नान करने नदी और सरोवर मे घुसा रहता है। आचार्य श्री ने कल्पना की है कि गज समूह अपनी मातंगता (चाण्डालपना) को दूर करने के लिए ही मानों सुगन्धित कमलों की गन्ध से गंगा के पवित्र जल से बार-बार स्नान करने लगा है। संस्कृत काव्यकारो ने गज के शरीर के अनेक भागों से मद-झरण की कल्पना की है।

---

1. रघुवंश, 1-36

सूड, कपोलद्वय, शिश्न, गुदा, नेत्रद्वय, गण्डस्थल आदि भागों से उसका मद झरण है जो उसकी शक्ति का प्रतीक है। कवि ने श्रृंगारात्मक वर्णन के साथ उसकी कल्पना की है कि मदोन्मत हाथी नदी में आगे इसलिए नहीं बढ़ रहा है कि पृथुलस्तनियों को देखकर उसे प्रतिहस्ती की आशंका हो गयी है। उसने नितम्बों (तटों) को भ्रष्ट कर दिया है और नदी के मध्य पहुँचककर कमलरूप मुख का चुम्बन कर लिया है। वहां गज ने अपने ही प्रतिबिम्ब को देखकर प्रतिनाग की आशंका से उस पर झपटा पर दौड़ने से नदी का जल चंचल हो गया फलतः प्रतिबिम्ब के न दिखने के कारण वह शान्त हो गया (13-98)। हाथी ने पिये हुए जल को वमथु (फूफ्कांर) के छल से वापिस उगल दिया। आगे कवि कल्पना करता है कि हाथी ने मृणाल को लीला सहित अपने दांत में लगाया वह ऐसा लगने लगा जैसे जल सिंचन से दाँत मे दूसरा अंकुर ही निकल आया है। (13-101) कोई हाथी अपनी सूड से अपने ही ऊपर धूल डालकर 'कटेणु' नाम सार्थक कर रहा था (13.103)। हाथी के मस्तक पर जो सिन्दूर लगा था वह पानी में घुल गया। इस पर कवि ने कल्पना की कि मानो रोष के कारण लाल होकर नदी पुकार करती हुई अपने पति समुद्र के पास व्याकुल होकर पहुँच रही हो (13.107)। इसी तरह जल क्रीड़ा का अच्छा वर्णन किया कवि ने। उन हाथियों को शिविर स्थान के दोनो ओर बांध दिया गया था। कवि कल्पना करता है कि वह झुण्ड युवती के केशो के समान काला था और ऐसा लग रहा था जैसे निर्मल दिन के पूर्व एवं अपर भाग में लगा हुआ अन्धकार ही हो (13.109)।

गज सेना का एक अंग है। वे चीत्कार करने हुए रण मे उतरते हैं और अपने दांतों से प्रहार करते हैं। (जयकुमार की सेना की धूल पर कवि ने उल्लेखालंकार का आश्रय लेकरक कल्पना की कि वह धूल आकाशगंगा में जाकर कीचड़ बन गई, चन्द्रमा में पहुँचकर कलंक बन गई और हाथी के मस्तक पर जाकर उसने मद का रूप धारण कर लिया (7.101)। जय कुमार की सेना के हाथी एक दूसरे पर आक्रमण कर रहे थे। जयकुमार के वज्राघात से हाथी से गण्डस्थल भिद गये और उनमे से मोती ऐसे गिरे कि जैसे उसके शत्रु अर्ककीर्ति की लक्ष्मी के आंसू गिरे हैं (8.35)। कवि ने कल्पना की है कि रण मे हाथी वादल के समान थे (8.62) अत्यन्त उन्हे भ्रमर समूह की उपमा दी है। (1.92)। कही उनके कुम्भस्थल उसे तरूणी के कुचद्वय से लगते हैं। (6.72)

कादम्बरी में भी सिन्दूर भी उपमा है, सांयकाल की उपमा है, शिशुपाल वध में अन्धकार और भ्रमर की उपमा है। (18.37) पर ये कल्पनायें उतनी सटीक नहीं दिखाई देती जितनी आचार्य श्री ज्ञानसागर की क्ल्पनाएँ प्रवकक लगती है।

अश्व

मानव जगत से अश्व का विशेष सम्बन्ध रहा है। संस्कृत कवियों ने इस सम्बन्ध अपनी कल्पनाओं से और प्रगाढ़ कर दिया है। शीघ्रगामिता उसका गुण है। नैषद्यकार ने उसकी तुलना आंधी से की है। आचार्य ज्ञानसागर ने जयकुमार के घोड़े को सर्वदिग्गामी बताया और उसे मात्र दक्षिण-उत्तर की ओर जाने वाले सूर्याश्व को भी जीतने वाला कहा (12.82)। कादम्बरीकार ने अश्व के खुरों से

1. जयोदय, 13.94

निकलने वाली धूलि की तुलना भगवान नारायण के चरण कमल से निकली गंगा की धारा से की है। (पृ-35)। जयोदयकार ने कल्पना की है कि जयकुमार के घोड़े ने सोचा कि कहीं उसके कठोर खुरों के आघात से यह पृथ्वी खेद खिन्न न हो जाये। इसलिए वह पृथ्वी का अनुनय रूप अलिंगन करता हुआ चला (3.101)। उस घोड़े से महाराज काशी इतनी जल्दी पहुँचे जैसे रत्नत्रय और शुक्ल ध्यान से शीघ्र ही मुक्ति प्राय करली जाती है। (3.114) लगता है, घोड़ों के खुरों के गिरने से शेषनाग के मस्तक में लगी मणियों में पृथ्वी पिरो दी गई हो। शायद इसी कारण आजतक पृथ्वी के बोझ से शान्त फणवीले शेषनाग इस पृथ्वी को छोड़ने में असमर्थ हो रहे हैं। (8.16)। आचार्य श्री की यह कल्पना अनुपम है।

इसी तरह की अनुपम कल्पनायें और देखिये। घोड़ों के इधर-उधर घूमने पर कल्पना की गई है कि स्वाभाविक चपलता द्वारा हमारे खुरों के आघात से पृथ्वी को चोट पहुँचती है। यही सोचकर मानों घोड़े धीरे-धीरे पृथ्वी को सान्त्वना देते हुए उसे सूंघते हुए घूमने लगे। (13.88)। सूंघे जाने से पृथ्वी को रोमाञ्च हुआ (13.89)। घोड़ों के मुख से गिरने वाले फेन के कण पृथ्वी के हार के तारे जैसे लग रहे थे। (13.90) अथवा ऐसा लग रहा था जैसे पृथ्वी घोड़े के संगम से उत्पन्न सुख का अनुभव करती हुई हस रही हो। (13.91) घोड़ो ने रजस्वला भूमि का आलिंगन किया। अत: आनुषंगिक दोष से उत्पन्न ग्लानि को दूर करने के लिए वे गंगानदी पर जा पहुँचे हों। प्यासा घोड़ा जल में अपना ही प्रतिबिम्ब देखकरक अपनी प्रिया का स्मरण करने लगा और प्यास को भूल गया। (13.92-2) घोड़ो की शीघ्रगामिका पर और भी कल्पनाएँ है (21.10-11)। घोड़ों की टापो से खुदी धरती कीधूलि आकाश में अंग से चन्दन से निर्मित गाढ़ विलेपन सी लग रही थी। (21.16) उनके खुरों की चोट से मुर्छित होती हुई पृथ्वी के ऊपर मानो सेना में विद्यमान ध्वजाओं के वस्त्रो से हवा की जा रही थी।

ऊंट

ऊँट रेगिस्तान का जहाज माना जाता है। लोग उससे माल ढोते हैं। कहा जाता है, यदि मालिक उसे तंग करता है या अधिक बोझ लादता है तो ऊँट उसका प्रतिशोध लेता है। अर्ककीर्ति की सेना के खाने-पीने का सामान जिस ऊँट पर लदा था उसने नगाड़े की भीषण ध्वनि का बहाना लेकर नीचे गिरा दिया (7.108)। उसने पनिहारिन के घड़े से पानी पीकर उसका घड़ा गिरा दिया (13.114)। वीरोदय (21.1-20) में ऊंटों के विविध स्वरों का वर्णन मिलता है।

वृषभ और गाय

वृषभ और गाय संस्कृत साहित्य के अगर पात्र है। वृषभ एक बलवान् पशु है जिसकी तुलना वेग अज्ञान दर्प और कंधे से की जाती है और गाय को ममता की प्रतिमूर्ति माना जाता है। आचार्य ने संसार की प्राणी को तेली के बेल उपमा देते हुए कहा है कि जिसकी आँखे पट्टी से ढंक दी गई है, जो तेली के पराधीन है, रुक जाने पर जिसके मर्मस्थान में डण्डे से चोट पहुँचाई जाती है और जो पत्थर आदि का बहुत भारी भार लादे हुए हैं, ऐसा तेली का बैल जिस प्रकार निरन्तर घूमता रहता है, चक्कर लगाता रहता है, उसी प्रकार जिसकी विचार शक्ति आच्छादित है , जो स्वोपार्जित कर्म के आधीन है,

पापाचार रूपी दण्ड से मर्मस्थान में आघात को प्राप्त हो रहा है और परिग्रह रूप भारी भार को धारण कर रहा है, ऐसा मनुष्य, खेद है, संसार में परिभ्रमण करता रहता है (15.44)। किसी जैनेतर कवि का ऐसा वर्णन दिखाई नही दिया। अकम्पन ने अर्ककीर्ति के विषाद को शान्त करते हुए यह कहा कि जिस प्रकार दूध पीते समय बछड़ा गाय की छाती में चोट मारता है, फिर भी गाय अप्रसन्न न होकर स्वयं उसे दूध ही पिलाती है। इसी तरह आप भी जयकुमार की चपलता को भूल जाइये (9.12)।

सिंह

सिंह को असाधारण पराक्रमी माना गया है। इसलिए वह कभी भी स्वयंमृत पशु का मांसभक्षण नही करता (9.12)। बल की अपेक्षा नीति की बलवता को स्पष्ट करते हुए आचार्य श्री ने कहा कि हाथियों की घटा को नष्ट करने वाला सिंह भी नीति के बल पर अष्टापद द्वारा बात की बात में मार डाला जाता है।

इसी प्रकार यत्र तत्र श्वान्, मृग, श्रृगाल, मार्जार, व्याघ्र आदि पशुओं की प्रकृति का वर्णन बड़ी प्रभावक कल्पनाओं के साथ आचार्य श्री ने किया है।

पक्षी-जगत

मयूर

संस्कृत साहित्य मे मयूर को काफी महत्त्व दिया गया है। राजस्थान में यह विशेष लोकप्रिय है। राष्ट्रीय पक्षी के रूप में उसे स्वीकारा जाना उसेक प्रति ममत्व व्यक्त करना है। बादलो की गड़गड़ाहट सुनकर मयूर नाच उठते है। मयूर नृत्य करना है मायावस्था में इसलिए चित्त मयूर के नाच उठने की बात याद दिलायी जाती है। मयूर की बोली केका पर भी काफी विचार किया गया है। जैन साधु मयूर पंख की पीछी ग्रहण करते हैं और उसका उपयोग अहिंसा की साधना के लिये करते है। कादम्बरी (पृ. 94) में जैन साधुओं द्वारा मोर पंख धारण करने की समता पवन के द्वारा मोर पंखो को ग्रहण करने से की गई है।

आचार्य श्री ने मयूर की प्रकृति का कुछ वर्णन किया है। आकाश जब धूल से व्याप्त हो गया और नगारे की आवाज से वह भर गया तब मेघ गर्जन के भ्रम से मयूर मतवाले हो उठे (3.11) इसे चित्त-मयूर नाच उठा भी कहा गया है। (5.55)। मयूर की केका को जीतने वाली स्त्री की आवाज (14.63) बसन्त वर्णन के प्रसग में कोयल का वर्णन सरलता से मिलता है।

चक्रवाक

चक्रवाक हंस परिवार का सदस्य माना जाता है। वह सारस दम्पति की भांति जोड़े में रहता है। रात्रि में उनका विरह हो जाता है। संस्कृत काव्य जगत में यह विरह बहुत प्रसिद्ध है। विरह में दोनों अलाप-प्रलाप करते हैं। उनकी ध्वनि करुण और मधुर होती है तथा वे नदी या तालाब के किनारे रहते हैं। कालिदास, माघ आदि सभी कवियों ने इनका अलंकारिक वर्णन किया है।

आचार्य श्री ने भी इन दोनों के वियोग का वर्णन किया है। अर्ककीर्ति भी पश्चाताप भरी वाणी सुनकर अकम्पन ने कहा आप तो सदैव हम लोगों के शुभचिन्तक रहे हैं। यह जो घटना घटित हुई है। वह हमारे पापोदय के कारण हुई है। देखिये चन्द्रमा उदित होता है तो सभी की प्रसन्नता के लिये ही। पर चकवे को उससे अपनी प्रिया के वियोग हो जाता है। इसमें चकवे का ही दोष है। बेचारा चन्द्र क्या करे ? (9.38), 9.20 : 10.8) इस विरह के बारे में कवि कल्पना करता है कि चकवा चक्र की युगल रात भर विरह एवं संतप्त दशा से दु:खी रहा। प्रात:काल जब चन्द्रमा रात्रि छोड़कर जाने लगा तो उन्होंने अपना विरह उसे सौंप दिया और सूर्य को भी संतप्त दशा का अनुभव करने के लिए विवश कर दिया। चन्द्रमा और सूर्य दोनों ने उनके विरह और संनाथ का स्वयं अनुभव किया। चन्द्रमा और सूर्य की इस उदारता से चकवा चकवी के नेत्रों से हर्षाश्रु प्रवाहित हो उठे और उसमे स्नानकर दोनो मानों मिल रहे हैं (18.39.40, 18.87) ऐसी कल्पना अन्यत्र देखने नही मिलती।

कोकिल

कोयल का निकुञ्ज-कुञ्जन बड़ा प्रसिद्ध है। कौवे द्वारा अपने बच्चों का पालन-पोषण करा लेना भी उनकी प्रकृति का एक अंग है। कोयल की ध्वनि मधुर और कामोत्तेजक मानी गई है। वसन्त ऋतु की दुन्दुभि के रूप मे उसका वर्णन मिलता है। आचार्य श्री ने आम्रवृक्ष के प्रति कोयल की ममता का उल्लेख किया है। (6. 101 9.69) कोयल का रंग काला होता है पर ध्वनि मीठी होती है। काले रंग के कारण पत्नी अपनी तुलना कोयल से नहीं करना चाहती (14.10)।

गरुड़

गरुड़ पक्षी श्वेन परिवार का सदस्य है। वह बड़ा भंयकर होता है। राम-लक्ष्मण के सर्प बन्धनों को काटकर उन्हें मुक्त करने में गरुड़ का हाथ रहा है। गरुड़ और सर्प का वैर सर्व विदित है। संस्कृत कवियों ने इसका सुन्दर वर्णन किया है। आचार्य श्री ने इसका उपयोग कश्मीर राजा की शक्ति को स्पष्ट करने में किया है। उन्होंने कहा कि जिस प्रकार श्री कृष्ण के बाहन गरुड़ को देख सर्प अपना विष जमीन पर उगल देता है वैसे ही इस राजा को देखकर प्रतिपक्षीगण सुदूर भाग जाता है। (6.79 स्वयं भले ही दूसरे के लिए भ्रमोत्पादक हो पर गरुड़ के लिये तो वह कमल की नाल के समान ही है (7.75) सर्प की प्रकृति क्रुद्ध और प्रतिशोधक होती है। (20.67.69) कैंचुली छोड़ने पर उसे दु:ख का अनुभव नहीं होता। इसी तरह उनका जीव शरीर के छूटने पर दु:ख का अनुभव नहीं करता (25.53)।

शुक और कबूतर

शुक द्वारा वार्तालाप को दोहराने का वर्णन काव्यकारो ने अनेक प्रकार से किया है। आचार्य श्री कल्पना की कि जब रात के समय बात करते हुए दम्पत्ति के जो शब्द तोते ने सुने थे, उन्हे जब वह दोहराने लगा, तब वधू लज्जित हो गई और उसने अपने कर्णालंकार से लाल मणि का एक कण निकालकर अनारदाने के बहाने उपहार के रूप में उसकी चोंच के भीतर रख दिया जिससे वह चुप हो गया। (18.101)।

मार्जार और कबूतर के क्रियाकलाप की कल्पना देखिए। रात्रि रूपी बिल्ली, कबूतर पकड़ने के कौतुहल से चन्द्रमा रूपी कबूतर को पकड़कर आकाश रूपी भवन के उपरिम भाग पर जा पहुँची, वहाँ अपने अपराधी स्वभाव से उसने दाँतों के आघात से उस कबूतर के पंखे उखाड़कर फेंक दिये। वे पंखे ही नक्षत्र हैं (15.45)।

कुक्कुट और गिरगिट

मुर्गा सामान्यतः प्रातःकाल बोलते हैं और सुबह होने की सूचना देते हैं। भले ही यह गलत हो पर कवि जगत में यही धारणा प्रसिद्ध है1 आचार्य श्री ने इसका व्यावहारिक उल्लेख किया है। जैन परम्परा में समाज में समाचार देने के लिए पत्नी का उपयोग किया जाता है। आचार्य श्री ने भी पत्नी रूपी कुक्कुट द्वारा तपस्विराज के आगमन का समाचार जयकुमार के पास भिजवाया (1.80)। मुर्गा प्रातःकाल क्यों बोलता है? इसमें कवि की कल्पना है कि कोई राजा मुर्गों को लड़ने का खेल देख रहा है। पृथ्वीतल का मुर्गा उदयाचल पर स्थित लाल कलंगी से युक्त सूर्य रूपी मुर्गे को देखकर राजा की अनुमति पाकर उसे युद्ध के लिए मानो ललकार रहा है। (18.73) बहुरूपी गिरगिट की प्रकृति का भी यहां वर्णन उल्लेखनीय है। (5.13)।

पशु-पक्षियों के अतिरिक्त कीड़े-मकोड़ों के विषय में भी आचार्यश्री की कल्पना में दर्शनीय है। उदाहरणार्थ—भ्रमर (14,50,61,15,8,18,85,20,18,23,41,25,25-6), पक्षियों का मधुर कूजन (15.6, 16.318.45, 54, 59, 25-29), मकड़ी (25-73), पतंग (25-77), मछली (5.73, 25.77), चूहा-विल्वण (7.111), पतंगा (8.52)

अप्रासंगिक होते हुए भी जयोदय में आये कतिपय और भी विषय उल्लेखनीय हैं—चारणानुयोग का लक्ष्य दिगम्बरत्व है (1.22) निश्चय-व्यवहार नय धान्य- भूसे के समान समन्वित है (2.3) कुलदेव पूजा विहित है (2.39), उपासना अध्ययनादि का अध्ययन अप्रेक्षित है (2.45) प्रथमानुयोग की उपयोगिता (2.50) सब प्रकार की परिशुद्धि-पर्यावरण (2.76), देवपूजा और दान (2.106), निश्चय-व्यवहार रूपी दो आंखें (5.49), सुलोचना का उपमात्मक वर्णन (5.40-70) वट को देखने पर कल्पनायें (10.55-70), मण्डप कल्पनायें (10.85-95) गृहस्थ संहिता (द्वितीय सर्ग) आदि।

इस प्रकार आचार्य ज्ञानसागर जी का जयोदय महाकाव्य दोनों, कलापक्ष और भावपक्ष की दृष्टि से समुन्नत है। जयोदय की क्यों, सभी काव्य भाव और भाषा के क्षेत्र में अनुपम है। चाहे वह पशु- जगत से सम्बद्ध हो या मानव जगत से, प्रकृति से सम्बद्ध हो या अध्यात्म जगत से, सभी क्षेत्रों में महाकवि का ज्ञान और चिन्तन कल्पनायें और अलंकारिक प्रयोग, सब कुछ अभिव्यञ्जना शिल्प की दृष्टि से बेजोड़ बैठता है। आधुनिक युगीन सस्कृत कवियों में ही नहीं, प्राचीन सर्वमान्य कवियों द्वारा किये गये प्रयोगों में भी वे अग्रगण्य हैं। उनके समस्त काव्य इस दृष्टि से पर्यवेक्षणीय है।

— प्रोफेसर एवं अध्यक्ष

पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय,

न्यू एक्सटेंशन एरिया, सदर, नागपुर-440001

□

"जयोदय" महाकाव्य में श्लेष प्रयोग

☐ डॉ. शिवसागर त्रिपाठी

जैन धर्म विश्व के प्रमुख धर्मों में अन्यतम है। वह केवल दार्शनिक समस्याओं के समाधान तक ही सीमित नही, अपितु प्राणिमात्र के कल्याण के लिए भी विकसित हुआ है। अत: इसका सांस्कृतिक एवं साहित्यिक रूप भी प्राकृतादि तथा संस्कृत् भाषा में अक्षुण्ण है। निश्चय ही संस्कृति वाड्मय की अभिवृद्धि मे जैन विद्वानों का योगदान अविस्मरणीय है, जो उसकी प्रत्येक विद्या-काव्य, महाकाव्य (ऐतिहासिक महाकाव्य सहित) नाटक, गद्य, आख्यान नीति-उपदेश, साधन चम्पू, गीतिकाव्य, दूतकाव्य, सुभाषित, स्तोत्र, प्रशस्तिपत्र, याचा आदि— में दृष्टिगत होता है। यद्यपि जैनधर्म में वैराग्य, त्याग, तपस्यादि पर बल दिया जाता है, तथापि श्रावकों के लिए युगानुरूप सामग्री प्रस्तुत करना भी उनका लक्ष्य रहा है। एतदर्थ प्राय: लोकरुचि का ध्यान रखते हुए संस्कृत जनभाषात्व से दूर हो गई थी। तभी तो कबीर ने कहा था— 'संस्कीरत है कूपजल भाषा बहता नीर।' किन्तु संस्कृत की प्रतिष्ठा साहित्यिक भाषा के रूप में सर्वमान्य थी, अत: जैन विद्वानों ने इसे मनोयोग से अपनाया। फिर शुल्क नयोपदेश, आचार व्यवहारादि सरस, सरल तथा ललित शैली में प्रस्तुत होने पर अधिक प्रभविष्णु होते है, इसका स्थायी एवं उपयुक्त माध्यम है 'साहित्य' जिसके अवलम्बन का सूत्रपात महाकवि अश्वघोष ने 'बुद्धचरितम' और सौन्दरनन्द जैसे काव्यात्मक गुणों से ओतप्रोत महाकाव्यों से कर दिया था। इसके बाद इस परम्परा में प्रौढशिक्षा के आश्रय पुराण साहित्य सहित प्रभूत साहित्य लिखा गया, जिस पर चर्चा एक पृथक लेख का विषय है।

संस्कृत साहित्य की अजस्रु धारा वैदिक काल से लेकर अद्यावधि-प्रवहमान है। बीसवीं शताब्दी के शताधिक महाकाव्यों पर विचार करने पर कनिष्ठिका पर एक नाम आता है वीतराग आचार्यश्री ज्ञान सागरजी का, जो शौर्य एवं सारस्वत साधना की पुण्यस्थली राजस्थान के जयपुर मण्डलान्तर्गत राणौली ग्राम के बालब्रह्मचारी भूरामल शास्त्री खण्डेलवाल राशिनाम्ना शान्तिकुमार से अभिन्न हैं। आपने संस्कृत साहित्य तथा जैन दर्शन का अध्ययन वाराणसीस्थ स्याद्वाद महाविद्यालय में परीक्षा पिशाचिनी से दूर रहकर पूर्ण किया। आपने क्षुल्लक दीक्षा आचार्य शिवसागर से ग्रहण की थी। संस्कृत कवि के रूप मे लब्ध प्रतिष्ठ इस परम मनीषी ने संस्कृत और हिन्दी माध्यम से प्रचुर रचनाएँ, लिखी। संस्कृत रचनाओं में उल्लेखनीय है—जयोदय, सुदर्शनोदय, वीरोदय महाकाव्य दयोदय चम्पू और भद्रोदय। मुनिमनोरञ्जनाशीति के प्रवचनसार प्रतिरूपक, सम्यकत्वसारशतक।

महाकाव्य के सामान्य काव्यशास्त्रीय लक्षणों से परिपूर्ण जयोदय महाकाव्य ऐतिहासिक है। इसके 28 सर्गों में मेघेश्वर या जयकुमार और सुलोचना का पौराणिक आख्यान उपनिबद्ध है, अत: इसे

सुलोचना महाकाव्य संज्ञा से भी अभिहित किया गया है। भूयोविद्य महाकवि की इस रचना में पूर्ववर्ती काव्यों-महाकाव्यों विशेषत: श्रीहर्ष के नैषधीयचरितम् महाकाव्य का प्रभाव परिलक्षित होता है। परम्परा से हटकर इसके प्रत्येक सर्ग के अन्त में यत्रतत्र परिवर्तित शब्दावली में आत्मपरिचय दिया गया है1 तथा महाकाव्य का अन्तिम पद्य उद्घृत है—

श्रीमान् श्रेष्ठिचतुर्भुज : स सुषुवे भूरामरोपाह्वयं
वाणीभूषणवर्णिनं घृतवरी देवी च यं धीचयम्।

तत्काव्यं लसतात् स्वयं विधि श्री लोचनाया जय
राजस्थाम्युदयं दधद् वसुहगित्यारवयं च सर्ग जयत्॥

साथ ही एताहश परिचय के माध्यम से यत्र-तत्र काव्य के वैशिष्ठयपरक पदों का उल्लेख किया है। तथा 'नानाव्य निवेदनातिशयवान्' काव्येऽत्मिव्येऽसकौनव्यां पद्धतिमुद्धरत आदि। महाकाव्य मे यह नव्यता रस भाव संयोजना, कल्पनाश्रुयता, काव्यकला, छन्दोयोजना अलङ्करमीमांसा, भाषा स्वारस्य, प्रकृति चित्रण, युगबोध आदि के रूप में सव परिलक्षित होती है और जो काव्यशोभाधायन में सहायिका रही है। इस प्रकार इसकी विलक्षणता सरसता ओर सात्त्विकता से सहृदयों के हृदयो को आवर्जित किया है।

परवर्ती व्याख्याकरों या आलोचकों द्वारा अनेकत्र काव्य सौन्दर्य अस्पृष्ट रहा जाता, सम्भवत: इसीलिए महाकवि ने स्वोपज्ञ टीका द्वारा सब कुछ हस्तामलकवत कर दिया है। कहाकाव्य का यह अपर वैशिष्ठ्य है। स्वपोज्ञ टीका समन्वित दो भागो में प्रकाशित सम्भवत: यह अपनी श्रेणी का प्रथम महाकाव्य है। हसमें कविकला का चरम विकास दृष्टिगत होता है। यह परिमाण (28 सर्गात्मक) परिणाम (प्रभावात्मकता) और गुणवत्ता में अद्धितीय है, तथापि यह इसमे भावपक्ष की अपेक्षा कलापक्ष का प्राबल्य प्रतीत होता है। वस्तुत: यह स्थिति बहुश्रुत पण्डित मे अनायास उत्पन्न हो जाती है जो सहज स्वाभाविकता पर प्रश्नचिन्ह लगाती है। भारवि, माघ और श्रीहर्ष के काव्यों के आधार पर ही यह आक्षेप लगाया गया है कि संस्कृत महाकाव्यों का इतिहास उत्तरोत्तर कृत्रिमता का है। आचार्य ज्ञान सागर मे यह कलापक्ष भावपक्षानुप्राणत है, अत: सहृदयश्लाध्य है।

'जयोदय' महाकाव्य उपरिसंकेतित अनेक बिन्दुओं से सभीक्ष्य एवं आलेख्य है। यहां उनके अलंकारपक्ष विषेषत: श्लेषप्रयोग के वैशिष्ठय का दिङ्मात्र उल्लेख करने का प्रयास किया जा रहा है। पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध के समस्त सर्गों में श्लेष का प्रयोग अपने सभी रूपों में प्रचुरत: हुआ है। 18वें सर्ग के प्रभातवर्णन के प्रसंग में आए राष्ट्रियतापरक उन चार श्लोकों में श्लेषप्रयोग विषयक व्याख्या दी गयी है, जिनका संकेत श्री भागीरथप्रसाद त्रिपाठी वागीश शास्त्री ने भूमिका (पृष्ठ 21) में किया है और उन्हें शाकुन्तलम् के चतुर्थांकीय चार पदों के समान अति महत्त्वपूर्ण बताया है। वस्तुत: इनमे महाकवि का प्रकर्ष पाण्डित्य प्रस्फुटित हुआ है।

भरतमुनि ने 'नहि रसादृते कश्चिदर्थ : प्रवर्तते' कहकर रस की प्रतिष्ठा सर्वोपरि मानी है। रस के बाद दूसरा पद महत्त्वपूर्ण स्थान अलंकार का है। इसकी इस प्रतिष्ठा में आनन्दवर्धन द्वारा ध्वनि की स्थापना तक कोई कमी नहीं आई और बाद में भी 'अनलंकृती पुनः क्वापि' का उत्तर जयदेव ने इस प्रकार दिया—

अगींकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ्कृती।
असो न मन्यते कस्मादनुष्ण मनलंकृति॥ च. 1/8

इधर दण्डी ने काव्य शोभारक धर्मों को अलकांर कहा है 'काव्य शोभाकरान् धर्मानलंकारान् प्रचक्षते'। वामन ने 'सौन्दर्यमलंकारः' कहकर उसी के द्वारा काव्य की ग्राह्यता प्रतिपदित की है अर्थात् हृद्य और मनोज्ञ अर्थ को सुन्दरतर बनाना अलंकारों की प्रवृत्ति होती है और जो काव्य को अकाव्य से पृथक् करती है जैसे आभूषण रमणी को पूर्वापेक्षा अधिक रमणीय बना देते हैं, उसी प्रकार अलंकार काव्य को अधिक शोभाधायक तथा चमत्कारयुक्त बना देते हैं। इतना ही नही ये रस, भाव ध्वनि, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य आदि अन्य काव्यशास्त्रीय अंगों को भी उत्तेजित करते हैं। फिर काव्य चिन्तन में अतिशय और अलम्भान की प्रमुख भूमिका है, जो चित्रविधान और बिम्बविधान के महत्त्वपूर्ण साधन हैं तथा अनुभूति की अभिव्यक्ति के सशक्त, सजग, उपयुक्त और सुन्दर बनाकर प्रस्तुत करते हैं।

अलंकारों में श्लेष अलंकार की अपनी महता है। काव्य शास्त्रियों में अलंकारों की संख्या के विषय में मत वैभिन्न्य हैं, पर श्लेष को सभी आलंकारिकों ने स्वीकार किया है। तथा रूद्रट से तो यह शब्दालंकार तथा अर्थालकांर दोनों में परिगणित किया जाने लगा। उन्होंने तो इसे अलंकारों के मूल आधारों में गिना है—

अर्थस्यालंकार वास्तवमौपम्यमतिशयः श्लेषः।
एषामेव विशेषाः अन्य तुभवन्ति निःशेषाः। 7/9
काव्यालंकार

आचार्य मम्मट ने शब्दश्लेश को अष्टविध माना है। उनके अनुसार अर्थ भेद के कारण भिन्न भिन्न होकर भी यहां शब्द एक उच्चारण के विषय होते हुए श्लिष्ट प्रतीत होते हैं, वह श्लेष अलंकार है—

वाच्यभेदेन भिन्ना यह युगपद् भाषणास्पृशः।
श्लिष्यन्ति शब्दाः, श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा॥ का.प्र. 9/84

पूर्वाचार्यों का सभंगश्लेश और अभंगश्लेष भी यही है। इसके अतिरिक्त जहां/ एक ही वाच्य में अनेक अर्थ प्रकट हो, वह अर्थश्लेष होता है—

श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्। का.प्र. 10/96

अलंकारों का सम्यक् प्रयोग बिना शास्त्रीय पाण्डित्य के नहीं हो सकता और फिर श्लेष का प्रयोग और भी परिपक्वता की अपेक्षा रखता है। अर्थात व्याकरण के साथ साथ अन्य विषयो अनुशासनों, विद्याओं, आचारों और परिभाषाओं का ज्ञान अपेक्षित होताहै। इस दृष्टि से आचार्य श्री ज्ञानसागर जी का स्थान अग्रगण्य है। आपने अपने सभी काव्यों और महाकाव्यों में प्राय: सभी अलंकारों का प्रयोग किया है। श्लेष अलंकार के प्रयोग में आचार्यश्री सर्वातिशायी है, सिद्धहस्त है, क्योंकि वह बहुश्रुत और विविध शास्त्रवेत्ता थे। उनके चिन्तन में सर्वत्र कला-प्रतिभा, कल्पना का और समन्वित रूप परिलक्षित होता है।

'जयोदय' महाकाव्य का कोई भी सर्ग श्लेषालंकार से अस्पृष्ट नहीं है। यह स्वतन्त्र, श्लेषोपमा के रूप में, अन्य अलंकारों की संकर-संमृष्टि रूप में सांश्लेष्ट है, अनुस्यूत है। शब्दश्लेष और अर्थश्लेष के समस्त प्रकारों क प्रचुर उदाहरण इस महाकाव्य में है, जो पृथक् शोध का विषय है।

यहां स्थालीपुलाकन्याय से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत है।

श्लेषट पदों के माध्यम से आचार्य श्री का व्याकरण ज्ञान द्रष्टव्य है—

न वर्णलोप, प्रकृते न भङ्ग कुतोऽपि न प्रत्ययवत्प्रसंग:।
यत्र स्वतो वा गुणवृद्धि सिद्धि: प्राप्ता यदीया पदरीति ऋद्धिम॥

जयोदय- 1/31

व्याकरण शास्त्र के सुबन्त-तिडन्त पदों मे वर्णों का लोप या प्रकृति (मूल धातु -शब्द) मे भंग हेरफेर होताहै प्रत्यय लगता है, गुण या वृद्धि होती है किन्तु राजा जयकुमार के राज्य मे ब्राह्मणादि वर्णों का लोप नहीं था, मंत्री आदि का प्रजा का नाश नहीं होता था, विरुद्धगमन का प्रसंग नही आता था, हॉ प्रजा के गुणों की वृद्धि स्वत: सिद्ध थी। श्लोक में अन्त्यानुप्रास का कौशल प्रशस्य है।

अग्रिम श्लोक में महाराजा जयकुमार के गुणों की चर्चा करते हुए आचार्य श्री उन्हे मछलियो का शत्रु धीवर, नक्षत्रों (सत्) से युक्त कलाधर (चन्द) मायायुक्त महेन्द्र या जादूगर बताते हैं। वस्तुत: राजा बुद्धिमान्, मात्स्यन्याय का शत्रु, सज्जनों का सहवासी होने से परमचतुर तथा राज्य मे आजीविका के समुचित साधन प्रदान करने वाला था। (सम्यगाय आजीवनं यस्मिन् स चासौ समय: = समाय समय:)

मत्स्यरीतिरिपुरेष धीवर: सत्समागमतया कलाधर:।
य: समायसमयो महेन्द्रवन्नित्यमित्युचितकृच्छुभाश्रव:॥

जयोदय - 3/4

शब्दश्लेष का एक उदाहरण 'विद्यौ' पद के माध्यम से अवलोकनीय है। संस्कृत मे यह पद इदन्त विधि (भाग्य) उदन्त और 'विधु' (चन्द) दोनों से बनताहै इसका प्रयोग सौन्दर्य प्रस्तुत पद्य के देखिये—

यामि विधावभ्युदिते पुनरायास्यामि चेति संगदितम।
तदुदन्तत्वेनाहं नेदन्तत्त्वेन वेद्नि मितम्॥

जयोदय 16/72

मैं (विद्यौ अभ्युदिते) चन्द्रमा के उदय होने पर आऊँगा (नायक के इस कथन के विषय में नायिका की प्रतिक्रिया है कि मैं 'विद्यौ' पद में उकारान्त 'विधु' चन्द्र ही मानती हूँ, इकारान्त विधि (भाग्य) नहीं, क्योंकि मेरे भाग्य का उदय कहाँ ?

अपर अर्थ यह भी है कि मैं इसे उदन्त वार्तामात्र मानती हूँ, तत्वत: वास्तविक रूप में नहीं।

रामा (स्त्री) और राम (भगवान) के पदश्लेष से 'रामविद्या माकलयन्ति' इस पद से वियोगी और योगी-सन्यासी और कामी से सम्बद्ध अर्थ का सौन्दर्य रसनीय है—

'विश्वस्य यद् धैर्यधनं व्यलोपि वियोगिनोऽयापि तु योगिनोऽपि'
रामाभिधामाकलयन्ति नामाधुना पुनस्ते प्रतिकर्तुकामाः

—जयोदय 16/3

अर्थात् (कामदेव के दिग्विजय के समय) समस्त जगत् का धैर्य रूपी धन लुप्त हो गया था, अत: समागत विपत्ति के प्रतिकार की इच्छा से वियोगी मनुष्य स्त्री के नाम का और कामी जन (योगी) भगवान् राम का स्मरण करते थे।

अग्रिम पद्य के बद्धाञ्जलि (हाथ जोड़े हुए/अंगुली बांधे हुए) पूर्णपयोधरा (विकसित स्तनो वाली/जलधारण करने वाली) और सत्कारक स्वभावा (कल: मधुर ध्वनि: एवं कलक:, स एवं स्वभाव : यस्या: = मधुर भाषिणी:करकं भृगांरकं स्वभाव: यस्या: = जलाधारिणी)

पद श्लिष्ट है और अर्थ में स्वारस्य उत्पन्न करते हैं।

मुहुर्न बद्धाञ्जलिरेष दास: सदा सखि: प्रार्थयते सदाश:।
कुत: पुन: पूर्णपयोधरा वा न वर्तते सत्करक स्वभावा॥

जयोदय-16/13

अर्थात हे सखि ! यह दास सदा से आशा लगाए हाथ जोड़कर (चुल्लू बांधे हुए) प्रार्थना कर रहा है। (कि मुझे स्वीकार करो (पानी पिला दो)। तुम पूर्णपयोधरा हो (स्तन/जल) फिर भी करक स्वभावा (मधुरभाषिणी/जलपान के स्वभाव वाली नही हो रही हो। श्लोक के अन्त्यानुप्रास प्रयोग स्तुत्य है।

अष्टादश सर्ग में उच्चकोटिक प्रभातवर्णन है। यहां भी श्लेष का प्रचुर प्रयोग है। 'नक्वापि भाति-अधुना द्विजराजवंश:'—18/57 में 'द्विजराज वशं:' पद श्लिष्ट है। अर्थात् प्रात:काल चन्द्रका का वंश-नक्षत्र समूह/ नहीं शोभित हो रहा है। अथवा ब्राह्मणों का वंश प्रतिष्ठा को नही प्राप्त कर रहा है। 18/45 में 'वीरोदिते' पद श्लिष्ट है। प्रात: पक्षी कल-कल ध्वनि करने में प्रसन्न हैं। दूसरा अर्थ है भगवान महावीर द्वारा समर्थित। श्लोक में प्रकारान्तर से 'अनेकान्तवाद' की ओर संकेत है।

साहित्य सृष्ठा सामाजिक प्राणी है। अत: वह अपने युग का प्रतिनिधि होता है। उसका युगबोध उसकी रचनाओं में प्रतिबिम्बित होता है। श्री भूरामल जी की यह रचना स्वतन्त्र भारत की है। अत: उनका मस्तिष्क भारतीय स्वातन्त्रय विषयक धारण से अस्पृष्ट कैसे रह सकता हो? यही करण है कि रचना में यत्र-तत्र उनके ह्रदय में विद्यमान राष्ट्रप्रेम, राष्ट्रभक्ति और राष्ट्रियचेतना प्रकट हुई है। यद्यपि रचना ऐतिहासिक है, उसमें वर्तमान युगीन बिन्दुओं की चर्चा के अवसर अल्प थे, फिरभी महाकवि ने श्लेष अलंकार के माध्यम से मुद्रालंकार के रूप में राष्ट्र नेता को स्मरण किया। तत्परक अपने राष्ट्रीय भाव चार श्लोकों में (18/81-84) सजोए हैं, उनका स्वारस्य यहां प्रस्तुत है।

सत्कीर्तिरञ्चति किलाभ्युदयं सुभासा
स्थानं विनारिमृदुवल्लभ राष्ट्र तथा स:।

याति प्रसन्नमुखतां खलु पद्मराजो
निर्याति साम्प्रतमित: सितरुक्समाज:॥

—जयोदय—18/81

प्रभातपक्ष—हे अजात शत्रु (विनारि = बिना शत्रु के) एवं कोमल प्रकृति वाले मनुष्यों के प्रिय राजन् (मृदुवल्लभराय,) जयकुमार! इस समय प्रात: काल (साम्प्रतं) सूर्यदीप्ति जी सुन्दर कीर्ति (सुभासा सत्कीर्ति) अम्युदय को प्राप्त हो रही है। श्रेष्ठकमल प्रसन्नमुखता को प्राप्त है अर्थात विकसित है और चन्द्रमा परिवार (सितरुक्समाज सिता सक् दीप्ति यस्य -चन्द:, तस्य समाज: नक्षत्र समूह:) निकल रहा है अर्थात अन्यत्र जा रहा है।

राष्ट्रपक्ष - इस समय सन् 1952 में (साम्प्रतं) सुभाष चन्द्र बोस की उज्जवल कीर्ति (सुभाषा सत्कीर्ति) अम्युदय को प्राप्त हो रही है। अजातशत्रु (विनारि) तथा कोमल प्रकृति वालों के प्रिय राजा (मृदुवल्लभराय) डॉ. राजेन्द्र प्रसार राष्ट्रपति पर को प्राप्त कर रहे हैं। अथवा बिना पत्नी के (विनारि) और कोमल स्वभाव वाले सरदार वल्लभ भाई पटेल प्रतिष्ठा को प्राप्त हो रहे हैं। पद्मराज नामक राजनेता (देश के स्वतंत्र होने पर) प्रसन्न हो रहे हैं। गौरांग अंग्रेजों का परिवार (सितसच: गौरागां:, तेषां समाज:) (भारत देश से) निकल रहा है और अपने देश जा रहा है।

मञ्जु स्वराज्य परिणाम समर्थिका ते
सम्भावित क्रम हिता वसतु प्रभाते।

सूत्रप्रचालनतयोचितदण्डनीति:
सभ्यग्महोदधिषणा सुघटप्रणीति:॥ 18/82

इस श्लोक का अर्थ श्लेष की महिमा ने कारण त्रिविध किया जा सकता है। **राजपक्ष—** हे जयकुमार! इस प्रभातवेला में आपकी दण्डनीति अपनेराज्य के सुन्दर परिणाम का समर्थन करने वाली उत्तम क्रम से सहित (सम्भावित क्रमहिता) प्रजा का हित करने वाली (हिता) है। उत्सव या तेज को देने

वाली (महोद) बुद्धि (धिषणा) का जिसमें उत्तम प्रयोग किया गया है तथा सूत्र सञ्चालन या राज्य शासन चलाने के कारण उचित हैं।

प्रभात पक्ष— प्रातः काल दही बिलोने का काम घर घर होता है, उसकी एक झलक देखिये। हे जयकुमार इस प्रभात वेला में (अस्मिन् प्रभाते) आपकी उत्तम कुम्भ व्यवस्था (सुघठ प्रणीतिः) अच्छी तरह शोभायमान हो (सम्यक् व्यसन) जो सुन्दर शब्द वाली (मञ्जुस्वरा) है अर्थात मन्थन काल में रई या मथानी से सुन्दर शब्द हो रहा है। जो घृतरूप फल का समर्थन करने वाली है (आज्य परिमाण समर्थिका) जो तैयार होने वाली छाछ से उत्तम है। (सम्भावित क्रम हिता) जो संलग्न सूत्र रस्सी के सञ्चालन से योग्य मन्थन दण्ड (रई-मथानी) से युक्त है (सूत्र—-नीति) जो महोदधिषणा अर्थात् उत्सव या तेजरूप दही के ज्ञान से युक्त है।

राष्ट्रपक्ष—हे महोद, या प्रताप देने वाले! आपकी ऐसी बुद्धि हो जो मनोहर गणतन्त्र की सफलता का समर्थन करने वाली हो, जो विधानसभा, लोकसभा, राज्यसभा आदि में अच्छी तरह विचारित कार्यप्रणाली सहित हो (सम्यक् भावितेन समितिषु चिन्तितेन क्रमेण कार्येण अहिता सहिता और सुसंगत प्रतीति से युक्त हो) (सुधर प्रतीषे) अर्थात उत्तम व्यवहारिक कार्यों को करने वाली हो।

यद्वा सुगां धियमित्ता विनतिस्तु राज
गोपाल उत्सवधरस्तव धेनुरागात्।

हृष्टा सरोजिनि अथो विषमेषु जिन्ना
नुष्ठानमेति परमात्म विवेक भागात् ॥ 18/83

हे राजन्! आपकी विनीतता (विनतिः) उत्तम गतिशील बुद्धि को (सुगां) प्राप्त है (इता)। आपकी गोरक्षा की प्रीति से (धेनुरागात्) गोपाल उत्सव मना रहे हैं। कमतावल्ली (सरोजिनि) प्रसन्न है (हृष्टा) और काम विजयी पुरुष (विषमेषुजित्) अपने आप को परमात्मा का परब्रह्म का एक अंश मानने से (परमात्म विवेकभागात्) सन्ध्यावन्दनादि धार्मिक अनुष्ठान कर रहे हैं।

राष्ट्रपक्ष—हे राजन् आपकी विनम्रता या शिक्षा गांधी जी की विनम्रता का अनुसरण कर रही है। (गांधिनः इदं गान्धियं, शोमनं गान्धियं सुगांधियम्)। आपके गोप्रेम से राजगोपालाचार्य आनन्द का अनुभव कर रहे है तथा सरोजिनी नायडू प्रसन्न है। (हृष्टा सरोजिनी) मुस्लिम नेता जिन्ना परकीय भारत को अपना मानते हुए विषम पारस्परिक विरोध के कार्यों में हिन्दुस्तान औरा पाकिस्तान के विभाजन का अनुष्ठान कर रहे हैं।

गान्धीरुषः प्रहर सत्यमृतक्रमाय
सत्सूत नेहरूचयो बृहदुत्स्ववाय।

राजेन्द्रराष्टपरिरक्षण कृत्तवाय
मात्राभ्युदेतु सहजेन हि सम्प्रदायः॥

18/84

प्रभातपक्ष—हे राजाओं के इन्द्र (राजेन्द्र) प्रात: कालं के प्रहर में (उष: प्रहरे) उत्तम पुरुषों की बुद्धि (धी:) अमृत या मोक्ष प्राप्त करने के लिए पुण्य पाठवाली वाणी को प्राप्त होती है। (अमृतक्रमाय गां वाणी पुण्यपाठत्रे)। इस समय सत् = नक्षत्रों में दीप्ति महान् उत्सव के लिए नही होती, नक्षत्र निष्प्रभ हो जाते हैं। (सत्सु नक्षरूपाषु सचय: दीप्तय: बृहदुत्सवाय न)। अत: राष्ट्र की रक्षा करने वाला आपका यह समीचीन भाग्य (सम्प्रददातीति सम्प्रद: स चासौ अय: सुभावह: विधि) सहज भाव से बुद्धि को प्राप्त हो (सहजेन अभ्युदेत)।

राष्ट्रपक्ष—गांधी के रोष को दूर करनेवाला नेहरु परिवार: (गांधीरूष: - शान्ति प्रिय: नेहरू: कदाचित् उग्रवादी हो गए थे। अत: उनकी उग्रता देखकर गांधी जी ने रोष प्रकट किया था) सज्जनों में (सत्सु) महान् उत्सव के लिए तत्पर है और राष्ट्रपति डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, यह सब राष्ट्रनेताओं का परिवार अभ्युदय को प्राप्त हो।

महाकवि का राष्ट्रभाव केवल इन पद्यों में ही नहीं, महाकाव्य के अन्त में राष्ट्र के प्रति उनकी अवधारणा इस प्रकार प्रस्फुठित हुई है—

राष्ट्रं प्रवर्तता मिज्यां तन्वन्निर्बाधमुद्धुरम्।
गणसेवी नृपो जात राष्ट्रस्नेहो वृषेषणाम्॥

अर्थात् राष्ट्र निर्बाध रूप से अत्यधिक प्रतिष्ठा को विस्तृत करता हुआ विद्यमान रहे। राजा गण (गणतन्त्र) सेवी हो, देश से स्नेह करने वाला हो, और धर्म की इच्छा को धारण करने वाला हो।

अन्त में मैं सर्वांगीण वैदुष्य से सम्पन्न आचार्य श्री ज्ञान सागर जी के प्रति नतमस्तक हूँ—

'जयोदय' मिदं काव्यं श्लेष वैशिष्ट्य मञ्चति।
ज्ञानसागरधी: श्रीला साधुवादै: प्रणम्यते॥

—अध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय,
ए-65, जनता कालोनी, जयपर।

□

वीरोदय महाकाव्य की भाषा, रस एवं अलंकारों की दृष्टि से अध्ययन

☐ डॉ. अभयप्रकाश जैन

वीरोदय महाकाव्य संस्कृत भाषा का महाकाव्य है, इसकी कथावस्तु 22 सर्गो में निबद्ध है मंगलाचरण में निम्न श्लोक है—(वीरोदय 1/3)

चन्द्रप्रभ नौमियदंग-सारस्तं कौमुस्तौम मुरीचकार।
सुखंजन संलभते प्रणश्यत्तमस्तया आत्मीय पंदसमस्य॥

भगवान महावीर के जीवन वृतांत पर यह काव्य अधारित है। वीरोदय का कथानक स्रोत महापुराण से लिया गया है। वीरोदय के विविध स्थलों वृतांतों में भाषा का वैभव देखने को मिलता हैं इसमें सर्वाधिक मनोहारी ऋतुवर्णन है। इस महाकाव्य में तीन संवाद देखने को मिलते हैं। रानी क्षियकारिणी राजा सिद्धार्थ का संवाद, रानी प्रियकारिणी -देवी संवाद और राजा सिद्धार्थ-वर्धमान संवाद। (2) वीरोदय मे हमें श्रंगार रस अद्‌भुत रस, वात्सल्य भाव और भक्तिभाव की छटा यत्र तत्र देखने को मिलती है लेकिन अंगीरस का स्थान शांतरस को ही प्राप्त है शेष रस एवं भाव इस रस के अंग ही है। (3)

वीरोदय पंच सन्धियों की दृष्टि से सरल काव्य है। काव्य के प्रथम सर्ग में वीर भगवान के जन्म का उल्लेख है।यह काव्य की मुख्य संधि है। इसके पश्चात छटे सर्ग में पुन: महावीर भगवान को जन्म का सविस्तार वर्णन है। (4) यह काव्य की प्रति मुखसंधि है। इस काव्य में कवि का प्रमुख उद्देश्य वीर भगवान की मुक्ति द्वारा शांतरस की स्थापना करना है कवि का यह उद्देश्य महावीर द्वारा किए गये विवाह के विरोध में छिपा हुआ है। (5) यह काव्य की गर्भसंधि है। काव्य के एकादश द्वादश, भियोदश सर्गों में भगवान अपने पूर्वभवों का विचार करते हैं उग्र तपस्या करते हैं। इस प्रकार काम क्रोध इत्यादि आंतरिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके कैवल्य ज्ञान प्राप्त करते हैं और गौतम को सदुपदेश देते हैं काव्य के इन स्थलों को विमर्श संधि कहा जा सकता है। बारहवें सर्ग में कवि ने भगवान महावीर के मोक्ष लाभ का उल्लेख किया है1 कवि की उद्देश्यपूर्ति रूप यह स्थल काव्यरस की निर्वहण संधि है। (6)

छंदों के निर्वाह में भी इस काव्य में कवि ने कुशलता का परिचय दिया है इस काव्य में यथाशक्ति छंदों के नियमों का पालन हुआ है प्रथम सर्ग में उपजाति छंद और इस सर्ग का अंतिम श्लोक मात्रात्मक छन्दोंबद्ध है इसके अलावा कवि ने अनुष्टुप, इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा शार्दुलविक्रीडित बसंततिलका आदि छंदों का प्रयोग हुआ है। विरोदय में कवि ने अनेक उत्तम अलंकारों का प्रयोग

किया है जयोदय की तरह वीरोदय अन्त्यानुप्रास से अलंकृत है। यमक उपका, अपश्रुति, उत्पेक्षा, भ्रांतिमान, परिसंख्या आदि अलंकारों की छटा काव्य में विशेष दर्शनीय है। (7)

इस काव्य के नायक भगवान महावीर की कवि ने स्थान स्थान पर प्रशंसा की है। (8) काव्य के परिशीलन से यह ज्ञात हो जाता है कि वीर भगवान युद्धवीर तो नहीं पर धर्मवीर अवश्य हैं। (9) उन्हें बाहय वस्तुओं से युद्ध की कोई आवश्यकता नहीं हाँ अंदर के शत्रुओं पर विजय प्राप्त करके वीर भगवान ने मोक्ष प्राप्त कर लिया। (10) इस प्रकार वीरोदय में नायक का ही अभ्युदय दिखाया है।

वीरोदय की उपयुक्त काव्यशास्त्रीय आलोचना से स्पष्ट हो जाता है कि वह शांत रस प्रधान महाकाव्य की कोटि में आने के लिए पूर्ण समर्थ काव्य है। महावीर भगवान के पंचकल्याण समोशरण का विस्तार से वर्णन है—सर्गसम्बन्धी, भावपक्ष सम्बन्धी, कलापक्ष सम्बन्धी, चरित्र सम्बन्धी सभी विशेषतायें इसमें हैं। आचार्य ज्ञानसागर ने अपने काव्यों में न केवल शब्दालंकार और अर्थलंकार प्रयुक्त किए हैं वरन् उन्होंने छह चित्रालंकार भी प्रयोग किए हैं—चक्रबन्ध, गो मुत्रिकाबंध, यानबन्ध, पद्मबन्ध, तालबन्ध, कलशबन्ध। (11)

आचार्य ज्ञानसागर जी ने वीरोदय महाकाव्य में लौकिक संस्कृत भाषा का प्रयोग किया है परन्तु उनके इस काव्य में कुछ स्थानो पर समाज में समाई हुई उर्दू भाषा के भी शब्द आ गए हैं जैसे मेवा, अमीर, नेक, शतरंज, बाजी कुरान, फिरंगी, बादशाह, खरीदी इत्यादि (12) कवि ने अपनी भाषा को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लोकोक्तियों और मुहावरों का भी प्रयोग किया है। (13) उनकी भाषा विषय वर्णनानुरूप है भाषा में सराक्तता और विषय की गहरी पकड़ है इस बारे में किसी को कोई विवाद नहीं है। आचार्य श्री की शैली वैदर्भी शैली है बंसतऋतु के वर्णन में अल्हाद उत्पन्न करने में मधुर शब्दावली का प्रयोग हुआ है। (14) पांचाली शैली में भगवान महावीर का जन्मोत्सव की झांकी प्रस्तुत की है—प्रस्तुत श्लोकों में प्रवा ूर्ण भाषा है विशिष्टता के कारण हास, उत्साहभाव और भी अधिक अल्हादक हो गए हैं। (15)

वीरोदय काव्य द्वारा कवि ने ब्रह्मचर्य एवं चारित्रिक छंदता की भी शिक्षा है इसके परिशीलन से ज्ञात हुआ कि काव्य एक ओर तो शैली की दृष्टि से कालिदास के काव्यों की शैली में आता है और दूसरी ओर दर्शन परक होने के कारण बौद्ध दार्शनिक महाकवि अश्वघोष के काव्यों के समकक्ष आ जाता है।

जब हम काव्य शास्त्रीय दृष्टि से देखते हैं तो उत्कृष्ट कोटि के महाकाव्य की श्रेणी में स्थापित हो जाती है। जब इसकी घटनाओं को देखता हूँ तो यह इतिहास ग्रंथ एवं पुराण ग्रंथ प्रतीत होता है। इसमें धर्म का स्वरूप जिस कौशल से प्रस्तुत किया गया है उसको देखते हुए यह धर्मशास्त्र ग्रंथ की श्रेणी में भी आ जाता है। काव्य के साथ साथ इसमें जैन दर्शन की भव्य व्याख्या मिलती है। फलस्वरूप इसमें दर्शनग्रंथ की भी विशैषतायें देखने को मिलती है।

इस काव्य में ब्रह्मचर्य व्रत के अतिरिक्त अहिंसा एवं अपरिग्रह इन दो व्रतों की भी शिक्षा बड़े कौशल के साथ दी गई है। इस काव्य का ऋतु वर्णन माघ के ऋतुवर्णन के समान ही प्रभावशाली है। वर्षा ऋतु का भगवान के गर्भावतरण के साथ, बसंत का भगवान के जन्म के साथ शीत ऋतु का भगवान के चितंन के साथ, ग्रीष्म ऋतु का भगबान के उग्रतपश्चरण के साथ और शरद ऋतु का भगवान महावीर के निर्माण के साथ वर्णन करके कवि ने ऋतु वर्णन को नई दिशा दी है। श्री ज्ञानसागर जी के पूर्व काव्यों में ऋतुओं का ऐसा प्रांसंगिक वर्णन देखने को नही मिलता वास्तव में प्रकृति मानव की चिरसहचरी और उसके विचारों का समर्थन करने वाली है, यह बात महाकवि ज्ञान सागर के इस काव्य के पढ़ने से स्पष्ट हो जाती है।

प्रस्तुत काव्य में देवियों द्वारा वर्धमान की माता प्रियकारिणी की सेवा सौधर्मेन्द्र द्वारा भगवान का जन्माभिषेक, कुबेर एवं इन्द्र द्वारा समवशरण मंडप का निर्माण आदि घटनायें देवों और मानवों को एक सूत्र में बांधने का अत्यंत प्रशंसनीय प्रयास प्रस्तुत करती है। साथ ही ये घटनायें यह भी बताती हैं कि महापुरुष अपनी विशेषताओं से मानव रूप में उत्पन्न होकर भी देवबन्ध हो जाते हैं।

इस महाकाव्य का उद्देश्य पाठक को अहिंसा, ब्रह्मचर्य एवं जैन दर्शन के महत्व का ज्ञान कराना है यदिदर्शन के सिद्धान्तों को सीधे सीधे प्रस्तुत कर दिया जाता तो सहृदय समाज इनको पढ़ने में नीरसता का अनुभव करती। अत: समाज इन सिद्धान्तों रूपी औषधियो को कवि ने व्यानन्द रूपी चाशनी से पाग कर प्रस्तुत किया है कवि अपने इस प्रस्तुतीकरण के प्रयास से दार्शनिकों और कवियों दोनों की रूचियों को संतुष्ट करने में समर्थ हो सकता है। अत: कवि का यह काव्य संस्कृत साहित्य की महान कृतियों में स्थान पाने योग्य है।

— एन/14 चेतकपुरी,
ग्वालियर 474009 (म. प्र.)

□

वीरोदय महाकाव्य का काव्य शास्त्रीय अध्ययन

☐ डॉ. रमेशचन्द्र जैन

विरोदय नाम की सार्थकता—वीरोदय महाकाव्य बीसवीं सदी के महान् आचार्य श्री 108 ज्ञानसागर जी महाराज की संस्कृत काव्यमयी सुप्रसिद्ध रचना है। वीरोदय शब्द वीर और उदय दो शब्दों से मिलकर बना है। इसमें 'वीर' अर्थात् भगवान् महावीर के उदय सम्बन्धी वृत्त वर्णित है। यास्काचार्य कृत निरुक्त के अनुसार वीर शब्द वि उपसर्ग पूर्वक 'ईर गतौ कम्पने च' (अदादि) धातु से बनता है। उसका अर्थ शत्रुओं को भगाने वाला या कँपाने वाला है। अथवा गत्यर्थक वी.धातु से वीर शब्द बना है अथवा ('श्कर वीर विक्रोन्तौ,'चुरादिगण) वीर धातु से बना है।[1] नियमसार तात्पर्यवृत्ति में कहा है—'वीरो विक्रान्तः वीरयते शूरयते विक्रमति कर्मारातीन् विजयत इति वीरः—श्रीवर्द्धमान—सन्मतिनाथ महतिमहावीराभिधानैः सनाथः परमेश्वरो महादेवाधिदेवः पश्चिम तीर्थनाथः।' वीर अर्थात् विक्रान्त (पराक्रमी) वीरता प्रकट करे, शौर्य प्रकट करे, विक्रम (पराक्रम) दर्शाये, कर्म शत्रुओ पर विजय प्राप्त करे, वह वीर है। ऐसे वीर श्री वर्द्धमान, श्री सन्मतिनाथ, महति, महावीर आदि नामों से युक्त परमेश्वर, महादेवाधिदेव अन्तिम तीर्थकर हैं।[2] धनञ्जय नाममाला के अमरकीर्ति भाष्य में कहा गया है विशिष्टाम् इन्द्राद्यसम्भाविनीम् ईम् अन्तरंगां समवसरणानन्त चतुष्टय लक्षणा लक्ष्मीं रात्यादत्ते इति वीरः। वीर इति नाम कस्माज्जातम्। जन्माभिषेक च लघुशरीरदर्शनादाशंकितवृत्तेरिन्द्रस्य सामर्थ्यख्याप- नार्थं पादागुष्ठेन मेरूचालनादिन्द्रण वीर नाम कृतम्।' विशिष्ट—इन्द्रादि मे असम्भव अन्तरगं समवसरण अनन्त चतुण्टय लक्षण लक्ष्मी को जो ग्रहण करते हैं वे वीर हैं। वीर यह नाम कैसे हुआ? जन्माभिषेक के समय छोटा शरीर देखकर आशंकित हुए इन्द्र को सामर्थ्य दिखलाने के लिए पैर के अंगूठे से मेरू को कँपाने के कारण इन्द्र ने 'वीर' यह नाम रखा।[3]

इस विषय में आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने वीरोदय महाकाव्य में कहा है—जो मनुष्य लोहे से बनी खड्ग से नहीं मारा जा सकता, वह वज्र से निश्चयतः मारा जाता है। जो वज्र से भी नहीं मारा जा सकता, वह दैव से अवश्य मारा जाता है, किन्तु जो महापुरुष दैव को भी मारकर विजय प्राप्त

---

1. वीरो वीरयत्यमित्रान्। वेतेर्वास्यात् गतिकर्मणः। वीरयतेर्वा।
   निरुक्त प्रथम अध्याय, तृतीय पाद पृ. 64
2. जैनेन्द्र सिद्धान्त कोश-भाग 3 पृ. 576.
3. नाममाला- भाष्य—115

करता है उसका संहार करने वाला इस संसार में कौन है ? वह वीरों का वीर महावीर ही इस संसार में सर्वोत्तम विजेता है और वह सदा विजयशील बना रहे ।[1]

वीरोदय : एक महाकाव्य—महाकाव्य की सुव्यवस्थित परिभाषा 15 वीं शताब्दी में विश्वनाथ ने अपने ग्रन्थ साहित्यदर्पण में दी है। तदनुसार पद्यबन्ध के प्रकारों में जो सर्गबन्धात्मक काव्य प्रकार है, वह महाकाव्य कहलाता है। इस सर्गबन्ध रूप महाकाव्य में एक ही नायक का चरित्र चित्रित किया जाता है। यह नायक कोई देव विशेष या प्रख्यात वंश का राजा होता है। यह धीरोदात्त नायक के गुणों से युक्त होता है। किसी-किसी महाकाव्य में एक राजवंश में उत्पन्न अनेक कुलीन राजाओं की भी चरित्र चर्चा दिखाई देती है। श्रृंगार, वीर और शान्त रसों में से कोई एक रस प्रधान होता है। इन तीनों रसों में से जो रस भी प्रधान रखा जाय, उसकी अपेक्षा अन्य सभी रस अप्रधान रूपसे अभिव्यक्त किये जा सकते हैं। नाटक की सभी सन्धियाँ महाकाव्य में आवश्यक मानी गयी हैं। कोई भी ऐतिहासिक अथवा किसी महापुरुष के जीवन से सम्बद्ध कोई लोकप्रिय वृत्त यहाँ वर्णित होता है। महाकाव्य में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रुप पुरूषार्थ चतुष्टय का काव्यात्मक निरूपण होता है। किन्तु उत्कृष्ट फल के रूप में सर्वतोभद्र निबन्ध युक्तियुक्त माना जाता है। महाकाव्य का आरम्भ मंगलात्मक होता है। यह मंगल नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक या वस्तु निर्देशात्मक होता है। किसी किसी महाकाव्य में खल निन्दा और सज्जन प्रशंसा भी उपनिबद्ध होती है, इसमें न बहुत छोटे, न बहुत बड़े आठ से अधिक सर्ग होते हैं। प्रत्येक सर्ग में एक छन्द होता है, किन्तु (सर्गका) अन्तिम पद्य भिन्न छन्द का होता है। कही कही सर्ग में अनेक छन्द भी मिलते हैं। सर्ग के अन्त में अगली कथा की सूचना होनी चाहिए। इसमें सन्ध्या, सूर्य, रात्रि, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रातःकाल, मध्याह्न, मृगया, पर्वत, ऋतु, वन, समुद्र, संयोग, वियोग, मुनि, स्वर्ग, नगर, यज्ञ, संग्राम, विवाह, यात्रा, मन्त्र, पुत्र और अभ्युदय आदि का यथासम्भव संगोपागं वर्णन होना चाहिए। इसका नाम कवि के नाम से या चरित्र के नाम से अथवा चरित्रनायक के नाम से होना चाहिए। सर्ग की वर्णनीय कथा से सर्ग का नाम लिखा जाता है। सन्धियों के अगं यहाँ यथासम्भव रखने चाहिए। जलक्रीड़ा, मधुपानादि सांगोंपागं होने चाहिए।[2]

महाकाव्य के उपर्युक्त लक्षण न्यूनाधिक रूप में वीरोदय काव्य में घटित होते हैं। इसे सर्गों में विभाजित किया गया है। काव्य के प्रारम्भ में श्री ऋषभ जिनेन्द्र, चन्द्रप्रभ, पार्श्वप्रभु एवं वीर प्रभु को नमस्कार किया गया है। इसके बाद विघ्नलोपी गुरुजनों का सामान्य रूप से स्मरण कर कवि ने अपनी लघुता व्यक्त करते हुए कहा है कि श्री वीर भगवान् के जिस उदयरूप महात्म्य के वर्णन करने के

---

1. खड्गेनायसनिर्मितेन न हतो वज्रेण वै हत्यते।
   तस्यान्निर्व्रजते नराय च विपद्दैवेन तं तन्यते।
   दैवं किन्तु निहत्य यो विजयते तस्यात्र संहारकः
   कः स्यादित्यनुशासनाद्विजयतां वीरेषु वीरः सकः 11 वीरोदय काव्य 16/30
2. विश्वनाथ : साहित्यदर्पण 315–324

लिए श्री गणधरदेव भी समर्थ नहीं हैं, ऐसे वीरोदय के वर्णन करने के लिए मैं जल प्रतिबिम्बित चन्द्रमण्डल को उठाने की इच्छा करने वाले बालक के समान बालभाव को धारण कर रहा हूँ।[1] इस प्रकार कहकर कवि ने वस्तु निर्देश किया है। इसकी रचना तीर्थंकर भगवान् महावीर जैसे महान् व्यक्तित्व की कथा के आधार पर हुई है। इसे कहकर कवि अपने को निर्मल बनाना चाहता है, उसके अनुसार जिनके चरणों का चिन्तन करने से प्राणियों क़ा मन पापों से रहित होकर निर्मलता को प्राप्त हो जाता है, उन्हीं वीर भगवान् के एकसूत्र चरित्र का चित्रण करने में समर्थ उसकी वाणी सुवर्ण भाव को क्यों नहीं प्राप्त होगी- ।[2] अर्थात् वीर भगवान् के चरित्र का वर्णन करने के लिए उसकी वाणी भी उत्तम वर्ण, पद, वाक्य रूप से अवश्य ही परिणत होगी।

वीरोदय शान्तरस प्रधान काव्य है। आवश्यकतानुसार इसमें श्रंगार,[3] अद्‌भुत[4], और वात्सल्य[5] रस का भी समावेश हुआ है। तृतीय सर्ग में प्रियकारिणी रानी का नखशिख वर्णन कवि करने में कवि ने अपने श्रृंगार रस के वर्णन कौशल को अभिव्यक्त किया है। उदाहरणार्थ दो पद्य प्रस्तत है—

प्रबालता मूर्ध्न्यधरे करे च मुखेऽब्जताऽस्याश्चरणे गले च।
सुवृत्तता जानुयुगे चरित्रे रसालताऽभूत्कुचयोः कटित्रे।

पूर्वं निनिर्माय विधुं विशेष यत्नाद्विधिस्तन्मुखमेवमेषः।
कुर्वंस्तदुल्लेखकरीं चकार स तत्र लेखामिति तामुदारः ॥

वीरोदय 3/28-29

इस रानी (प्रियकारिणी) के शिर पर तो प्रबालता (केशों की सघनता) थी, ओठो पर मूँगे के समान लालिमा थी और हाथ में नव पल्ल्व की समता थी। नारी के मुख में अब्जता (चन्द्र तुल्यता) थी, चरणों में कमलसदृश कोमलता थी और गले में शंख सदृशता थी। दोनों जंघाओं में सुवृत्ता थी और चरित्र में सदाचारिता थी। दोनों स्तनों में रसालता (आम्र फल तुल्यता) थी और कटित्र (अधोवस्त्र) पर रसालता (करधनी) शोभित होती थी। विधाता ने पहले चन्द्र को बनाकर पीछे बड़े प्रयत्न से इस रानी के मुख को बनाया इसीलिए मानों उदार निधाता ने चन्द्रबिम्ब की व्यर्थता प्रकट करने के लिए उस पर रेखा खींच दी है, जिसे कि लोग कलंक कहते हैं।

वीरोदय का नवम एवम् दशम सर्ग शान्तभावों से भरा हुआ है। संसार की कारूणिक स्थिति के विषय में भगवान् विचार करते हैं—

संसार की समस्त वस्तुयें विपरीत रूप धारण किए हुए दिख रही हैं, जिसे लोग नगर कहते हैं। वह तो सगर अर्थात् विषयुक्त हैं, जिसे लोग वन कहते हैं, उसमें अवन तत्व है अर्थात् उसमें सभी

---

1. वीरोदय काव्य 1/7
2. वही 1/9
3. वही 5/37
4. वही 6/10
5. वही 8/7, 46

प्राणियों की सुरक्षा है। इसलिए नगर को त्याग कर मेरा मन विषम (भीषण) वन में रहने को हो रहा है।[1]

वीरोदय में पंच सन्धियाँ विद्यमान हैं। प्रथम सर्ग में मुख सन्धि, छठे सर्ग में प्रतिमुख सन्धि, विवाह के विरोध में गर्भसन्धि, एकादश, द्वादश तथा त्रयोदश सर्गों में विमर्श सन्धि एवं 12 वें सर्ग में मोक्षलाभ के प्रसंग में निर्वहण सन्धि है। यहाँ पुरुषार्थ चतुष्टय में मोक्षलाभ रुप उद्देश्य की प्राप्ति होती है।

वीरोदय के प्रथम सर्ग में दसवें पद्य से 21 वें पद्य तक तक सज्जनो की प्रशंसा और दुर्जनों की निन्दा की गयी हैं। बारहवें पद्य में कहा गया है—

सतामहो सा सहजेन शुद्धि परोपकारे निरतैव बुद्धि।
उपद्रुतोऽप्येष तरू रसालं फलं श्रणत्यंगभृते त्रिकालम्॥

वीरोदय 1/12

अर्थात्—अहो ! सज्जनों की चित्तशुद्धि पर आश्चर्य है कि उनकी बुद्धि दूसरों का उपकार करने मे सहज स्वभाव से ही निरत रहती है। देखो-लोगों के द्वारा (पत्थर आदि मारकर) उपद्रव को प्राप्त किया गया भी वृक्ष सदा ही उन्हे साल फल प्रदान करता है।

19वें पद्य में दुर्जन के विषय में कहा है—

अनेक धान्येषु विपत्तिकारी विलोक्यते निष्कपटस्य चारिः।
छिंद निरुप्य स्थितिमादधाति स भाति आखोः पिशुनः सजातिः ॥

वीरोदय 1/19

दुर्जन मनुष्य चूहे के समान होते हैं। जिस प्रकार मूषक (चूहा) नाना जाति की धान्यों का विनाश करने वाला है, निष्क अर्थात बहुमूल्य पटों का आरि है, उन्हें काट डालता है और छिद्र (बिल) देखकर उसमें अपनी स्थिति को कायम रखता है। ठीक इसी प्रकार पिशुन पुरुष भी मूषक के सजातीय प्रतीत होते है, क्योंकि पिशुन पुरुष भी नाना प्रकार के अन्य सर्वसाधारण जनों के लिए विपत्ति कारक हैं, निष्कपट जनों के शत्रु हैं और लोगों के छिद्रों (दोषों) को देखकर अपनी स्थिति को दृढ़ बनाते हैं।

वीरोदय में 22 सर्ग हैं। इसमें 503 उपजाति, 178 अनुष्टुप्, 42 वियोगिनी, 1 रथोद्धता, 12 मात्रासमक, 9 द्रुतविलम्बित, 25 वंशस्थ, 26 आर्या, 40 वसन्ततिलका, 34 उपेन्द्रव्रजा, 38 शार्दुलविक्रीडित, 54 इन्द्रवज्रा, 13 भुजंगप्रयात, 8 उपजाति, 2 मालिनी, 1 इन्द्रवंशा, 1 शिखरिणी, तथा 1 मन्द्राकान्ता छन्द

1. सगंर नगरं त्यक्त्वा विषमेऽपि समेरसः।
वनेऽप्यवनतत्वेन सकलं विकलं यतः॥ वीरोदय 10/19

है। उपजाति छन्द को प्रथम स्थान प्राप्त है। कुल 18 प्रकार के छन्द प्रयुक्त किए गए हैं।[1] प्रत्येक सर्ग के अन्त में सर्ग की वर्णीनीय कथा का कथन किया गया है। वीरोदय मे हिमालय,[2] विजयार्द्ध,[3] और सुमेरु[4] तीन पर्वतों का वर्णन है, कवि ने चतुर्थ सर्ग में वर्षा, षष्ठ में वसन्त, द्वादश में ग्रीष्म, नवम में शीत एवं इक्कीसवें सर्ग में शरद ऋतु का मनोहारी वर्णन किया है। उदाहरणार्थ ग्रीष्म वर्णन के कुछ रूप देखिए—

वोढ़ा नवोढामिव भूमिजातश्छायामुपान्तान्न जहात्यथातः
अनारतं वान्ति वियोगिनीनां श्वासा इवोष्णाः श्वसना जनीनाम्॥

12/3 (वीरोदय)

जैसा कोई नवीन विवाहित पुरुष नवोढा स्त्री को अपने पास से दूर नहीं होने देता है, उसी प्रकार इस ग्रीष्मकाल में भूमि से उत्पन्न हुआ वृक्ष भी छाया को अपने पास से नही छोड़ता है। तथा इस समय वियोगिनी स्त्रियों के उष्ण श्वासों के समान उष्ण वायु भी निरन्तर चल रही है।

मितम्पचेषूत किलाध्वगेषु तृष्णाभिवृद्धिं समुपैत्यनेन।
हरेः शयानस्य मृणालबुद्ध्या कर्षन्ति पुच्छं करिणाः करेण॥

(वीरोदय 12/4)

इस ग्रीष्मकाल के प्रभाव से पथिक जनो में कृपण जनो के समान ही तृष्णा (प्यास और धनाभिलाषा) और भी वृद्धि को प्राप्त हो जाती है। इस समय ग्रीष्म से विह्वल हुए हाथी अपनी सूँड से सोते हुए साँप को मृणाल की बुद्धि से खीचने लगते हैं।

वीरोदय के द्वितीय सर्ग में विदेह देश और कुण्डपुर नगर का काव्यात्मक वर्णन किया गया है। प्रसंगानुसार इसमें रात्रि, परिखा, सौध, जिनालय, नगरद्वार, समुद्र, द्वीप, नागरिक, स्त्रियो, वियोग तथा कोट का वर्णन किया गया है। अन्यत्र नदी,[5], सरोवर[6], दिवस,[7] यात्रा[8] आदि के वर्णन प्राप्त होते है ? इन सब लक्षणों के आधार पर सिद्ध होता है कि वीरोदय एक महाकाव्य है।

---

1. छन्दों के विस्तृत वर्णन हेतु दिखिए—महाकवि ज्ञानसागर के काव्य : एक अध्ययन (लेखिका—डॉ. किरण टण्डन)—अष्टम अध्याय
2. वीरोदय 2/6
3. वही 2/8
4. वीरोदय 2/2
5. वही 3/7–9
6. वही 12/8-10
7. वही 12/20
8. वही 7/6–12

अलङ्कार योजना—वीरोदय काव्य में विरोधाभास, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास, काव्यलिङ्ग, श्लेष, दृष्टान्त, उपमा और रूपक आदि अनेक अलङ्कारों का प्रयोग किया गया है। निदर्शनार्थ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

विरोधाभास—जहां जैसा प्रतिभासित तो हो, किन्तु यथार्थ में विरोध न हो, वहां विरोधाभास अलङ्कार होता है। जैसे—

नरपो वृषभावमाप्तवान् महिषीयं पुनरेतकस्य वा।
अनयोरविकारिणी क्रिया समभूत्साधुसदामहो प्रिया॥

(वीरोदय 3.36)

यह सिद्धार्थ राजा वृषभाव (बैलेपने) को प्राप्त हुआ और इसकी यह रानी महिषी (भैस) हुई। पर यह तो विरुद्ध है कि बैल की स्त्री भैंस हो। अत: परिहार यह है कि राजा तो परम धार्मिक था और प्रियकारिणी उसकी पट्टरानी बनी। इन दोनो राजारानी की क्रिया अवि (भेड़) को उत्पन्न करने वाली हो, यह कैसा सम्भव है? इसका परिहार यह है कि उनकी मनोविनोद आदि सभी क्रियाएँ विकास रहित थी। यह रानी मानुषी होकर भी देवों को अत्यन्त प्यारी थी।

बभूव कस्यैव बलेन युक्तश्च नाऽधुनासौ कवले नियुक्तः।
सुरक्षणोऽसावसुरक्षणोऽपि जनैरमानीति वधैकलोपी॥

वीरोदय 12 ।48

भगवान उस समय कबल अर्थात् आत्मा के बल से तो युक्त हुए, किन्तु कवल अर्थात् अन्न के ग्रास से संयुक्त नही हुए, अर्थात्, केवल ज्ञान प्राप्त होने के पश्चात् भगवान् कवलाहार से रहित हो गए, फिर भी वे निर्बल नही हुए प्रयुक्त आत्मिक अनन्तबल से युक्त हो गए। वे भगवान सुरक्षण होते हुए भी असुरक्षण थे। यह विरोध है कि जो सुरों का क्षण (उत्सव-हर्ष) करने वाला हो, वह असुरों का हर्षवर्द्धक कैसे हो सकता है? इसका परिहार यह है कि वे देवों के हर्ष वर्द्धक होते हुए भी असु-धारी प्राणी मात्र के भी पूर्ण रक्षक एवं हर्ष-वर्द्धक हुए। इसीलिए लोगों ने उन्हे वध (हिंसा) मात्रा का लोप करने वाला ओर पूर्ण अहिसक माना।

उत्प्रेक्षा—उपमेय की उपमान के रूप मे सम्भावना करने को उत्प्रेक्षा अलङ्कार कहते हैं ऐसा ज्ञात होता है कि महाकवि ज्ञानसागर को उत्प्रेक्षा अलङ्कार अधिक प्रिय था। वीरोदय काव्य में अनेक स्थान पर उत्प्रेक्षा के प्रयोग प्राप्त होते हैं। जैसे—

रसैर्जगत्प्लावयितुं क्षणेन सूत्कण्ठितोऽयं मुदिरस्वनेन।
तनोति नृत्यं मृदु मञ्जुलापी मृदङ्गनिः स्वानजिता कलापी॥

वीरोदय 4 ।9

रसों (जलों) से जगत् को एक क्षण में अप्लावित करने के लिए ही मानों मृदङ्ग की ध्वनि को जीतने वाले, मेघो के गर्जन से अतिउत्कण्ठित और मृदु मञ्जुल शब्द करने वाला यह कलापी (मयूर) नृत्य किया करता है।

यहाँ वर्षाकाल की नाटक घर के रूप में सम्भावना की गई है; क्योंकि इस समय मेघों का गर्जन तो मृदङ्गों की ध्वनि को ग्राहण कर लेता है और उसे सुनकर प्रसन्न हो मयूरगण नृत्य करते हुए सरस सङ्गीत रूप मिष्ट बोली का विस्तार करते हैं?

वर्षा की एक स्त्री के रूप में सम्भावना देखिए—

पयोधरोत्तानतया मुदेवाक् यस्या भृशं दीपितकामदेवा।
नीलाम्बरा प्रावृडियं च रामा रसौघदात्री सुमनोभिरामा॥

वीरोदय 4 ।10

यह वर्षा ऋतु पयोधरों (मेघों और स्तनों) की उत्तानता अर्थात् उन्नति से, मेघगर्जना से तथा आनन्दवर्द्धक वाणी से लोगों में कामदेव को अत्यन्त प्रदीप्त करने वाली, नीलवस्त्र धारिणी, रस के पूर को बढ़ा देने वाली और सुमनों पुष्पों तथा उत्तम मन से अभिराम (सुन्दरी) रामा (स्त्री) के समान प्रतीत होती है।

वसुन्धरायास्तनयान् विपद्य नियन्तिमारात्खरकालमद्य।
शम्पाप्रदीपैः परिणामवाद्राग्विलोकयन्त्यम्बुमुचोऽन्तरार्द्राः॥

वीरोदय 4 ।11

इस वर्षा ऋतु में वसुन्धरा के तनयों अर्थात् वृक्ष रूप पुत्रों को जलाकर या नष्ट भ्रष्ट करके शीघ्रता से लुप्त (छिपे) हुए ग्रीष्मकाल को अन्तरङ्ग में आद्रता के धारक मेघ आँसू बहाते हुए से मानो शम्पा रूप बिजली के द्वारा उसे ढूंढ रहे हैं?

यहां कवि ने उत्प्रेक्षा की है ग्रीष्मकाल वृक्षो को जलाकर कहीं छिप गया है, उसे खोजने के लिए दु:खित हुए मेघ वर्षा के बहाने आँसू बहाते हुए तथा बिजली रूप दीपकों को हाथ में लेकर इधर-उधर खोज रहे हैं?

इस प्रकार उत्प्रेक्षा के अनेक उदाहरण वीरोदय में प्राप्त है।

अर्थान्तरन्यास जैसे—

कवित्ववृत्त्येत्युदितो न जातु विकास आसीज्जिनराजमातुः।
स्याद्दीपिकायां मरुतोऽधिकारः क्व विद्युतः किन्तु तथातिचारः॥

वीरोदय 6 ।11

ऊपर जो माता के गर्भकाल में होने वाली बातों का वर्णन किया है, वह केवल कवित्व की दृष्टि से किया गया है, वस्तुत: जिन राज की माता के शरीर में किसी प्रकार का कोई विकार नहीं होता है। तेल बत्ती वाली साधारण दीपिका के बुझाने में पवन का अधिकार है। पर क्या वह बिजली के प्रकाश को बुझाने की सामर्थ्य रखता है? अर्थात् नही।

यहाँ ऊपर की पंक्ति रूप विशेष का नीचे की पंक्ति रूप सामान्य से समर्थन किये जाने के कारण अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

काव्यलिङ्ग—जहाँ कोई बात कही जाय और उसका हेतु उपस्थित किया जाय, वहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार होता है। जैसे—

अन्येऽपि बहवो जाताः कुमारश्रमणा नराः।
सर्वेष्वपि जयेष्वग्र-गतः कामजयो यतः॥

वीरोदय 8।41

अन्य भी बहुत से मनुख्य कुमार श्रमण हुए हैं, अर्थात् विवाह ने करके कुमार काल में दीक्षित हुए हैं; क्योंकि सभी विनयों में काम पर विजय पाना अग्रगण्य है।

श्लेष—श्लिष्ट पदों के द्वारा अनेक अर्थों का कथन कला श्लेष कहलाता है। जैसे—

शाखिषु विपल्लव त्वमथेतत् संकुचतत्वं खलु मित्रेऽतः।
शैत्यमुपेत्य सदाचरणेषु कलहमिते द्विजगणेऽत्र मे शुक्॥

वीरोदय 9।43

प्रथम अर्थ—इस शीतकाल को पाकर वृक्षों में पत्रों का अभाव, दिन में संकुचितता अर्थात् दिन का छोटा होना, चरणों का ठिठुला और दाँतों का कलह अर्थात् किटकिटाना मेरे लिए शोचनीय है।

द्वितीय अर्थ—कुटुम्बी जनों में विपत्ती का प्राप्त होना, मित्र का रुठना, सत् आचरण करने में शिथिलता या आक्तस्य करना और द्विजगण (ब्राह्मण वर्ग) में कलह होना ये सभी बातें मेरे लिये चिन्तनीय हैं।

विहाय मनसा वाचा कर्मणा सदना श्रयम्।
उपैम्यहमपि प्रीत्या सदऽऽनन्दनकं वनम्॥

20।21

मैं भी नगरको जो कि सदनाश्रय है अर्थात् सदनों (भवनों) से घिरा हुआ है, दूसरे अर्थ में सद् अनाश्रय अर्थात् सज्जनों के आनन्द से रहित है, ऐसे नगर को छोड़कर सज्जनों के लिये आनन्द कन्द स्वरूप वन को अथवा सदा आनन्द देने वाले नन्दन वन को मन, वचन, काय से प्रेम पूर्वक प्राप्त होता हूँ।

यहाँ पर सदनाश्रयम् और सदाऽऽनन्दनकं में श्लेष है।

एकावली—जहाँ पूर्व वस्तु के प्रति उत्तर उत्तर वस्तु विशेषण रूप से रखी जाय अथवा हटायी जाय, वह दो प्रकार का एकावली होता है, द्वितीय का उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

नाऽसौ नरो यो न विभाति भोगी भोगोऽपि नाऽसौ न वृषप्रयोगी।

वृषोन सोऽसंख्यसमर्थितःस्यात्सख्यं च तन्नात्र कदापि न स्यात्॥ 2/38

---

1. जैसे—वीरोदय 4।12, 13, 14, 15, 16, 18, 20, 21, 22, 23, 24, 39, 5।27, 6।26, 29, 7।18 इत्यादि

उस कुण्डपुर में ऐसा कोई मनुष्य नहीं था, जों भोगी न हो और वहाँ कोई ऐसा भोग नहीं था, जो कि धर्मसंप्रयोगी अर्थात् धर्मानुकूल हो, वहाँ ऐसा कोई धर्म नहीं था, जो कि असंख्य (शत्रुता) समर्पित अर्थात् शत्रुता पैदा करने वाला हो और ऐसी कोई मित्रता न थी, जो कि कादाचित्क हो अर्थात् स्थानीय हो।

रूपक—उपमान और उपमेय में जहाँ अभेद हो, वहाँ रूपक अलङ्कार होता है। जैसे—

यत्कृष्णवर्त्मत्वमृते प्रतापवह्निं सदाऽमुष्यजनोऽभ्यवाप। **वीरोदय 3/6**

इस राजा की प्रताप रूपी अग्नि को लोग सदा ही कृष्णवर्ममत्व (धूमपना) के बिना ही स्वीकार करते थे।

यहाँ प्रताप को अग्नि कहा गया है, अतः रूपक है।

उपमा—प्रस्फुट रूप से सुन्दर साम्य को उपमा कहते हैं। जैसे—

श्रिये जिनः सोऽस्तु यदीयसेवा समस्त संश्रोतृजनस्यमेवा।
द्राक्षेव मृद्वी रसने हृदोऽपि प्रसादिना नोऽस्तु मनाकश्रमोऽपि ॥

वीरोदय 1/1

वे जिन भगवान् हम सबके कल्याण के लिये हों, जिनकी कि चारण सेवा समस्त श्रोताजनों को और मेरे लिये सेवा के तुल्य है तथा जिनकी सेवा द्राक्षा के समान आस्वादन में मिष्ट एवं मृदु है और हृदय को प्रसन्न करने वाली है। अतएव उनकी चरण सेवा के प्रसाद से इस काव्य रचना में मेरा जरा सा भी श्रम नहीं होगा।

यहाँ सेवा को द्राक्षा के समान मृदु बतलाने के कारण उपमा अलङ्कार है।

दृष्टान्त—पारस्परिक समान धर्म रखने वाले विषयों का जहाँ बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव से वर्णन हो, वहाँ दृष्टान्त अलङ्कार होता है। जैसे—

प्रभोरभूत्सम्प्रति दिव्यबोधः विद्याऽवशिष्टा कथमस्त्वतोऽधः।
कलाधरे तिष्ठति तारकाणां ततिः स्वतोव्योम्नि धृतप्रमाणा॥

वीरोदय 12/49

भगवान को जब दिव्य बोध प्राप्त हो गया है को फिर संसार की समस्त विद्याओं मे से कोई भी विद्या अवशिष्ट कैसे रह सकती थी? आकाश में कलाधर (चन्द्र) के रहते हुए ताराओं की पंक्ति को तो स्वतः ही अपने परिवार के साथ उदित हो जाती है।

यहाँ दोनो वाक्यों में बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव होने के कारण दृष्टान्त अलङ्कार है।

—अतिश्योक्ति—अध्यवसाय के सिद्ध होने पर अतिश्योक्ति अलंकार होता है। जैसे—

मेरोर्यदौद्धत्य मिता नितम्बे फुल्लत्वमब्जादथवाऽऽस्य बिम्बे।
गाम्भीर्यमब्धेरुतनाभिकायां श्रोणौ विशालत्वमथो धरायाः॥

वीरोदय 3/22

उस रानी ने अपने नितम्बभाग में सुमेरू की उद्दतता को, मुखबिम्ब में कमल की प्रफुल्लता को, नाभि में समुद्र की गम्भीरता को और श्रोणिभाग (नाम से अधोभाग) में पृथ्वी की विशालता को धारण किया था।

यमक—अर्थ हो तो पृथक् पृथक् अर्थ वाले (अन्यथा निरर्थक) स्वर व्यञ्जन समुदाय की उसी क्रम से आवृत्ति को यमक अलङ्कार कहते हैं। जैसे—

> **मृगीदृशश्चापलता स्वयं या स्मरेण सा चापलताऽपिरम्या।**
> **मनोजहाराङ्कभृतः क्षणेन मनोजहाराऽथ निजेक्षणो न॥**

वीरोदय 3/25

इन मृगनयनी की जो स्वाभाविक चपलता थी, उसी को कामदेव ने अपनी सुन्दर धनुषलता बनायी क्योंकि कामदेव को हार के समान हृदय का अलङ्कार मानने वाली वह रानी अपने कटाक्ष से क्षणमात्र में मनुष्यों के मन को हर लेती थे।

यहाँ पर चापलता तथा चापलता एवं मनोजहार तथा मनोजहार शब्दों की उसी क्रम से आवृत्ति हुई है, किन्तु अर्थ भिन्न-भिन्न है। पहले चापलता शब्द का **अर्थ** चपलता एवं दूसरे चाप लता का अर्थ धनुष लता है। इसी प्रकार पहले मनोज हार का अर्थ कामदेव को हार और दूसरे मनोजहार का अर्थ मनुष्यो के मन को हर लेना है।

समासोक्ति—जहाँ समान विशेषांको, समान कार्यो और समान लिङ्गों से उपमेय अथवा उपमान से अन्य अर्थात् अप्रस्तुत अथवा प्रस्तुत अर्थ अभिव्यक्त होता है, वह संक्षेप से उक्ति अर्थात् समाशोक्ति कही गयी है जैसे—

> **श्लोकस्तु लोकोपकृतौ विधातुं पत्राणि वर्षा कलमं च लातुम्।**
> **विशारदाऽभ्यारमते विचारिन् भूयोभवन् वार्दल आशुकारी॥**

वीरोदय 5/13

जैसे कोई विशारदा (विदुषी) स्त्री लोकोपकार के हेतु श्लोक की रचना करने के लिए पत्र (कागज), मषिपात्र (दाबात) और कलम लाने के उद्यत होती है, उसी प्रकार यह विशारदा अर्थात् शरद ऋतु से रहित वर्षाऋतु लोकोपकार के लिए मानों श्लोक रचने को वृक्षों के पत्ररूपी कागज, बादल रूपी दवात और धान्य रूप कलम को अपना रही है। पुनः हे विचारशील मित्र, उक्त कार्य को सम्पन्न करने के लिए यह वार्दल (मेघ) बार-बार शीघ्रता कर रहा है। आशु नाम नाना प्रकार के धान्यों का भी है, सो यह मेघ जल-वर्षा करके धान्यो को शीघ्र उत्पन्न कर रहा है।

उक्त पद्य में कहा तो गया है विशारदा स्त्री के सम्बन्ध में, किन्तु अर्थ अभिव्यक्त हो रहा है वर्षा ऋतु सम्बन्धी। अतः यहाँ समासोक्ति है।

अनुप्रास—स्वर की विषमता होने पर भी व्यञ्जन मात्र की समता को अनुप्रास अलङ्कार कहते हैं। जैसे—

परागनीरोद्भरितप्रसून श्रङ्गैरनङ्गैकसखा मुखानि।
मधुर्घनीनाम वनीजनीनां मरुत्करेणोक्षतु तानि मानी।

वीरोदय 6/13

उक्त पद्य में न् र् एवं वर्णों की अनेक बार आवृत्ति होने से अनुप्रास है।

भ्रान्तिमान्—जब किसी वस्तु में समता के कारण अन्य वस्तु की भ्रान्ति कवि की प्रतिभा के द्वारा समुत्पन्न होती है तो वहाँ भ्रान्तिमान् अलङ्कार होता है। जैसे—

यत्खाति का वारिणि वारणानां लसन्ति शङ्कामनुसन्दधानाः।
शनैश्चरन्तः प्रतिमावतारान्निनादिनो वारिमुचोऽप्युदाराः॥

वीरोदय 2/30

उदार, गर्जनायुक्त एवं धीरे-धीरे जाते हुए मेघ जिस नगर की खाई के चल में प्रतिबिम्बित अपने रूप से हाथियों का शंका को उत्पन्न करते हुए शोभित होते हैं।

यहाँ खाई के जल में प्रतिबिम्बित मेघों में हत्थी की भ्रान्ति हो रही है।

सन्देह—उपमेय में कवि की प्रतिमा से जब उपमान का संशय उत्पन्न किया जाता है, तब सन्देह अलङ्कार होता है। जैसे—

गत्वा प्रतोली शिशिराग्रलग्नेन्दु कान्तनिर्यज्जल भापिपासुः।
भीतोऽथ तत्रोल्लिखितान्मृगेन्द्रादिन्दोर्मृगः प्रत्यपयात्यथाऽऽशु॥

वीरोदय 2/34

उन जिनालयों की प्रतोली (द्वार के उपरी भाग) के शिखर के अग्रभाग पर लगे चन्द्रकान्तमणियों से निकलेत हुए जल को पीने का इच्छुक चन्द्रमा का मृग वहां जाकर और वहां पर उल्लिखित (उत्कीर्ण, चित्रित) अपने शत्रु मृगराज (सिह) को देखकर भयभीत हो तुरन्त ही वापिस लौट आता है।

यहाँ पर चित्रित सिंह में यथार्थ सिंह का संशय होने के कारण सन्देह अलङ्कार है।

अपह्नुति—जहाँ उपमेय का निषेध कर उपमान की स्थापना की जाती है, वहाँ अपह्नुति अलङ्कार होता है, जैसे—

न हि पलाशतरोर्मुकुलोद्गतिर्वनभुवां नखरक्षतसन्ततिः।
लसति किन्तु सती समयोचितासुरभिणाऽऽकलिताऽप्यतिलोहिता॥

।6।

वसन्त ऋजु में पलाश (ढाक) का वृक्ष फूलता है, वे उसके फूल नहीं, किन्तु वन लक्ष्मी के स्तरो पर नखक्षत (नखों के घाव रूप चिन्ह) की परम्परा ही है, जो कि वसन्त रूपी रसिक पुरुष ने उस पर की है, इसीलिए वह अति रक्त वर्णवाली शोभित हो रही है।

यहाँ ढाक के फूल रूप उपमेय का निषेध कर वनलक्ष्मी के स्तनों पर नखक्षत की परम्परा की स्थापना की जाने से अपह्नुति अलङ्कार है।

परिसंख्या—कोई पूछी गयी या बिना पूछी हुई कही गयी बात जो उसी प्रकार की अन्य वस्तु के निषेध में पर्यवसित होती है, वह परिसंख्या कहलाता है। जैसे—

> **निरौष्ठ्यकाव्येष्वपवादवत्ताऽथहेतुवादे परमोहसन्ता।**
> **अपाङ्गनाम श्रवण कटाक्षे छिद्राधिकारित्वमभूद गवाक्षे॥ ३७॥**

वहाँ निरोष्ठ्य अर्थात् ओष्ठ से न बोले जाने वाले काव्यों में ही अपवादपना था यानी पकार नहीं बोला जाता था, किन्तु अन्यत्र अपवाद नहीं था अर्थात् कहीं कोई किसी की निन्दा नहीं करता था। हेतुवाद (तर्कशास्त्र) में ही परम ऊहपना (तर्क वितर्क पना) था, अन्यत्र परम (महा) मोह का अभाव था। वहाँ अपाङ्ग यह नाम स्त्रियों के नेत्रों में ही सुना जाता था, अन्यत्र कहीं कोई हीनाङ्ग नही था। वहाँ छिद्र का अधिकारी पना भवनों के गवाक्षों (खिड़कियों) में ही था, अन्य कोई पुरुष वहाँ पर छिद्रान्वेषी नही था।

इसके अतिरिक्त वीरोदय महाकाव् में वक्रोक्ति[1], समन्वय[2], अतिदेश[3], मालोपमा[4],अन्योक्ति[5], संसृष्टि[6], सङ्कर[7] तथा गोमूत्रिकाबन्ध,[8] यानबन्ध[9] पद्मबन्ध[10], तालवृन्त बन्ध[11] जैसे चित्रालङ्कार आदि अलङ्कारोंकी छटा दर्शनीय है।

महाकवि ज्ञानसागर की काव्य विषयक अवधारणा—महाकवि ज्ञानसागर काव्य को स्वर्ग के समान समझते हैं। उनके अनुसार जैसे स्वर्ग सार रूप है और कृति जनों को इष्ट है, इसी प्रकार यह काव्य भी अलङ्कारों से युक्त है और ज्ञानियों को अभिष्ट है। स्वर्ग सुर-सार्थ अर्थात् देवों के समुदाय से रम्य होता है और यह काव्य श्रृगांर, शान्त आदि सुरसों के अर्थ से रमणीक है। स्वर्ग सब प्रकार की विपत्ती के अभाव होने के कारण अभिगम्य होता है और यह काव्य भी कुत्सित पदों से रहित होने से आश्रय के योग्य है। स्वर्ग कल्पवृक्षों के समूह से सदा उल्लासयुक्त होता है और यह काव्य नाना प्रकार की कल्पनाओं की उड़ानो से उल्लासमान है। उत्तम काव्य के प्रकाशित होने पर खलजन भी मलिनवदन हो जाते हैं और उसके दोषान्वेषण में ही तत्पर रहते हैं। ऐसे लोग उलूक के सदृश होते हैं; क्योंकि दिन के प्रतिभा समान होने पर उलूक लोग मलिनता को प्राप्त होते हैं और दोषा (रात्रि) में अनुरक्त होते हैं।

---

1. वीरोदय 1/10, 3/3
2. वही 3/38
3. वही 3/13
4. वही 3/18
5. वही 4/19
6. वही 3/25
7. वही 2/18
8. वही 22/37
9. वही 22/38
10. वही 22/39
11. वही 22/40

देव अमृतपायी और अनिमेषनयन माने जाते हैं, अत: उनको तो काव्य रूप रसायन पान का अवसर ही नहीं है। अत: वे अमृतपान करते हुए भी मनुष्यता को नहीं पा सकते तथा जो बुद्धि विहीन हैं, ऐसे जड़ लोक भी काव्य रसायन का पान नही कर सकते। अनिमेष नाम मछली का है और पीयूष नाम जल का भी है। मछली अनिमेष होकर भी जल का ही पान कर सकते हैं, उसके काव्य-रसायन के पान की सम्भावना ही कहाँ है? तात्पर्य यह कि कवि काव्य रूप को पीयूष से भी श्रेष्ठ मानता है; क्योंकि इसके पान से साधारण भी मनुष्य सच्ची मानवता को प्राप्त कर लेता है।[1]

भले प्रकार कही गयी कविता हार के समान आचरण करती है। जैसे हार उत्तम गोल मोतियों वाला होता है, उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम वृत्त अर्थात् छन्दों मे रची गयी है। हार सूत्र (डोरे) से अनुगत होता है और यह कविता भी आगम रूप सूत्रों के सारभूत अधिकारों वाली है। हार को उदार सत्पुरुष कण्ठ में धारण करते है और इस उदार कविता को सत्पुरुष कण्ठस्थ करते है, ऐसी यह कविता समस्त लोक के कल्याण के लिये होवे।[2]

कविता आर्यकुलोत्पन्न भार्या के तुल्य है। जैसे कुलीन भार्या उत्तम वर्ष रूप सौन्दर्य की मूर्ति होती है, उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम वर्णों के द्वारा निर्मित मूर्ति वाली है। जैसे भार्या पदनिक्षेप के द्वारा शोभायमान होती है, उसी प्रकार यह कविता भी उत्तम पदो के न्यास वाली है। जैसे भार्या उत्तम अलङ्कारों को धारण करती है, उसी प्रकार यह कविता भी नाना प्रकार के अलङ्कारो से युक्त है। इस प्रकार यह कविता आर्य भार्या के समान मनुष्य के चित्त को अनुरंजित करने वाली है।[3]

वीरोदय पर पूर्ववर्ती ग्रन्थों का प्रभाव—वीरोदय के अध्ययन से विदित होता है कि कवि ने सैकड़ो ग्रन्थो का अध्ययन इसकी रचना से पूर्व किया था, यही कारण है कि इन रचनाओं का वीरोदय पर प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रकार के प्रभाव की किञ्चित् झांकी यहाँ प्रस्तुत है—

मेघदूत और वीरोदय—वीरोदय में महाकवि ज्ञानसागर जब कहते है कि उदार, गर्जनायुक्त एवं धीरे जाते हुए मेघ जिस कुण्डपुर की खाई के जल में प्रतिबिम्बित अपने रूप से हाथियो की शंका को उत्पन्न करते हुए शोभित होते है, तो वहाँ पर मेघदूत की याद आ जाती है, जहाँ कालिदास ने मेघ से हाथी के बच्चे के समान छोटे आकार को धारण कर दक्ष के क्रीड़ापर्वत पर बैठकर बिजली रूपी दृष्टि को घर के अन्दर प्रविष्ट कराने के लिये कहा है।

---

1. वीरोदय 1/22 2. वही 1/24 3. वही 1/27
4. गत्वा सद्यः कलभतनुतां शीघ्र सम्पातहेतोः। क्रीडाशैले प्रथम कथिते रम्यसानौ निषण्णः॥
   अर्हस्यन्तर्भवनपतिं कर्तुमल्पाल्पभासं। खद्योतालीविलसितानिभां विद्युदुन्मेषदृष्टिम्॥ मेघदूत उत्तर मेघ 21
5. विचारमात्रेण तपोभृदद्य पूषेव कल्ये कुहरं प्रसद्य॥ 12/41
6. प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुंनलिन्याः। गत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः॥
   मेघदूत—पूर्वमेध—42

वीरोदय के द्वादश सर्ग के 41वें पद्य में सूर्य के प्रसन्न होकर विचारमात्र से ही कुहरे को दूर करने का उल्लेख किया गया है। मेघदूत में सूर्य के कमलिनी के कमल रूप मुख से ओस रूपी आँसू को दूर करने के लिए लौटने का उल्लेख है।

मेघदूत में गंगा के स्वच्छजल में मेघ की छाया पड़ने पर संगम स्थान से भिन्न स्थान में गंगा यमुना के संगम की कल्पना कालिदास ने की है। वीरोदय में कहा गया है कि परम विशुद्धि को प्राप्त क्षत्रिय-बुद्धि महावीर और विप्रबुद्धि इन्द्रभूति अभूतपूर्व समागम हुआ, जैसे कि प्रयाग में गंगा जल का यमुना जल से संगम तीर्थ रूप से परिणत हो गया और आज तक उसका स्पष्ट रूप से उपयोग हो रहा है।

दोनों पद्य इस प्रकार है—

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्द्धलम्बी।
त्वं चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः।

संसर्पन्त्या सपदि भवतः स्रोतसिच्छायया सौ।
स्यादस्थानोपगतयमुना संघमेवाभिरामा॥

मेघदूत पूर्वमेघ-54

समागमः क्षत्रियविप्रबुद्धयोरभूदपूर्वः परिरब्धशुद्धयोः।
गाङ्गस्य वै यामुनतः प्रयोग इवासकौस्पष्ट तयो पयोगः॥

वीरोदय 14/47

अभिज्ञानशाकुन्तलम और वीरोदय—अभिज्ञान शाकुन्तल के चौथे अङ्क के एक प्रसङ्ग में शकुन्तला कहती है कि कर्मालनी के पत्ते की ओटः में छिपे हुए भी साथी चकवे को न देखने से व्याकुल यह चकवी चिल्ला रही है कि मैं दुष्कर कार्य कर रही हूँ। क्योंकि अपने प्रियतम से इतनी दूर होने पर भी मुझे कुछ नही हो रहा है। इस पर अनसूया कहती है कि सखी! ऐसा मत कहो। यह चकवी भी प्रिय (चकवे) के बिना दुःख के कारण अत्यधिक लम्बी प्रतीत होने वाली रात को व्यतीत करती है। आशा का बन्धन महान् भी वियोग को सहन करा देता है। वीरोदय महाकाव्य में भी चकवी के पति से वियुक्त होने का वर्णन किया गया है—

'कुण्डपुर के भवनों में लगे हुए अनेक नीलमणियों की प्रभासमूह से निरन्तर ही यहाँ पर रात्रि है, इस कल्पना से वापिका के तट पर बैठी हुई वह दीन चकवी दिन मे भी पति के संयोग से रहित होकर सन्ताप को प्राप्त होती है।

---

1. अभिज्ञानशाकुन्तल 4/16
2. सौधाग्रबहुनी लमणिप्रभाभिर्दोषो यितत्वमिह सन्ततमेव ताभिः।
   कान्ता प्रसङ्ग, रहिता खलु चक्रवाकी वापीतटेऽप्यहनि ताम्यति सा वराकी। वीरोदय 2/45
3. अभिज्ञान शाकु. 4/5

अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला को प्रकृति अनेक उपहार प्रदान करती है—

किसी वृक्ष के द्वारा हमें चन्द्रमा के समान शुभ्र माङ्गलिक रेशमी वस्त्र प्रकट करके दिया गया। किसी के द्वारा पैरों को रंगने योग्य महावर दिया गया। अन्य वृक्षों के द्वारा कलाई तक उठे हुए और निकलते हुए नए पल्लवों की स्पर्द्धा करने वाले वनदेवता के करतलों से आभूषण दिए गए।

वीरोदय के पंचम सर्ग में भगवान महावीर की माता प्रियकारिणी को देवियों द्वारा विभिन्न उपकरणों से मण्डित करने का अनेक पद्यों में वर्णन है। इन वस्तुओं में दर्पण, जल, उबटन, वस्त्र, अंजन, कमल, कर्णण्फिल, तिलक नुपूर, पुष्पहार, बाहुबन्ध, कङ्कण, मृदङ्ग, वीणा तथा मंजीरे, प्रसङ्गानुसार वर्णित है।

अभिज्ञानशाकुन्तल के षष्ठ अङ्क में धीवर कहता है—

शहजे किल जे विणिन्दिए ण हु दे कम्म विवज्जणीअए।
पशुमालणकम्मदालुणे अणुकम्पाभिदु एव्व शोत्तिए॥

अर्थात् निन्दित भी जो काम वस्तुत: वंशपरम्परा से प्राप्त है, उसके निश्चय ही नहीं छोड़ना चाहिए। दयाभाव से कोमल हृदय वाला श्रोत्रिय भी पशुओ की हत्या जैसे कर्म के कारण कठोर होता है।

शाकुन्तल के इसी प्रसङ्ग का मानों उत्तर देने के लिए वीरोदय में कहा है—

न चौर्यं पुनस्तस्करायास्त्ववस्तु गवां मारणं वा नृशंसाङ्गिनस्तु।
न निर्वाच्यमेतद्यत: सोऽपि मर्त्य:कुत: स्यात्पुनस्तेन सोऽर्थ: प्रवर्त्य:॥

16/20

यदि कहा जाए कि अपने पदोचित कार्य को करना मनुष्य का कर्तव्य है, तब तो चोर का चोरी करना और कसाई का गायों का मारना भी उनका पदानुसार कर्तव्य सिद्ध होता है, सो ऐसा नही समझना चाहिए, क्योंकि चोरी और हिंसा करना तो मनुष्यकाल का अकर्तव्य कहा गया है, फिर उन अकर्तव्यों को करना कर्तव्य कैसे माना जा सकता है? इसलिए मनुष्य को सत्कर्तव्य में ही प्रवृत्ति करना चाहिए, असत्कर्तव्य में नही।

मांस का खाना, निरपराध प्राणियो को मारना, दूसरे की स्वामित्व वाली वस्तु का अपहरण करना इत्यादि निन्द्य कार्य संसार में किसी भी प्राणी के करने योग्य नही है। अत: इन दुष्कृत्यों में प्रवृत्ति करने वाला क्यों ने पापगर्त में गिरेगा?

रघुवंश और वीरोदय—रघुवंश के द्वितीय सर्ग राजा दिलीप नन्दिनी का छाया के समान अनुगमन करते हैं—

स्थित: स्थितामुच्चलित: प्रयातां निषेदुषीमासनबन्धधीर:।
जलाभिलाषी जलमाददाना छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत्॥

रघुवंश 2/6

वीरोदय में राजा सिद्धार्थ का उनकी रानी प्रियकारिणी छाया के समान अनुगमन करती है—

छायेवसूर्यस्य सदाऽनुगन्त्री बभूर मायेव विधेः सुमन्त्रिन्।
नृपस्य नाम्ना प्रियकारिणीति यस्याः पुनीता प्रणयप्रणीतिः ॥

रघुवंश 3/15

हे सुमन्त्रिन्! इस सिद्धार्थ राजा की प्रियकारिणी इस नाम से प्रसिद्ध रानी थी, जो कि सूर्य की छाया के समान एवं विधि की माया के समान पति का सदा अनुगमन करती थी और जिसका प्रणय-प्रणयन अर्थात् प्रेम प्रदर्शन पवित्र था। अतः वह अपने प्रियकारिणी इस नाम को सार्थक करती थी।

रघुवंश के राजकुमार 'प्रजायै गृहमेधिनाम्' प्रजा अर्थात् सन्तानोत्पत्तिक के लिए गृहस्थ धर्म स्वीकार करते हैं तो वीरोदय के नायक महावीर प्रजा की सेवा के लिए ब्रह्मचर्य की आराधना करते हैं—

तदर्थमेवेदं ब्रह्मचर्यमाराधयाम्यहम् ॥ **वीरोदय** 8/43

कालिदास ने रघुवंश मे दिलीप और सुदक्षिणा के मध्य में विद्यमान नन्दिनी की उपमा दिन और रात्रि के मध्य मे विद्यमान सन्ध्या से दी है—

तदन्तरे सा विरराज धेनुः
दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या ॥ **रघुवंश** 2/20

महाकवि ज्ञान सागर ने सम्पत्ति और विपत्ति के बीच में रुचिकर मनुष्यता की कल्पना रात और दिन के मध्य स्थित सन्ध्या से की है—

विपन्निशेवाऽनुमिता भुवीतः सम्पत्तिभावो दिनवत्पुनीतः।
सन्ध्येव भायाद् रुचिरा नृता तु द्वयोरुपात्तप्रणयप्रभातुः ॥

वीरोदय 17/13

संसार में मनुष्य को सम्पत्ति का प्राप्त होना दिन के समान पुनीत है, इसी प्रकार विपत्ति का आना भी रात्रि के समान अनुमीत (अवश्यम्भावी) है। इन दोनों के मध्य में मध्यस्थ रूप से उपस्थित स्नेहभाव को प्राप्त होने वाले महानुभाव के मनुष्यता सन्ध्याकाल के समान रुचिकर प्रतीत होना चाहिए।

यहाँ यह स्मरणीय है कि कालिदास ने मेघदूत में सुख और दुःख को चक्रनेमिक्रमेण अवश्यम्भावी माना है। वे कहते हैं—

---

1. वीरोदय 5/9-17
2. वही 16/21

कस्यैकान्तं सुखमुपगतं दु:खमे कान्ततो वा।
नीचैर्गच्छत्युपरिच दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥

मेघदूत-उत्तरमेघ

कादम्बरी और वीरोदय काव्य—महाकवि बाणभट्ट ने जाबाली ऋषि के आश्रम का वर्णन करते हुए कहा है—'अत्र हि शाश्वतिकमपहाय विरोधमुपशान्तात्मार्नास्तर्यञ्चोऽपि तपोवन वसतिसुखमनुभवन्ति तथा हि एष विकचोत्पलवनरचनानुकारिणमुत्पतच्चारु चनद्रकशतं हरिणलोचन द्युति शबलमभिनव शाद्वलमिव विशति शिखिन: कलापमाहतो नि:शङ्क महि: । अर्थात् यहाँ पर भी अपना परम्परागत विरोध छोड़कर शान्त आत्मा वाले होते हुए तपोवन में रहने का सुख अनुभव करते है । जैसे कि यह धूप से व्याकुल सर्प खिले हुए कमलवन की रचना का अनुकरण करने वाले, सैकड़ो उठते हुए सुन्दर चन्द्रो वाले हिरण के नेत्रो की कान्ति के समान चितकबरे मोरों के समूह मे मानों ताजी हरी घास में ही नि:शङ्क होकर प्रवेश कर रहा है ।

वीरोदय में ग्रीष्मवर्णन के प्रसङ्ग मे इसी कल्पना का सहारा लिया गया है—

सन्तापित: संस्तपनस्य पादै: पथि व्रजन् पांशुभिरुत्कृदङ्ग:
तलोमयूरस्य निषीदतीति श्वसन्मुहुर्जिह्मगतिर्भुजङ्ग: ॥

वीरोदय 12/11

सूर्य की प्रखर किरणों से सन्ताप को प्राप्त होता हुआ, मार्ग मे चलती हुई उष्ण धूलि से अपने अङ्ग को ऊँचा उठाता हुआ, बार-बार दीर्घ शासन छोड़ता हुआ भुजंग कुठित गति होकर छाया प्राप्त करने की इच्छा से मोर के तले जाकर बैठ जाता है ।

शिशुपालवध और वीरोदय—शिशुपालवध मे नारद के आकाश मार्ग से आने पर 'सब और को फैलने वाला तेज नीचे की ओर गमन कर रहा है, यह क्या है, इस प्रकार लोगों ने व्याकुलतापूर्वक देखो[1] श्रीकृष्ण जी उनका स्वागत करने के लिए ऊँचे आसन से उठ गए ।[2] उन्होंने नारद से आने का कारण पूछा ।[3]

वीरोदय के पंचम सर्ग के प्रारम्भ मे भी बतलाया है कि भगवान महावीर के गर्भ में आने के बाद आकाश में सूर्य के प्रकाश को भी उल्लघंन करने वाला और उत्तरोत्तर वृद्धि को प्राप्त होने वाला महान् प्रकाश दिखायी दिया, जिसे देखकर 'यह क्या है ? इस प्रकार तर्क वितर्क लोगो के हृदय मे उत्पन्न हुआ । [4]इसके बाद श्री आदि देवताओ का वह प्रकाशमयी समूह लोगो के समीप आया । उसे आता हुआ देखकर राजा सिद्धार्थ खड़े होकर उन देवियो के अतिथि सत्कार की विधि मे उद्यत हुए ।[5]

1. पतत्यधो धाम विस्सारि सर्वत:, किमेतदित्याकुलमीक्षितं जनै: ॥ शिशुपाल वध1/2
2. जवेन पीठादुद तिष्ठदच्युत: ॥ शिशुपाल वध 1/12
3. गतस्पृहोऽप्यागमन प्रयोजनं वदेति वक्तुं व्यवसीयते यया ॥ शिशु 1/30
4. वीरोदय 5/1 5. वही 5/2

आप देव-लक्ष्मियों का मनुष्य के द्वार पर आगमन का क्या कारण है? यह वितर्क मेरे चित्त को व्याकुल कर रहा है, ऐसा उन सिद्धार्थ नरेश ने कहा[1]

श्रीमद्भागवद्गीता और वीरोदय—गीता में कहा है कि इस आत्मा को न तो शस्त्र काट सकते है, न अग्नि जला सकती है, न जल गीला कर सकता है, न वायु सुखा सकती है। वीरोदय काव्य में भी कहा है कि यह आत्म जल से कभी गीला नही होता, पवन के वेग इसे सुखा नही सकता और अग्नि इसे जला नही सकती, फिर यह जीव इस संसार मे अग्नि, जलादिक से क्यों व्यर्थ ही कष्ट की कथा को प्राप्त हो?

नैषधीयचरितम् और वीरोदय—नैषधीयचरितं में कहा गया है—

अधीतिबोधाचरण प्रचारणैर
दशाश्चतस्त्रः प्रणयन्नुपाधिभीः।

चतुर्दशत्वं कृतवान् कुतः स्वयं
न वेद्मि विद्यासु चतुर्दशस्वयम्॥

नै. च. 1/4

चौदह विद्याओं मे अध्ययन अर्थज्ञान, आचरण और अध्यापन (इन चार) प्रकार से चार अवस्थाएँ करते हुए इसने स्वयं चतुर्दशता कैसे कर दी, यह मैं नही जानता हूँ।

इस पद्य का प्रभाव वीरोदय के निम्नलिखित पद्य पर दृष्टिगोचर होता है—

एकाऽस्य विद्या श्रवसोश्च तत्त्वं सम्प्राप्य लेभेऽथ चतुर्दशत्वं।
शक्तिस्तथा नीतिचतुष्कसार मुदागताऽहो नवतां बभार॥

वीरोदय 3/14

इस सिद्धार्थ राजा की एक विद्या दोनों श्रवणों के तत्त्व को प्राप्त होकर चतुर्दशत्व को प्राप्त हुई तथा एक शक्ति भी नीति चतुष्क के सार रूप को प्राप्त होकर नवपने को धारण करती थी।

वीरोदय में नैषध के उपर्युक्त पद्य से प्रभावित एक अन्य पद्य भी है—

अधीतिबोधाचरणप्रचारैश्चतुर्दशत्वं गमिताऽत्युदारैः।
विद्या चतुः षष्ठिरतः स्वभावदस्याश्च जाताः सकलाः कला वा॥

वीरोदय 3/30

---

1. वही 5/3
2. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणिनैनं दहति पावकः। नैतंक्लेदयन्त्यापो न शोषयतिमारुतः॥
3. नात्माऽम्भसाऽऽर्द्रत्वमसौ प्रयाति न शोषयेत्तं भुवि वायुतातिः
   न वह्निना तप्तिमुपैति जातु व्यथा कथामेष कुतः प्रयातु॥ वीरोदय 12/23

नैषध में नल के तेज और यश के रहने पर ब्रह्मा चन्द्र और सूर्य को व्यर्थ समझकर उनकी कुण्डली बना देता है। वीरोदय में रानी प्रियकारिणी के मुख के सामने चन्द्रमा को व्यर्थ समझकर विधाता चन्द्रमा पर रेखा खींच देता है, जिसे लोग कलङ्क कहते हैं। दोनो पद्य इस प्रकार हैं—

तदोजसस्तद्यशसः स्थिताविमौ
वृथेति चित्ते कुरुते यदा यदा।

तनोति मानोः परिवेषकैतवात्
तदा विधिः कुण्डलनां विधोरपि॥

नैषधीयचरितम् 1/14

पूर्वं विनिमयि विधुं विशेष यत्नाद्विधिस्तन्मुखमेवमेषः।
कुर्वंस्तदुल्लेखकरीं चकार स तत्र लेखामिति तामुदारः॥

वीरोदय 3/""9

तत्त्वार्थ सूत्र वीरोदय—तत्त्वार्थसूत्र में प्रमाद के योग से किसी जीव के प्राणों का विनाश करना हिंसा कही गयी है। यही परिभाषा वीरोदय मे भी उल्लखित है।

तत्तवार्थ मे कहा है कि मायाचार तिर्यञ्च आयु के आस्राव का कारण है। थोड़ा आरम्भ और थोड़ा परिग्रह मनुष्य आयु के आस्रव का कारण है। वीरोदय में भी छल से पशुता और सन्तोष से मनुष्यपने का पाना कहा है—

सागरधर्मामृत और वीरोदय—पं. आशाधर कृत सागार धर्मामृत मे कहा है कि प्राणी के अङ्ग की अपेक्षा मांस और अन्न में समानता होते हुए भी धार्मिको के द्वारा अन्न खाने योग्य है, किन्तु मास खाने योग्य नही है, क्योंकि स्त्रीत्व रूप सामान्य धर्म की अपेक्षा स्त्री और माता मे समानता होने पर भी पुरुषों के द्वारा स्त्री भोग्य है, माता भोग्य नही है। इस दिषय में वीरोदयकार ने कहा है कि यदि कहा जाय कि मांस में और शाक पत्र में कौनसी विशेषता है ? क्योकि दोनो ही प्राणियो के शरीर के ही अङ्ग है, सो ऐसा कहने का वचन भी उपादेय नहीं है; क्योकि दोनो ही प्राणियों के शरीर के ही अङ्ग है, सो ऐसा कहने का वचन भी उपादेय नही है, क्योंकि गोबर और दूध से दोनो ही गाय-भैस आदि से उत्पन्न होते हैं, फिर मनुष्य दूध को ही क्यों खाता है और गोबर को क्यो नही खाता? इससे ज्ञात होता है कि प्राणिजनित वस्तुओं में जो पवित्र होती है, वह ग्राह्य है, अपवित्र नही अतः शाकपत्र और दूध ग्राह्य है, मांस और गोबर आदि ग्राह्य नहीं है।

---

1. प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपण हिंसा॥ त. सूत्र 7/13
2. प्रमादतोऽसुव्यपरोपणं यद्वधो भवत्येष सताभरम्यः॥ वीरोदय 16/14
3. माया तैर्यग्योनस्य, अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य॥ त. सूत्र 6/16-17
4. श्वभ्रं रूषा लुब्धकताबलेन कीटादितां वा पशुतां छलेन।
   परोपकारेण सुरश्रियं स सन्तोषतो याति नरत्वशंसः॥ वीरोदय 14य27

ज्ञानार्णव और वीरोदय—ज्ञानार्णव में कहा है कि यह चंचल चित्त रूपी बन्दर विषय रूपी वन में भ्रमता रहता है, जिस पुरुष ने इसको रोका, वश में किया, उसी के वाञ्छित फल की सिद्धि है[7] इसी विचार को वीरोदय में व्यक्त करते हुए कहा है कि हे आत्मन्! यदि तुम संयम रूप वृक्ष की सुरक्षा चाहते हो तो इस अपने मत रूप मर्कट को निराशा रूप सांकल से अच्छी तरह जकड़ कर बाँधो[8]।

आप्तमीमांसा और वीरोदय—वीरोदय के चतुर्थ सर्ग मे रानी प्रियकारिणा की उपमा आप्त मीमांसा से दी गई है—

अकलङ्कालङ्करा: सुभगे देवागमार्थमनवद्यम्।
गमयन्ती सन्नयत: किलऽऽप्तमीमांसिताख्या वा॥

वीरोदय 4/39

तुम मुझे आप्तमीमांसा के समान प्रतीत हो रही हो। जैसे समन्भद्र स्वामी के द्वारा रची गई आप्तमीमांसा अकलङ्क देव द्वारा रचित (अष्ठशती वृत्ति) से अलङ्कृत हुई, उसी प्रकार तुम भी निर्मल आभूषणों को धारण करती हो। आप्तमीमांसा सन्नय से अर्थात् सप्तभङ्गी रूप स्याद्वाद न्याय के द्वारा निर्दोष अर्थ को प्रकट करती है और तुम भी अपनी सुन्दर चेष्टा से निर्दोष तीर्थङ्करेदव के आगमन को प्रकट कर रही हो।

आप्तीमीमांसा का दूसरा नाम देवागम स्तोत्र भी है। कवि ने इस दूसरे नाम का भी यहाँ प्रयोग किया है। आप्तमीमांसा में एक कारिका है—

स त्वमेवासि निर्दोषो युक्तिशास्त्राविरोधिवाक्
अविरोधो यदिष्टं ते प्रसिद्धेन न बाध्यते॥

आप्तमीमांसा 6

हे भगवान्! पूर्वोक्त निर्दोष आवरण और अज्ञानादि से रहित सर्वज्ञ तुमही हो; क्योंकि आपके वचन युक्ति और शास्त्र के विरोध से रहित अविरोधी है। अविरोधी इसलिए है, क्योंकि कहा इष्ट तत्त्व (मोक्ष तथा मोक्ष का कारण, संसार तथा संसार का कारण) प्रसिद्ध प्रमाण से बाधित नहीं होता है।

इस कारिका का प्रभाव वीरोदय के निम्नलिखित पद्यों पर है—

मान्यं कुतोऽर्हद्वचनं समस्तु सत्यं यतस्तत्र समस्तु वस्तु।
तस्मिन्नसत्यस्य कुतोऽस्त्व भाव उक्ते तदीये न विरोधभाव:॥

वीरोदय 5/33

प्रश्न—अरहन्त जिनेन्द्र के ही वचन मान्य क्यों है?

उत्तर—क्योंकि वे सत्य हैं और सत्य वचन में ही वस्तु तत्त्व समाविष्ट रहता है।

---

1. सागारधर्मामृत 2/10   2. वीरोदय 16/23
3. ज्ञानार्णव 22/23   4. वीरोदय 11/43

प्रश्न—अर्हद्वचनों में असत्यपने का अभाव क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि उनके कथन में पूर्वापर विरोध भाव नही है।

प्रश्न—उनके वचनों मं अविरोधभाव क्यों है ?

उत्तर—क्योंकि उनके वचन विज्ञान से अर्थात् कैवल्य रूप विशिष्ट ज्ञान से प्रतिपादित होने के कारण सन्तुलित प्रभाव वाले हैं। अहो देवियो ! जो बातें केवल गतानुगतिकता (भेड़चाल) से की जाती है, उनका आचरण कल्याणकारी नही होता।

छहढाला और वीरोदय—छहढाला मे सम्यग्दृष्टि को गृहस्थ होते हुए भी जल से भिन्न कमल से समान गृह के प्रति निरासक्त कहा है। वीरोदय में ब्राह्मण का लक्षण कहा गया है—जैसे जल मे रहते हुए भी कमलिनी उससे भिन्न रहती है, इसी प्रकार संसार में रहते हुए भी जो अलिप्त रहे।

भगवती आराधना और वीरोदय—भगवती आराधना की 1549वीं गाथा मे कहा गया है कि रोहेडग नगर में अग्नि नामक राजा का पुत्र क्रौञ्च नामक वैरी के द्वारा शक्ति नामक आयुध से मारा गया और उसकी वेदना को सहकर उत्तम अर्थ को प्राप्त हुआ। इसी सम्पूर्ण कथा आराधना कथा प्रबन्ध,[1] आराधना कथा कोश आदि ग्रन्थो में दी गयी है। इसी कथा को लक्ष्य कर वीरोदयकार ने कहा—आराधना कथा कोश मे वर्णित कथा के अनुसार कार्तिकेय स्वामी इस भूतल पर पिता के द्वारा पुत्री से उत्पन्न हुए और उन्होंने ही यहाँ पर आचार्य पद की प्रतिष्ठा प्राप्त की। यह घटना देखकर जगत् एकनिष्ठ क्यों नहीं होगा ?[2]

प्रद्युम्नचरित औरा वीरोदय—वीरोदय के सप्तदश पर्व के 32 वे पद्य मे कहा गया है कि प्रद्युम्नचरित मे कहा है कि कुत्ती ने और चाण्डाल ने मुनिराज से श्रावकों के लिए बतलाये गए अणुव्रतादि बारह ब्रतों को धारण किया और उनका भली भाँती पालन कर सद्गति प्राप्त की है।[3] यहाँ प्रधुम्नचरित से तात्पर्य महासेन कृत प्रधुम्नचरित से है।

बृहत्कथाकोष और वीरोदय—हरिषेण कृत बृहत्कथा कोष मे कथाकं ९४ मे राज मुनिकी कथा है। उन मुनि ने पहले एक नर्तकी के साथ व्यभिचार किया और उससे एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पुन: एक कुम्मार की पुत्री के साथ व्यभिचार किया और उससे भी एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पीछे वह इन तीनो ही पुत्रो के साथ प्रायश्चित लेकर मुनि बन गया और अन्त मे वे चारों ही तपश्चरण कर मोक्ष गए। उसी हरिषेण बृहत्कथा कोश कथांक 74 में कथानक है कि (अहिंसा धर्म का पालन करने के

---

1. कथांक, 73
2. आराधनायां यदि कार्तिकेय: पिता सुतातोऽजानि भूतलेय:।
   स चेदिहाचार्य पद प्रतिष्ठा कोऽथो न हि स्याज्जगदेकतिष्ठ: (1 वीरोदय 17/20)
3. वही 17/32

उपलब्ध में) यमपाश चाण्डाल को राजा ने अपने आधे राज्य के दानपूर्वक अपनी लड़की उसे विवाह दी और उसकी पूजा की।[1]

आराधना कथा कोश और वीरोदय—सुदृष्टि सुनार का जीव अपनी व्यभिचारिणी स्त्री विमला के ही उदर से उत्पन्न हुआ, पीछे मुनि बनकर मोक्ष गया। उसके मोक्ष में जाने के लिए जाति का शाप कारण नहीं बना।[2] यह कथा आराधना कथाकोश में आयी है। बृहत्कथाकोश कथांक 153 में भी यह वर्णित है।[3]

पतञ्जलि महाभाष्य, श्लोकवार्तिक एवं वीरोदय—वीरोदय में कहा है कि जन भगवान् के स्याद्वाद रूप इस सार वाक्य को पतञ्जलि महर्षि ने भी अपने भाष्य में स्वीकार किया है तथा मीमांसा मत के प्रधान व्याख्याता कुमारिल भट्ट ने भी अपने श्लोकार्तिक में इस स्याद्वाद सिद्धान्त को स्थान दिया है।[7]महाभाष्य मे कहा गया है—

द्रव्य नित्य है और आकार यानी पर्याय अनित्य है। सुवर्ण किए एक विशिष्ट आकार से पिण्डरूप होता है। पिण्डरूप का विनाश करके उससे माला बनायी जाती है। माला का विनाश करके उससे कड़े बनाये जाते हैं। कड़ों को **तोड़कर उससे स्वस्तिक बनाए** जाते हैं। स्वस्तिकों को गलाकर फिर स्वर्णपिण्ड हो जाता है। उसके अमुक आकार का विनाश करके खदिर अंगार के समान दो कुण्डल बना लिए जाते हैं। इस प्रकार आकार बदलता रहता है, परन्तु द्रव्य वही रहता है। आकार के नष्ट होने पर भी द्रव्य शेष रहता ही है।

कुमारिल भट्ट का कहना है—जब स्वर्ण के प्याले को तोड़कर उसकी माला बनायी जाती है, तब जिसको प्याले की जरुरत है, उसका शोक होता है, जिसे माला की आवश्यकता होती है, उसे हर्ष होता है और जिसे स्वर्ण की आवश्यकता है, उसे न हर्ष होता है और न शोक। अत: वस्तु त्रयात्मक है।[5] यदि उत्पाद, स्थिति और व्यय नय होते तो तीन व्यक्तियों के तीन प्रकार के भाव न होते, क्योंकि प्याले के नाश के बिना प्याले की आवश्यकता वाले का शोक नही हो सकता। माला के उत्पाद के बिना माला की आवश्यकता वाले को हर्ष नही हो सकता और स्वर्ण की स्थिरता के बिना स्वर्ण

---

1. वही 17/38-39
2. वीरोदय 17/37
3. आराधरा कथाकोश-भाग 3 पृ. 37
4. वीरोदय 19/17
5. द्रव्यं नित्यम् आकृतिरनित्या। सुवर्ण कयाचिदाकृत्या युक्तं पिण्डो भवति, पिण्डाकृतिमुपमृद्य रुचकाः क्रियते रुचकाकृतिमुपमृद्य कटकाः क्रियन्ते, कटकाकृतिमुपमुद्य स्वस्तिकाः क्रियन्ते। पुनरावृत्तः सुवर्णपिण्ड· पुनरपरयाकृत्या युक्तः खादिरागांर सदृशे कुण्डले भवतः। आकृतिरन्या च अन्या च भवति, द्रव्यं पुनस्तदेव आकृत्युपमर्देन द्रव्यमेवावाशिष्यते। महाभाष्य- पस्पशाह्निक

इच्छुक को प्याले के विनाश और माला के उत्पाद में माध्यस्थ्य नहीं रह सकता। अतः वस्तु सामान्य से नित्य है।[1]

वीरोदय काव्य पर वर्तमान परिस्थिति का प्रभाव—वीरोदय के नवम सर्ग में कवियों ने भगवान् महावीर के समय की सामाजिक स्थिति का जो चित्रण किया है, ठीक वैसी ही परिस्थितियाँ आज भी विद्यमान हैं। आज गृहस्थ दशा में ही मुक्ति बतलाई जा रही है। उसी का यह फल है कि वे नर-कीट स्त्री पुत्रादि का आश्रय छोड़े बिना ही अब घर मे मर रहे है। आज कोई बिरला ही ऐसा व्रती पुरुष दृष्टिगोचर होता है, जो कि काम सेवा एवं कुटुम्बादि से मोह छोड़कर आत्मकल्याण करता हो।[2] आज बुढ़ापे में भी लोग नवोढ़ा के साथ संगम चाहते हैं। आज करुणा रहित हुए कितने ही निर्दयी लोग दुष्कामी सिह के हाथ में अपने उदर से उत्पन्न हुई बालिका को मृगी हो मृगी के समान स्वयं बेच रहे है।[3]

आज संसार मे मनुष्य अयोग्य वचनों से गुरुजनो का अपमान कर रहा है और पिता भी स्वार्थी बनकर अपने पुत्र का परित्याग कर रहा है। एक उदर से उत्पन्न दो सगे भाईयों मे आज परस्पर अकारण ही शत्रुता दिखाई दे रही है और स्त्री पुरुष मे कलह मचा हुआ है।[4] आज इस भूतल पर समस्त जन अपनी रोटी को मोटी बताने मे लग रहे है। कोई भी किसी अन्य की भलाई का विचार नही कर रहा है। आज तोयह स्वार्थपरायणता रूपी राक्षसी सारे मनुष्य लोक को ग्रस रही है।[5] आज स्त्री जब अपेन पति के सिर में सफेदी देखती है, तो उसे ही छोड़ने का विचार करती है। आज का मनुष्य भी किसी अन्य सुन्दरी को देखकर उसे शीघ्र बलात् पकड़ कर उसे सेवन कर रहा है।[6] आज जिस मार्ग से अपने वाञ्छत की सिद्धि होती है, संसार उसी मार्ग से जा रहा है, परलोक की कथा तो आज खलता-आकाशलता हो रही है। आज तो जगत् में निरन्तर सीची जाती हुई खलता (दुर्जनता) ही बढ़ रही है। आज का यह मानस स्वंय खीर खाने की इच्छा कराते हुए भी ऊसरों को चना खाने के लिए उद्यत देखकर उदर पीड़ा से पीड़ित दिखाई दे रहा है। दुःख है कि आज धरातल पर यह नाम मात्र से नर बना हुआ है।[7] अहो, यह देवतास्थली पशुओं की बलि को धारण कर रही है और श्मसानपने को प्राप्त हो रही है। उन मन्दिरो की देहली निरन्तर अतुल शक्ति से रंजित होकर यम स्थली सी प्रतीत हो रही है।[8]कहीं पर कोई सुरा पान करने में संलग्न है तो कही पर दूसरा मांस खा

---

1. वर्द्धमानकभंगे च रुचक· क्रियते यदाः तदा पूर्वार्थिनः शोकः प्रीतिश्चाप्युत्तरार्थिन· ॥ 21 ॥
   हेमार्थिनिस्तु माध्यस्थ्यं तस्माद वस्तु त्रयात्मकम्। नोत्पादस्थितिभभगानामभावेस्यान्मतित्रयम् ॥ 22 ॥
   न नाशेन बिना शोको नोत्पादेन बिनासुखम्। स्थित्या बिना न माध्यस्थ्य तेन सामान्यतित्याता ॥ 23 ॥
   (मीमांसा श्लोककार्तिक)
2. वीरोदय 9/6
3. वीरोदय 9/7
4. वीरोदय 9/8
5. वही 9/9
6. वही 9/10
7. वही 9/12
5. वही 9/13

खाकर अपने उदर को कब्रिस्तान बना रहा है। कहीं पर कोई मकान के किसी कोने में बैठा हुआ परायी स्त्री को आत्मसात् कर रहा है।[1] कहीं पर कोई पराये धन का अपहरण कर रहा है तो कहीं पर कोई अपने झूठ वचन को पुष्ट करने वाले के लिए उपहार दे रहा है। कहीं पर कोई हठात् पर-स्त्री को हर रहा है तो कहीं कोई अपनी उदर की पूर्ति के लिए अपनी जटा फैला रहा है।[2] आज लोग इस संसार में व्यर्थ कल्पना किए गए ईश्वर की सत्ता सिद्ध करने के लिए जैसी शास्त्रार्थ रूप लड़ाई लड़ रहे हैं, वैसी लड़ाई तो आज भूमि स्त्री और धनादि कारणों के लिए नही लड़ी जा रही है। यह कैसी विचित्र धारणा है।[3] इस दुर्मोच मोह का विनाश कैसे हो, लोग किस उपाय से उत्पथ त्याग कर सत्पथ पर आवे। कैसे इनमे परस्पर प्रेम की पवित्र भावना जागृत हो, यही मेरी चेतना है।[4] इस चेतना के माध्यम से कवि अपनी भावना व्यक्त कर रहा है।

महाकवि ज्ञानसागर महात्मा गांधी के सत्याग्रह आन्दोलन से प्रभावित थे। निम्न लिखित पद्य से यह बात स्पष्ट होती है—

शपन्ति क्षुद्रजन्मानो व्यर्थमेव विरोधकान्।
सत्याग्रह प्रभावेण महात्मा त्वनुकूलयेत्॥

वीरोदय 10/34

क्षुद्र जन्मा दीन पुरुष विरोधियो को व्यर्थ ही कोसते हैं। महापुरुष तो सत्याग्रह के प्रभाव से विरोधियों को भी अपने अनुकूल कर लेता है।

महात्मा पद से यहाँ महात्मा गांधी शब्द व्यञ्जित होता है।

कवि के समय दयानन्द सरस्वती के आर्य समाज का प्रभाव बढ़ रहा था। ईश्वरवाद को आधार बनाकर स्थान स्थान पर शास्त्रार्थ किए जाते थे। कवि ने ईश्वरवाद की आलोचना की है, किन्तु दयानन्द सरस्वती ने वेद का जो अहिसापरक अर्थ किया, उसकी प्रशंसा इस प्रकार की है—

स्वामी दयानन्दखस्तदीयमर्थं त्वहिंसापरकं श्रमी यः।
कृत्वाद्य शस्तं प्रचकार कार्यं हिंसामुपेक्ष्यैव चरेत्किलार्यः॥

वीरोदय 18/57

दयानन्द सरस्वती ने वेद का जो हिसापरक अर्थ किया उसे कवि ने समय का ही प्रभाव माना है। मनुष्य स्वप्न में भी जिस बात का विचार नही करता है, समय पाकर वही बात आसानी से सम्पन्न हो जाती है। यदि समय प्रतिकूल है तो मनुष्य निरन्तर प्रयत्न करे, तो भी उसे अभीष्ट फल की प्राप्ति नही होती है।[5]

---

1. वही 9/14   2. वही 9/15
3. वही 9/16   4. वही 9/17
5. स्वप्नेऽपि यस्य न करोति नरो विचारं   सम्पद्यते समयमेत्य तदप्यथाऽरम्।
कुर्यात्प्रयत्नमनिशं मनुजस्तथापि   न स्यात्फलं यदि फल प्रति कूलताऽऽपि॥ वीरोदय 18/58

कवि के समय में दिगम्बर जैनों में ब्रह्मचारी शीतल प्रसाद जी हुए, उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया था। कवि ने निम्न पद्य से उनके इस कार्य के प्रति आश्चर्य व्यक्त किया है—

विवर्णतामेव दिशन् प्रजास्वयं निरम्बरेषु प्रविभर्त्ति विस्मयम्।
फलोदयाधारहरश्च शीतल प्रसाद एषोऽस्ति तमां भयंकरः॥

वीरोदय 9/22

यह शीतल-प्रसाद अर्थात् शीतकाल का प्रभाव बड़ा भयंकरः है, क्योंकि यह प्रजाओं में विवर्णता को फैलाता हुआ निरम्बरों में विस्मय को उत्पन्न करता हुआ फलोदय के आधारभूत वृक्षो को विनष्ट कर रहा है।

यहाँ कवि ने अपने समय के प्रसिद्ध ब्र.शीतल प्रसाद जी की ओर व्यंग्य किया है, जो कि विधवा-विवाह आदि का प्रचार कर कवि के अनुसार लोगों में वर्णशंकरता को फैला रहे थे तथा दिगम्बर जैनों में अति आश्चर्य उत्पन्न कर रहे थे। कवि के अनुसार ये अपने कार्यों से लोगों को धर्म के फल स्वर्ग आदि की प्राप्ति के मार्ग मे रोड़ा अटका रहे थे।

कवि ने अपने समय के पण्डित दरबारीलाल 'सत्यभक्त' की विचार धारा को अनुचित बतलाया है। सत्यभक्त जी प्रारम्भ में जैन धर्म के मूर्द्धन्य विद्वानो में से थे, किन्तु बाद में सर्वज्ञ की विचारधारा तथा कुछ सामाजिक प्रसंगों के कारण उन्होंने 'सत्य समाज' नामक पृथक् सम्प्रदाय की स्थापना की। कवि का शीतवर्णन के प्रसंग में कहना है—

महात्मनां संश्रुत पादपानां पत्राणि जीर्णाति किलेति मानात्।
प्रकम्पयन्ते दरवारिधारा विभावसुप्रान्तमिता विचाराः॥

वीरोदय 9/34

इस शीतकाल में संश्रुत (प्रसिद्धि प्राप्त) वृक्षों के पत्र भी जीर्ण होकर गिर रहे है। ऐसा होने से ही मानों दर अर्थात् जरा सी जल की धारा लोगो को कँपा देती है तथा इस समय लोगो के विचार हर समय विभावसु (अग्नि के समीप बैठे रहने के बने रहते हैं।)

दूसरा अर्थ यह है कि इस समय प्रसिद्ध आर्षग्रन्थो के पत्र तो जीर्ण हो गए है, अतः उसका अभाव सा हो रहा है और लोग पं. दरबारीलाल की विचारधारा से प्रभावित हो रहे हैं। और विकारी विचारों को अंगीकार कर रहा है।

जातिवाद की निस्सारता—महाकवि ज्ञानसागर की विचारधारा जातिवाद के विषय में बड़ी उदार थी। वे प्राणिमात्र को धर्मपालन और धर्मोपदेश सुनने का अधिकारी मानते थे। वीरोदय का सत्रहवाँ सर्ग उनकी इस विचारधारा का पुष्ट प्रमाण है। उनके अनुसार जाति या कुल का गर्व करता व्यर्थ है? सभी मनुष्य अपनी जाति में अपने को बड़ा मानते हैं। मांस को खाने वाला ब्राह्मण निन्द्य हैं और सदाचारी होने से शूद्र भी वंद्य है। प्राणियों में सम्माननीय वसुदेव राजा ने अपने भाई उग्रसेन की लड़की देवकी से विवाह किया और उसके उदर से जगत्प्रसिद्ध और गुण समृद्ध श्रीकृष्ण नामके

नारायण का जन्म हुआ। वेश्या की लड़की अपने सगे भाई के द्वारा विवाही गयी ओर अन्त मे वह आर्यिका बनी। यह संसार ऐसा ही निन्दनीय है, जहाँ पर कि लोगों के परस्पर में बड़े विचित्र सम्बन्ध होते रहते हैं। इसलिए संसार से विरक्ति ही सारभूत है। आराधना कथा कोश में वर्णित कथा के अनुसार कार्तिकेय स्वामी इसी भूतल पर पिता के द्वारा पुत्री से उत्पन्न हुए और उन्होंने ही यहाँ पर आचार्य पद की प्रतिष्ठा प्राप्त की यह घटना देखकर जगत् एकनिष्ठ क्यो नहीं होगा? शिव नाम से प्रसिद्ध रुद्र की और वेद के संग्रहकर्त्ता पाण्डवों के दादा व्यास ऋषि की उत्पत्ति भी विचारणीय है। ऐसी दशा में जो कोई पुरुष जाति के अभिमान को प्राप्त होता है, उसके साथ बात करने में क्या तथ्य है?

यदि सभी प्राणी ज्ञान गुण से संयुक्त है, तब वस्तुतः अनादर के योग्य कौन रहता है? अर्थात् कोई भी नही। हॉ पापों में प्रवृत्ति करना अवश्य निन्दनीय है। जो कोई मनुष्यं उससे दूर रहता है, वही महान् कहा जाता है।[1] मैं उच्च वंश मे उत्पन्न हुआ हूँ, इस प्रकार के अभिमान से जो दूसरे का नाना प्रकार से तिरस्कार करता है, वह धर्म का स्वरूप नही जानता है, क्योंकि जैन धर्म तो सभी प्राणियों को केवल ज्ञान की शक्ति से सम्पन्न कहता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह गर्व से रहित बने और अभिमान से किसी का तिरस्कार न करे। पिता के पक्ष को वंश (कुल) कहते हैं और माता के पक्ष को जाति कहते हैं, इस विषय में सब एकमत है। यदि माता और पिता के प्रसंग से ही केवल जाति और कुल की व्यवस्था मानी जाय तो है विवेकवान् पुरुषों! इस विषय मे विचार करो कि माता और पिता इन दोनों की क्रिया क्या सर्वथा एंकरूप रहती है? आश्चर्य है कि कितने ही लोग मनुष्यों के समान गाय, भैंस आदि चौपायो मे, पक्षियो मे और वृक्षो मे क्षत्रिय आदि वर्णों की कल्पना करते हैं, किन्तु वे निराधार वचन बोलने वाले हैं, क्योंकि 'क्षत्रियाः क्षतत्राणात्' अर्थात् जो दूसरे को आपत्ति से बचावे, वह क्षत्रिय है, इत्यादि आर्षवाक्यों का अर्थ उनमे घटित नहीं होता है।

कुछ लोगों का कहना है कि वर्ण व्यवस्था वर्ण अर्थात् रूप, रंग के आश्रित है। शुक्ल वर्ण वाले ब्राह्मण, रक्त वर्ण वाले क्षत्रिय, पीत वर्ण वाले वैश्य और कृष्ण वर्ण वाले शुद्र है। यदि वर्ण व्यवस्था रंग पर प्रतिष्ठित है, तो फिर फिरंगी लोगों को ब्रह्मणपना प्राप्त होगा, क्योंकि वे श्वेत वर्ण वाले है। काले वर्ण वाले श्रीकृष्ण नारायण शूद्रपने का अतिक्रमण नही कर सकेगें। इसके अतिरिक्त ऐसा एक भी घर नही बचेगा, जिसमें अनेक वर्ण के लोग न हों, अर्थात् एक ही माँ बाप की सन्तान गोरी, काली आदि अनेक वर्ण वाली देखी जाती है, तो उन्हें भी आपकी व्यवस्थानुसार भिन्न भिन्न वर्ण का मानना पड़ेगा। एक माता के उदर से उत्पन्न हुए दशानन और विभीषण में परस्पर कितना अन्तर था? रावण रामचन्द्र का वैरी, क्रूर और काला था, किन्तु उसी का सगा भाई विभीषण राम का स्नेही, शान्त और गोरा था। एक ही जाति और कुल को मनुष्य की उन्नति या अवनति मे साधक या बाधक बताना भूल है। जाति या कुल विशेष की उन्नति या अवनति में साधक या बाधक बताना भूल है।

---

1. वीरोदय 17/17-22

जाति या कुल विशेष में जन्म लेने मात्र से कोई विशेषता कभी भी नही कहीं गयी है, किन्तु मनुष्य का आचरण ही उसके अभ्युदय का कारण है। यदि कहा जाय कि मूषक शूरवीरता की प्रवृत्ति करने पर भी सिंह के समान कभी भी समानता के मूल्य को नही प्राप्त हो सकता, इसी प्रकार शूद्र मनुष्य कितना ही उच्च आचरण करे, किन्तु वह कभी ब्राह्मणादि उच्चवर्ण वालों की समता नही पा सकता, सो यह कहना भी व्यर्थ है, क्योंकि मूषक और सिंह में तो मूल में ही प्राकृतिक भेद है, किन्तु ऐसा प्राकृतिक भेद शूद्र और ब्राह्मण मनुष्य में दृष्टिगोचर नही होता। अतएव जातिवाद को तूल देकर व्यर्थ खेद या परिश्रम से क्या लाभ है ?

क्षत्रिय कुल में जन्म लेकर भी अपनी पुत्री के साथ विषयसेवन करने और मनुष्य तक का मांस खाने वाले हुए हैं। इसी प्रकार भील जाति में उत्पन्न हुआ शूद्रपुरुष भी गुरुभक्त, कृतज्ञ और बाणविद्या का वेत्ता दृष्टिगोचर होता है।

प्रद्युम्नचरित में कहा है कि कुत्ती ने और चाण्डाल ने मुनिराज से श्रावको के लिए बतलाये गए अणुव्रतादि बाहर व्रतो का धारण किया और उनका भली भाँति पालन कर सद्गति प्राप्त की है। मूँग के दानों में घोरडू (नहीं सीझने वाला) मूँग को और पाषणकणो में हीरा आदि मणि को देखने वाला भी चक्षुष्मान् पुरुष जातीयता के इस प्रकार अभिमान को करता है, तो यह उसका कोई दुराग्रह ही समझना चाहिए। जिस बाँस में वंशलोचन उत्पन्न होता है, उसी बाँस मे मोती भी उत्पन्न होता है। जिस उग्रसेन महाराज के देवकी जैसी सुशील लड़की पैदा हुई, उसी के कंस जैसा क्रूर पुत्र भी पैदा हुआ। जन्म समय में सर्व जन शूद्र ही उत्पन्न होते हैं, विद्वान् पुरुष का लड़का भी अज्ञ देखा जाता है और अज्ञानी पुरुष का लड़का बुद्धिमान देखा जाता है। इसलिए मनुष्य को चाहिए कि वह जातीयता का अभिमान न करके गुणो के उपार्जन मे प्रयत्न करे। श्रीकृष्ण की माता देवकी ने अपने पूर्व जन्म मे धीवरी के रूप में क्षुल्लिका के व्रत ग्रहण किये थे और पद्मपुराण में वर्णित अग्निभूति और वायुभूति की पूर्वभव की कथा मे एक दीन पामर किसान ने भी मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। जैन धर्म की इस उदारता को देखो। अहिंसा धर्म का हरिषेण कथाकोष मे कथानक है कि अहिसा धर्म को पालन करने के उपलक्ष्य में यमपाश चाण्डाल को राजा ने अपने आधे राज्य के दानपूर्वक अपनी लड़की उसे विवाह दी और उसकी पूजा की। धर्म धारण करने मे या आत्मविकास करने में किसी एक व्यक्ति या जाति का अधिकार नही है। जो कोई धर्म के अनुष्ठान के लिए यत्न करता है, वह उदार मनुष्य ससार मे सबका आदरणीय बन जाता है। यद्यपि वर्तमान में सर्व जीवों की अवस्था तुल्य नही है, किन्तु आज हम संसार में जिस अवस्था को धारण कर रहे है, उस अवस्था को भविष्य मे दूसरे लोग भी धारण कर सकते हैं और जिस अवस्थामें आज दूसरे लोग प्राप्त है, उसे हम कल भी प्राप्त कर सकते हैं, क्योंकि कर्म के उदय से जीव की दशा कभी एक सी नही रह पाती, हमेशा परिवर्तन होता रहता है, इसलिए मनुष्य को अपनी वर्तमान उच्च जाति या कुलादि का गर्व नही करना चाहिए।[1]

1. वीरोदय 17/23–41

जो विद्युच्चर अपने जीवन के पूर्व समय में चोर रूप में निन्द्य था, वही पीछे जगत् का वन्दनीय महापुरुष बन गया और जो महापुरुषों का शिरोमणि चारुदत्त सेठ अपनी विवाहिता कुल स्त्री के सेवन की भी इच्छा नहीं करता था, वही पीछे वेश्यासेवी हो गया।[1] वह तुच्छ, यह महान् है, ऐसा सोचना व्यर्थ है, क्योंकि अपने कार्य में किसका गुण प्रतीत नहीं होता? कैंची से सुई छोटी है, पर सुई का कार्य कैंची से नहीं हो सकता, इसलिए छोटे और बड़े की कल्पना करना व्यर्थ है।[2] पाप को छोड़कर मनुष्य पवित्र कहला सकता है। कीट कालिमा से विमुक्त होने पर ही सुवर्ण सम्माननीय होता है। अत: पाप से घृणा करना चाहिए, पापियों से नही।[3]

महाकवि ज्ञानसागर का मानवतावादी दृष्टिकोण—जो दूसरे सज्जन पुरुष की बात का सम्मान करता है, उसकी छोटी से भी भली बात को बड़ी समझता है, वही वास्तव मे आज मनुष्यता को धार करता है। जो औरों को तुच्छ समझता है, उनकी ओर देखता भी नहीं है, स्वयं अहंकार में मग्न रहता है, क्या उसे कोई देखता है? नही। क्योंकि वह लोगों की दृष्टि से गिर जाता है। अत: दूसरों का सम्मान करना ही आत्म उत्थान का मार्ग है।[4] आत्महित के अनुकूल आचरण का नाम ही मनुष्यता है केवल अपने सुख में प्रवृत्ति का नाम मनुष्यता नहीं है। जैसी अपनी आत्मा है, वैसी ही दूसरे की भी समझना चाहिए। अत: विश्व भर के प्राणियों के लिए हितकारक प्रवृत्ति करना ही मनुष्य का धर्म है।[5] अपने से वृद्धजनों के साथ अनुकूल आचरण करें, अपने से छोटो को अपने समान तन-मन-धन से सहायता पहुँचावें, किसी भी मनुष्य को दूसरा न समझें। सभी अपना कुटुम्ब मानकर उनके साथ उत्तम व्यवहार करे। इस प्रकार उदार मनुष्य सच्ची मानवता प्राप्त करे।[6] दूसरे के दोष को कभी प्रकट न करे, उसके विषय मे मौन धारण करे, अपनी वृत्ति से दूसरे को पालन पोषण करे, दूसरे के गुणो का ईर्ष्या रोगादि से रहित होकर अनुसरण करे और इस प्रकार सच्ची मनुष्यता को प्राप्त हो।[7] जिस पुरुष ने मानवता का आश्रय लिया अर्थात् सत्कार किया, उसने मानवता का आदर किया तथा जिसने पूज्य पुरुषो मे अभिमान रहित होकर व्यवहार किया, उसने वास्तविक मानवता प्राप्त की।

—जैन मन्दिर के पास,
बिजनौर, (उ. प्र.)

□

1. वही 17/2
2. वही 17/3
3. वही 17/7
4. वही 17/5
5. वही 17/6
6. वही 17/8
7. वही 17/9
9. वही 17/12

सुदर्शनोदय महाकाव्य का आचार दर्शन

☐ डॉ. अशोक कुमार जैन

संस्कृत साहित्य के विकास में जैनाचार्यों का अप्रतिम योगदान रहा है। बीसवी शताब्दी के सुविख्यात निष्काम योगी दिगम्बर जैनाचार्य श्री विद्यासागर महाराज के शिक्षा एवं दीक्षागुरु बालब्रह्मचारी आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज द्वारा मौलिक साहित्य का संस्कृत एवं हिन्दी भाषा मे सृजन किया गया। उनके द्वारा रचित जयोदय, वीरोदय, सुदर्शनोदय, भद्रोदय एवं वीर शर्माभ्युदय जैसे काव्य आज भी विद्वज्जगत को आश्चर्य चकित करने वाले हैं। ये समस्त रचनायें जहाँ अपने प्रतिपाद्य का वर्णन करती है वहीं काव्य शास्त्रीय[1] दृष्टि से मूल्यांकन करने पर शतप्रतिशत खरी उतरती है। डॉ. हरिनारायण दीक्षित ने इसके काव्यो के वैशिष्ट्य के बारे में लिखा है "महाकवि ज्ञानसागर के ये काव्य समवेत रूप मे मानव समाज का समग्र कल्याणँ करने में अभी तक अनुपम ही हैं। इसके अलावा साहित्यिक दृष्टि से भी ये काव्य कालिदास, भारवि, माघ और श्री हर्ष के काव्यों से प्रतिस्पर्धा सी करते हुए प्रतीत होते हैं। कथावस्तु, चरित्र चित्रण, भावपक्ष, कलापक्ष वर्णन विधान परिवेश आदि की दृष्टि से ये काव्य अतीव सजीव और सहृदय हृदयाह्लादकारी हैं। इनसे संस्कृत साहित्य की अभूतपूर्व श्रीवृद्धि हुई है यह कहने में कोई अत्युक्ति नही होगी।"

आचार्य ज्ञानसागर द्वारा रचित सुदर्शनोदय काव्य भी महाकाव्य की श्रेणी मे है। सम्पूर्ण कथावस्तु 9 सर्गों मे निबद्ध है। इसमें काव्यसुलभ पूर्ण सौंदर्य के दर्शन होने पर भी मूल मे वैराग्य और उसके द्वारा मोक्ष लक्ष्मी की प्रापति ही कवि का प्रमुख प्रतिपाद्य तत्त्व रहा। इस महाकाव्य में सुदर्शन श्रेष्ठी का चरित्र वर्णित है तथा प्रसंगतः द्वीप, क्षेत्र, नगर, ग्राम, हाट, उद्यान, पुरुष, स्त्री, शिक्षु, कुमार, गृहस्थ एवं मुनि का वर्णन पूर्ण आलंकारिक काव्य शैली में किया गया है। कवि ने इस काव्य द्वारा लोगों को सदाचार एवं सहिष्णुता की शिक्षा दी है क्यो कि कहा गया है। "विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः" अर्थात् विकार के निमित्त मिलने पर भी जिनके मन में किञ्चिद भी विकार नहीं आता है वे ही धीर पुरुष हैं। सेठ सुदर्शन के सामने भी तीन बार विपत्ति आती है परन्तु वे अपने कर्त्तव्य पथ से किञ्चिद भी विचलित नही होते हैं। सुदर्शनोदय महाकाव्य के माध्यम से सम्यक् जीवन दर्शन और आदर्श जीवनपद्धति पर प्रकाश डालना भी कवि का मुख्य ध्येय रहा है। इसमे स्थान-स्थान पर आचार व्यवहार की शिक्षा दी गयी है। सत्पुरुषों की सन्तति को शरद ऋतु के समान सुहावनी बताते हुए वर्णन किया है—जैसे शरद ऋतु अनेक प्रकार के धान्यों को उत्पन्न करती है और मार्गों का कीचड़ सुखाकर गमनागमन का संचार आरम्भ करने वाली होती हे उसी प्रकार सन्तजनों की संतति अनेक प्रकारों से अन्य लोगो का उपकार करने के लिए तत्पर रहती है। इस ऋतु में जैसे

---

1. ज्ञानसागर के काव्य : एक अध्ययन की भूमिका पृष्ठ 7

मानसरोवर आदि जलाशयों का जल निर्मल लहरों से उल्लसमान रहता है उस प्रकार सज्जनों की सन्तति का मनोमन्दिर भी सदा उल्लासयुक्त रहता है। जैसे शरद ऋतु उदार एवं मेघसमूह का विनाश करने वाली होती है उसी प्रकार सत्पुरुषों की सन्तति भी उदय एवं लोगों के पापों का विनाश करने वाली होती है।[1]

कवि ने कवि के लिए सज्जनों एवं दुर्जनों के समागम को भी श्रेष्ठ बताया है सुकवि की गाय के साथ तुलना करते हुए लिखाहै सुकवि की वाणीरुप गाय को जीवित रहने के लिए जिस प्रकार सत्पुरुषों की दयारूप दूर्वा (हरी घास) आवश्यक होती है उसी प्रकार उसे प्रसन्न रखने के लिए दूर्वा के साथ खल (दुष्ट पुरुष और तिलकी खली) का समागम आवश्यक है क्योंकि खल के अनुशीलन से जैसे गाय निर्दोष (स्वस्थ्य) रहकर अधिक दुधारू हो जाती है उसी प्रकार दुष्ट पुरुष के द्वारा दोष दिखाने से कवि की वाणी भी निर्दोष और आनन्द वर्धक हो जाती है।[2]

सज्जनों की प्रवृत्ति सभी में समभाव धारण करती है। जैसे रात्रि और दिन के बीच रहने वाली संख्या सदा एक सी लालिमा को धारण किये रहती है उसी प्रकार सज्जनों की प्रवृत्ति भी सम्पत्ति और विपत्ति इस दोनो के मध्य समान भाव को धारण किये रहती है। वह एक में अनुराग और दूसरे में विराग भाव को प्राप्त नहीं होती है।[3] सज्जन और दुर्जन पुरुषों में स्वभावगत भिन्नता होती है जैसे चन्द्रमा की किरणें अन्धकार को मिटाने वाली और अमृत को बरषाने वाली होती है उसी प्रकार सुकवि की वाणी भी अज्ञान को हटाकर मन को प्रसन्न करने वाली होती है। फिरभी चकवा पक्षी के समान कुछ लोग उससे अप्रसन्न ही रहते हैं सो यह भले-बुरे लोगों का अपना-अपना स्वभाव है।[4] वे दुर्जनों की स्थिति का ईख से तुलना करते हुए कहा गया है है इक्षुवृन्द! तुम लोग भी तो दुर्जनों के सहाध्यायी हो क्यों कि जिस प्रकार दुर्जन लोग मायाचार की गाँठ को हृदय के भीतर धारण करते हैं उसी प्रकार तुम लोग भी अपने भीतर गड़ेरी की गाँठों को धारण करते हो। दुर्जन लोग बिना प्रयोजन ही अपने शिर को ऊँचा किये रहते हैं और तुम लोग भी अपने ऊपर फल जैसे निष्फल तुर्रा धारण

---

1. अनेक धान्यार्थकृत प्रचारा समुल्लसन्मानसबत्युदारा।
   सतां ततिः स्याच्छर दुक्तरीतिः सा मेघ संघात विनाशिनीति॥
   सुदर्शनोदयः प्रथमसर्गश्लो. 8
2. कृपाङ्कुरः सन्तु सतां यथैव खलस्य लेशोऽपि मुदे सदैव।
   यच्छीलनादेव निरस्तदोषा पयस्विनी स्यात्सुकवेश्च गौःसा॥ वही 1/9
3. यद्वा निशाऽहः स्थिति वद्विपति सम्पत्ति युग्मं च समानमति।
   सता प्रवृत्तिः प्रकृतानुरागा सन्ध्येव वन्ध्येव विभूति भागात्॥ सुदर्शनोदय 8/20
4. कवेर्भवेदेव तमोधुनाना सुधाधुनी गौ र्विधुवद्विधाना।
   विरज्यतेऽतोऽपि किलैक लोकः स कोकवत्कित्वरस्त्वशोकः॥ सुदर्शनोदय 1/10

किये हुए हो। दुर्जन लोग सबके साथ वैरभाव धारण करते हैं और तुम लोग भी अपने ऊपरी अग्रभग में उत्तरोत्तर नीरस भाव को धारण करते हो।[1]

इस काव्य में गृहस्थ धर्म का भी सम्यक प्रतिपादन किया गया है। हमारी संस्कृति 'अतिथिदेवो भव' में विश्वास रखने वाली है गृहस्थ धर्म में हमें अतिथि सत्कार को विशेष स्थान देना चाहिए जिस प्रकार जिनमती सेठानी निरन्तर अतिथियो के आदर सत्कार मे संलग्न रहती थी। नारी का शील ही आभूषण है तथा उसे मधुरभाषी होना चाहिए। गृहस्थ धर्म का सम्यक् परिपालन करते हुए भी सभी सुखी हो सकते हैं। सुख और दुःख दोनो ही प्रसंगो में भक्ति को कल्याण कारक माना गया है। इस महाकाव्य में सेठ वृषभदत्त ने पुत्र जन्म का समाचारसुनकर भक्तिपूर्वक जिनगृह जाकर जिनेन्द्रदेव का अभिषेक किया क्योंकि संसार मे प्रभु की भक्ति ही प्राणियों को कल्पलता के समान मनोवांछित फल दायिनी है।[2] सुकृतशाली सज्जनों की इष्टवस्तु स्वयं ही फलित होती है जैसे सेठ वृषभदास द्वारा सुदर्शन की चित्तवृत्ति को समझकर उसका उपाय सोचते ही सागरदत्त सेठ स्वयं उपस्थित हो गये।[3]

सुदर्शनोदय में धर्म और दर्शन का भी बहुत सुन्दर वर्णन प्राप्त होता है। चतुर्थसर्ग में सेठ वृषभदास ने ऋषिराज से धर्म के स्वरूप के बारे में जिज्ञासा प्रकट की तो उन्होने उसकी विशद विवेचना करते हुए कहा जो विश्व को धारण करे अर्थात् सारे जगत् का प्रतिपालन करे ऐसे शुद्ध वस्तुस्वभाव को धर्म कहते हैं। इस धर्म को धारण करने वाला पुरुष सारे विश्व को अपने समान मानता हुआ अन्य के कल्याण के लिए भद्रतापूर्वक अपने शरीर को अर्पण कर देगा किन्तु अपने देह की रक्षार्थ किसी भी जीव-जन्तु को कष्ट नही पहुँचाना चाहेगा। यह संसारी प्राणी अपने द्वारा ग्रहण किए हुए इस शरीर की और शरीर से सम्बन्ध रखने वाले माता-पिता पुत्रादि कुटुम्बी जन को अपना मानकर शेष सबको अन्य समझता है जिन्हे वह अपना समझताहै उन्हें इष्ट मानकर उनमे अनुराग करने लगता है और जिन्हे पर समझता है उन्हें अनिष्ट मानकर उनसे विरक्त होता है अर्थात् विद्वेष करने लगता है। इस प्रकार मोह के वशीभूत होकर यह जीव इस संसार मे एक श्रीर को छोड़ता है और दूसरे शरीर को ग्रहण करता है और इस प्रकार वह जन्म-मरण प्राप्त करता हुआ ससार मे दुःख भोगता रहता है। रंगभूमि के समान इस संसार मे यह प्राणी कभी पिता बनकर पुत्रपने को प्राप्त होता है, कभी पुत्र ही शत्रु बन जाता है और कभी शत्रु भी मित्र बन जाता है।[4] कर्मवरवशता के इस रहस्य को नही

---

1. सग्रन्थितां निष्फलमुच्छिरवत्नं वैरस्य भाव दधदग्रतस्त्वम्।
   इक्षो सदीक्षोऽस्यसत. सतेति महीभृता पीलनमेवमेति॥ वही 1/16
2. प्रमदाश्रुभिराप्लुतोऽमित. जिनयं चाभिपिषे च भक्तितः।
   प्रभुभक्तिरुताङ्गिनां भवेत्सुलदा कल्पलतेव यद्भवे॥ वही 3/5
3. इति तच्चिन्तनेनैवाऽऽकृष्टः सागरदत्तवाक्।
   स्वयमेवाऽऽजगामाहो फलतीष्ट सतां रूचिः॥ वही 3/43
4. वही चतुर्थ सर्ग श्लोक 6-9

समझता हुआ यह अज्ञानी मोही जीव वृथा ही इष्ट वस्तु के संयोग में प्रसन्न होता है और अनिष्ट वस्तु के संयोग से दु:खी होता है। ज्ञानी जीव अपनी आत्मा को शरीर से भिन्न सत्, चित्, और आनन्द-स्वरूप जानकर उसमे ही तल्लीन रहता है और शरीर एवं शरीर के सम्बन्धी कुटुम्बादि को पर जानकर उनसे विरक्त हो उन्हें छोड देता है। जीव के तामस भाव को अधर्म कहा गया है। यह तामस भाव ही संसार की परम्परा को बढ़ाने वाला है और इससे विपरीत जो सात्विक भाव है उसे धर्म कहा गया है। यह सात्विक भाव ही मुक्ति का प्रधान कारण है।[1]

धर्म बुद्धि वाले जीव की कौन सहायता नही करता।[2] निरपराधी और अपराधी की रक्षा के बारे मे बताया है 'किसी भी प्राणी की हिंसा न करे' इस आर्ष वाक्य को धर्म के विषय मे प्रमाण मानते हुए अपराधी जीवों की भी यथाशक्ति रक्षा करनी चाहिए। फिर जो निरपाध है उनकी तो विशेषकर रक्षा करना चाहिए।[3] सदा उत्तम वचनो को कहना चाहिए, दूसरे के मर्मच्छेदक और निन्दापरक सत्य वचन भी न कहे, किसी की बिना दी हुई वस्तु को न लेवे और अपनी उन्नती को चाहने वाला पुरुष दूसरे का उत्कर्ष देखकर मन मे असहनशीलता (जलन-कुढ़न) का त्याग करे।[4] दूसरे कि शय्या अर्थात् पुरुष पर-स्त्री के और स्त्री पर-पुरुष के सेवन का त्याग करे और पर्व मे दिनों में पुरुष अपनी स्त्री का और स्त्री अपने पुरुष का सेवन न करे। सदा अनाभिष भोगी रहे अर्थात् मांस को कभी भी न खावे किन्तु अन्न भोगी और शाकाहारी रहे एवं वस्त्र से छने हुए जल को पीवे।[5]

मद-मोह (नशा) उत्पन्न करने वाली मदिरा, भांग, तम्बाकू आदि नशीली वस्तुओं का सेवन न करे, वृद्ध जनो की आज्ञा शिरोधार्य करे और अपनी भलाई को चाहते हुए दूसरों की भलाई का भी ध्यान रखे।[6]

जब सुदर्शन निर्दोष सिद्ध होताहै तब राजा उनसे क्षमा याचना करता है उस समय जितेन्द्रिय सुदर्शन के द्वारा कहे गये वचन सभी को प्रेरणा प्रदान कर मोक्ष का पथ प्रशस्त कराते है। वे राजा को सम्बोधित करते हुए कहते है कि हे राजन् इस घटना से मेरे मन में जरा सा भी विकार नहीं है। कि आपने ऐसा क्यो किया मै तो सदा ही एकान्त रूप से यह विचार करता रहता हूं कि इस लोक मे न

---

1. वही 4/10-12
2. धर्माम्बुवाहाय न क: सयक्षी। वही 4/22
3. मा हिंस्यात्सर्वभूतानीत्यार्षं धर्मे प्रमाणयन्।
   सागसोऽप्यङ्गिनो रक्षेच्छक्त्या किन्नु निरागस:॥ वही 4/41
4. प्रशस्त वचन ब्रूयाददत्तं नाऽऽददीत च।
   परोत्कर्षासहिष्णुत्वं जह्याद्वाञ्छन्निजोन्नतिम्॥ वही 4/42
5. न क्रमेतेतर-तल्प सदा स्त्रीयञ्च पर्वणि।
   अनामिषाशनीम्याद्वस्त्रपूतं पिबेज्जलम्॥ वही 4/43
6. नयदाचरण कृत्वा गृह्णीयाय् वृद्धशासनम्।
   परमप्यनुगृह्णीयादात्मेन पक्षपातवान्॥ वही 4/44

कोई किसी का स्थायी शत्रु है और न मित्र हो। अज्ञानी मनुष्य व्यर्थ ही किसी को मित्र मानकर कभी हर्षित होता है और कभी किसी को शत्रु मानकर शोक में गिरता है। इस संसार में लोग स्वार्थ साधन के भाव से मित्र बन जाते है और यदि स्वार्थ सिद्धि संभव नहीं हुई तो शत्रु बन जाते हैं यह तो संसार का नियम है इसमें कोई आश्चयर्य की बात नहीं। श्रीमती महारानी जी मेरी माता है औरश्री मान् महाराज मेरे पिता हैं यदि आप लोग मेरे ऊपर रुष्ट हों तो इसमें मेने पूर्वोपार्जित पापकर्म का उदय ही प्रतिकूलता का कारण है। इसलिए वास्तव मे मद, मात्सर्य आदि दुर्भाव ही जीवो के यथार्थ शत्रु हैं और उन दुर्भाव को जीतने के लिए बुद्धिमान मनुष्य को धैर्ययुक्त होकर प्रयत्न करना चाहिए। यह उपाय ही जीव की वास्तविक मुक्ति का आज सर्वोत्तम मार्ग है। इस जगत् में जीवों के सुख और दु:ख अपने ही द्वारा किये गये कर्म के योग से प्राप्त होते है। जिस प्रकार मिश्री का आस्वादन करने पर मुख मीठा होता है और मिर्च खाने वाले का मुख जलता है।[1]

देवदत्ता को सम्बोधित करते हुए मुनिराज सुदर्शन कहते है कि अपने पूर्वोपार्जित, कर्म का फल जीव को प्राप्त होता है अन्यथा किसी को सुख या दु:ख देने के लिए कौन पुरुष समर्थ हो सकता है। मनुष्य दर्पण में अपने स्वच्छ मुख को देखकर प्रसन्न होता है और नलिन मुख को देखकर दु:खी होताहै तो उसमें दर्पण का क्या दोष है? इसी प्रकार दर्पण के समान बाह्य निर्मित्त कारण को पाकर पुण्य कर्म के उदय से सुख प्राप्त होने पर यह संसारी जीव सुखी होता है और पाप कर्म के उदय से दु:ख प्राप्त होने पर दु:खी होता है तो इसमे निमित्तकरण का क्या दोष है? यह तो अपने पुण्य और पाप कर्म का ही फल है। इसलिए शिष्ट पुरुष का कर्त्तव्य है कि वह निमित्त कारण को बुरा-भला न कहे। हाँ अपनी बुरी चेष्टा से वह दूसरे के लिए कदाचित भी दुर्निमित्त न। अतएव मनुष्य के लिए जो कर्म अपने लिए अरुचिकर हो उसे वह दूसरो के लिए भी आचरण न करे। जैसे सूर्य के लिए उछाली गयी धूलि अपने ही सिर पर आकर पड़ती है उस तक तो वह पहुँचती ही नही। अपने मन, वचन और काय की सबके लिए सरल रखे तथा आकुलता को दूर करने के लिए सन्तोषपने को धारण करे। जीव की बाहिरी वस्तु मे जो इच्छा होती है वस्तुत: वही पीड़ा है उसे पाने की इच्छा का नाम दु:ख है। उस इच्छा के दूर होने पर ही जीव को सुखमयी स्थिति प्राप्त होती है। उसे पाने के लिए किसी प्रयत्न की आवश्यकता नही होती। अज्ञानी जीव इच्छित वस्तु का उपयोग करके इच्छा को शान्त करना चाहता है, किन्तु कुछ काल के पश्चात् वह इच्छा दुगुनी होकर के आ खड़ी होती है। अत: इच्छा की पूर्ति करना सुख प्राप्ति का उपाय नही है, किन्तु इच्छाको उत्पन्न नही होने देना ही सुख का साधन है। भोग और उपभोग रूप विषयों के सेवन से तो इच्छा रूप ज्वाला और भी अधिक दारूण रूप से प्रज्जवल्लित होती है। अग्नि में क्षेपण की गयी लकड़ियो से क्या कभी अग्नि शान्ति को प्राप्त होती है? अतएव सदा आनन्द की प्राप्ति के लिए महाभागी पुरुष इच्छा की निर्वृत्ति करे और त्याग भाव का ही आश्रय लेवे।[2]

---

1. वही 8/15-19
2. वही नवम सर्ग श्लोक 33-40

जैन दर्शन में स्याद्वाद का विशिष्ट स्थान है उसका वर्णन करते हुए कवि ने लिखा है कि जिस प्रकार 'कथाचित दिह्न से युक्त स्याद्वाद के द्वारा जैन धर्म प्राणीमात्र का कल्याण करने वाली अर्थयुक्त वाणी का संस्कार करता है।

इस प्रकार सुदर्शनोदय महाकाव्य आचार दर्शन का महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। कथावस्तु की सरलता तथा प्रतिपादन शैलो शैली की विशिष्टता से व्यक्ति पर सदाचार का अमिट प्रभाव पड़ता है। धर्म के मर्म का निदर्शन बड़ी ही सुन्दरता के साथ कवि ने प्रस्तुत किया है।[1]

—जैन विद्या विभाग

जैन विश्व भारती संस्थान

लाड़नू (राज.)

□

---

1. गिरमर्थयुतामिव स्थितां ससुतां संस्कृरुते स्म तां हिताम्।
न ततो मृदुगन्धतोमतः जिनधर्मों हि कथञ्चिदित्यतः॥ वही 3/12

दयोदय काव्य का वैशिष्ट्य:

☐ —डॉ. अजित कुमार जैन

नमोऽस्तु 'ज्ञानं' च अयं ज्ञान मूलम।
ज्ञानं च पुज्येत् ज्ञान वर्द्धनम्॥

ज्ञानान्न ऋते विनशति भावशूलम्।
विद्या-सुधाभ्याम् हेतुश्च ज्ञानम्॥

दया धर्म का मूल है। जब ज्ञान मे दयोदय होता है, तभी अभ्युदय का मार्ग खुलता है। आचार्य ज्ञानसागर द्वारा प्रणीत 'दयोदय' काव्य संस्कृत भाषा मे निबद्ध साहित्य की चम्पू काव्य विद्या से सम्बन्धित है। इस विषय मे स्वय कवि ने अपनी कृति मे पदे-पदे उल्लेख किया है—

'दयोदय पदे चम्पू प्रबंधे'[1]

काव्य शास्त्रीय दृष्टि से चम्पू काव्य लक्षण आचार्यो ने प्रतिपादित किए है। [2] सारत:, चम्पू काव्य गद्य-पद्य में मिश्रित रचना है। श्री वैकटाध्वरि ने गद्य-पद्य के मिश्रण को द्राक्षा एवम् मधु के समान' 'काव्य गुणादर्श' मे कहा है। इन लक्षणो का सफल निर्वाह समीक्ष्य कृति मे प्राप्य है।

इस ग्रन्थ मे, मृगसेन धीवर की पुराण प्रसिद्ध कथा को चयन कर 'दया धर्म का मूल है' इस सार्वभौमिक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है। इसमे वर्णित कथा हरिषेणाचार्य द्वारा विरचित वृहत्कथाकोष में, आचार्य सोमदेव कृत यशस्तिलक चम्पू काव्य मे, एवम् ब्रह्मचारी नेमीदत्त कृत आराधना कथा कोष मे उपलब्ध है।

आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज ने अपने मुनि पद मे विभूषित होते हुए इस कृति का प्रणयन करने का प्रयोजन एवं कथास्रोत का विवेचन भी कर दिया है। स्वय यह स्वीकार किया है कि यह कथा सार पूर्ण परपरा से प्राप्त है।[1] प्रयोजन के विषय मे आचार्य ने दो हेतुओ को प्रस्तुत किया है। कहा है[2]—

---

1. मुनि ज्ञानसागर : दयोदय— पृष्ठ 66/श्लोक 3
2. आचार्यदंडी : काव्यादर्श—"गद्य-पद्यमयीकाचिच्चम्पूरित्यभिधीयते"
   हरिदास भट्टाचार्य—"चमत्कृत्य पुनाति सहस्रायाम् विस्मीकृत्य प्रसादयति चम्पू"
   आचार्य महेन्द्र: काव्यामुखासन: 'गद्यपद्यमयी सांकोच्छ्वास:'

1. मुनि ज्ञान सागर : दयोदय : पृष्ठ 3/काव्य 7
2. वही : पृष्ठ 150/ काव्य 39
   'अहिंसाया फलं विश्व समक्षमिति वर्तते।
   यदास्वाधामरत्वं द्रागनुयान्तु मनीषिण:॥'

अर्थात् 'हिंसा परमोधर्मः' ही विश्व का एक धर्म है। मैंने अंहिसा का फल संसार के समक्ष स्पष्ट करके दिखाया है। द्वितीय हेतु के रूप मे यह कथन कियाहै कि विषय वासना से बचने के लिए मेरे द्वारा यह नूतन छंदोवद्ध रचना की गई है।

इस प्रकार कवि ने इस ग्रंथ में अहिसा धर्म की प्रधानता एवं इस व्रत को धारण करने से उत्पन्न फल का वर्णन प्रमुखता से किया है। अन्य ग्रंथों में उपलब्ध कथा से भिन्न मौलिक उद्‌भावनऐं भी कवि ने की है। ये कथानक में भी एवं पात्र नामों में भी दृष्टिगोचर होतीं है।

संक्षिप्त कथासार इस प्रकार है—

उज्जैन नगरी में मृगसेन धीवर था। एक दिन मुनि महाराज से अहिंसा धर्मोपदेश सुन कर उसने आंशिक अहिंसाव्रत धारण किया। धीवरी बहुत क्रोधित हुई, घर से निकाल दिया। दोनों का मरण हुआ। उसी नगर में, धनपाल सेठ व धनश्री सेठानी के 'सोमदत्त' नामक पुत्र मृगसेन का जीव हुआ और धीवरी उसी नगरी में गुणपाल सेठ व गुणश्री सेठानी के 'विषा' नामक पुत्री उत्पन्न हुई।

सोमदत्त का पालन-पोषण बहुत अभाव मे हो रहा था। गुणपाल का मुनिमहाराज ने पुत्री 'विषा' के लिए 'सोमदत्त' का विवाह होना बताया। गुणपाल ने सोमदत्त को पूरे कथासार मे कई बार मार डालने का उपक्रम रचाः किन्तु हर बार जीवित बच गया। उसका विवाह भी 'विषा' के साथ सम्पन्न हुआ। कालक्रम से, गुणपाल व गुणश्री का स्वयं के रचे षडयंत्र से ही मरण होता है।

एक दिन राजा वृषभदत्त ने मंत्री से गुणपाल का वृतान्त जाना और सोमदत्त से मिलने की इच्छा की। सोमदत्त से मिलन हुआ तथा अपनी पुत्री गुणमाला का पाणिग्रहण राजा ने सोमदत्त के साथ किया।

सोमदत्त अपनी दोनो पत्नी सहित सुख से समय बिताने लगे। एक बार मुनि महाराज को तीनों ने आहार-दान किया। तदनतर, मुनि महाराज ने धर्मोपदेश दिया। प्रभावित होकर, सोमदत्त ने मुनिपद धारण किया। विषा ने आर्यिका दीक्षा ली। बंसतसेन नामक वैश्या ने भी भोगों को निस्सार जानकर आर्यिका व्रत लिया अपने-अपने तपश्चरणानुसार, सोमदन्त सर्वार्थसिद्धि नामक स्वर्ग पहुंचा और विषा-वसंतसेना भी अपने तपयोग्य स्वर्ग गई।

मंगलकामना के साथ ग्रंथ का प्रणयन पूर्ण होता है।

कथानक-नियोजन :—उपर्युक्त संक्षिप्त कथा को अपनी विद्वत्ता एवं कल्पना से संवार कर कवि ने ग्रथ का रूप प्रदान किया है। समग्र ग्रंथ का विभाजन इस प्रकार है—

प्रथम लम्ब : दो मुनिराज का वार्तालाप

द्वितीय लम्ब : दो मुनिराज का वार्तालाप

तृतीय लम्ब : गोविन्द ग्वाला को पुत्र प्राप्ति

चतुर्थ लम्ब : सोमदत्त-विषा-विवाह प्रसंग

पंचम लम्ब : महाबल मरण प्रसंग

षष्ठ लम्ब : गुणपाल मरण प्रसंग

सप्तम लम्ब : राजकुमारी विवाह, उपसंहार

कथानक में नटकीयता विद्यमान है। ग्रंथ में पात्रों के स्वगत कथन प्राप्य है।[1] कथानक का प्रारम्भ कौतूहल वर्द्धक है, रोचक है। कथानक के विकास मे संवाद शैली संयुक्त है।[2] पाठक घटनाओं का सजीव अंकन पाता है। कथानक सुखात है।

मंगल सूचक काव्य इस प्रकार है[3] -

भूपो भवेन्नीति समुद्रसेतुः।
राष्ट्रं तु निष्कंटक भावमेतु॥

मनाङ्नहि स्याद्भय विस्मयादि।
लोकस्य चित्तं प्रभवेत प्रसादि॥

दिशेदेतादृशीं दृष्टिं श्रीमान्वीर जिन प्रभुः।
तंत्र मेतत् पठेन्नर्म शर्म धर्म लभेत भूः
॥

उक्त काव्य की प्रत्येक पक्ति के प्रथम अक्षर को मिलाने से 'भूरामलोदितं'[4] पद प्राप्त होता है, जिससे इस ग्रंथ के प्रणेता का नाम और उसका विद्वता का परिचय प्राप्त हो जाता है।

पात्र-संयोजन :—कवि ने इस कृति मे बहुत अधिक पात्रो की सृष्टि नही की है। गिने-चुने पात्र हैं, जिनके चरित्र को सम्यक्रीतेन सवारने व सजाने का पर्याप्त अवसर कवि को प्राप्त हुआ है।

इस ग्रथ मे, नायक सोमदत्त व नायिका विषा के रूप मे है। इनके ही पूर्वभव मृगसेन स धीवरी के रूप में चित्रित करते हुए कथानक का श्रीगणेश हुआ है। अन्य आनुषंगिक पात्रो यथा - ग्वाला व पत्नी, सेठ गुणपाल व सेठानी गुणश्री, वसंतसेना, राजा, पुत्री गुणमाला - के सयोजन से कथा में प्रवाह एवं चमत्कार उत्पन्न हुआ है। सभी पात्र अवसरानुसार, अपनी-अपनी भूमिका में रत दिखाये गये है। कवि को पात्र संयोजना व चरित्र चित्रण मे पूर्ण सफलता मिली है।

---

1. मुनि ज्ञान सागर · दयोदय : मातग का कथन- पृष्ठ 58/गद्य, गुणपाल का कथन- पृष्ठ 68/गद्य, पृष्ठ 74/गद्य, पृष्ठ 95/गद्य, चाण्डाल कथन - पृष्ठ 97/गद्य।
2. वही : प्रमुख सवाद : गुरु -शिष्य सवाद, धीवर-धीवरी संवाद, गुणपाल-गुणश्री संवाद आदि।
   नायक सोमदत्त व नयिका विषा का पूर्ण उत्कर्ष दिखाया है। भारतीय परपरानुसार मंगल कामना करते हुए, ग्रंथ की इति श्री कर दी गई है।
3. मुनि ज्ञान सागर : दयोदय · पृष्ठ 151/काव्य 1 और 2.
4. मुनि ज्ञान सागर के गृहस्थ पद का नाम 'भूरामल' है।

दयोदय के आख्यान :– कवि के अध्ययन एवं विद्वता के सूचक अन्य-अन्य आख्यान इस कृति में सर्वत्र प्राप्त होते हैं। इन लघु-आख्यानों से काव्य में जहां एक ओर रोचकता बढ़ी है वही दूसरी ओर पाठक को सीधा ही प्रभावित करने की क्षमता का परिचय मिल जाना है। इन आख्यानों के माध्यम से कवि ने जटिल दार्शनिक भ्रांति को निर्मूल किया है एवम् काव्य में संप्रेषणीयता गुण में श्रीवृद्धि की है। जिससे पाठक सम्मोहित होता चला जाता है।

दिगम्बर मुनियों को 'नास्तिक' एवं 'वेदवाह्न्य' धीवरी से कहलवाकर मृगसेन द्वारा परिहार कराते हुए कवि के गहन अध्ययन सूचक वेदों से उपनिषदो से, पुराणो से अनेक प्रसंग प्राप्त होंते हैं।[1] इन उद्धरणों से नग्नत्व एवं जैन दर्शन के श्रमणों की प्रामाणिकता को भली भांति पुष्ट कर दिया गया है।

कुटुंम्ब पालन के प्रसंग मे 'भिखारी-भिखारिन' का संवाद आख्यान रूप में प्राप्त प्राप्त होता है। जिसमें संदेश है कि कुटुम्ब पालन में उचित-अनुचित का विचार अवश्य करना चाहिए। जो अपने द्वारा करने योग्य कार्य को छोड़कर दूसरों के द्वारा करने योग्य कार्य को करता है वह शीघ्र नाश को प्राप्त होता है। इस विषय मे धीवरी द्वारा वानर का आख्यान प्राप्त होता है।

उपाय द्वारा असंभव भी संभाव्यता को प्राप्त होता है। इस विषय मे, सेठ गुणपाल द्वारा सिंह व खरगोश की रोचक कथा को स्थान दिलाया है। इनके अतिरिक्त, धर्मशाला पालक का आख्यान, सोमशर्मा की पत्नी का आख्यान, गीदड़ का आख्यान आदि भी प्राप्त है।

उपरोक्त लघु कथा प्रसंगों से कथानक मे प्रवाह, प्रभाव, रोचकता बढ़ी है तथा पात्रों की चरित्राभिव्यंजकता भी स्पष्ट हुई है।

---

1. मुनि ज्ञान सागर : दयोदय : द्वितीय लम्ब
   श्रमण प्रशंसा में - ऋग्वेद अध्याय 6/30
   ऋग्वेद मंडल 1 अध्याय 15/ सूक्त 94
   श्रमण स्वरूप की पुष्टि में—
   अथर्ववेद/ जाबालोपनिषद्/षष्ठसूत्र
   नग्नता विषयक प्रसंग में—
   यजुर्वेद/ 19वां अध्याय/ 14 मंत्र
   नारद पारिवाज्योपरिषद् मैत्रेयोपनिषद्/अध्याय 3/19
   तुरीयोपनिषद्, संन्यासोपनिषद्।
   वही विषय, पुराणग्रंथों से—पदमपुराण/भूमिकाण्ड/अध्याय 65
   स्कंधपुराण/प्रभासखंड/ अध्याय 6
   अनिष्ट नेमि का वर्णन—अथर्ववेद/काण्ड 7/अ. 8/सूक्त 85
   मार्कण्डेय पुराण, कूर्म, वायु, अग्नि, 20/9/163
   विष्णु, स्कंध एवं शिवपुराण/ 25/19

कवि की प्रतिभा :—इस कृति के अनुशीलन से कवि का वृद्धि चातुर्य, विलक्षणता, काव्य प्रतिभा, गहन अध्ययन, भावों की विशदता, शैली की लाक्षणिकता, भाषा की विशालता एवं मौलिक सोच-समझ का परिचय प्राप्त होता है।

कवि ने नये-नये आदर्श स्थापित कर दिखाये है, जिनके प्रयोग से पाठक उन्मुक्त कंठ से प्रशंसा करने को विवश हो जाता है। मेरा अभिमत है कि इन आदर्शों की अभिव्यक्ति अन्यत्र दुर्लभ है, यथा[1]

माता = संभोजयेत्सम्प्रति सैव माता।

पिता = संभालयेत्सोऽस्तु पिता।

पुत्र = पुपुषुरात्मानमसौ व पुत्र·।

नारी[2] = नारी नामार्द्धमंगम्

= न आरि

पड़ौसी[3] = समये तुससमायान्ति भवन्ति पार्श्ववर्तिनः

महाराज[4] = जनता सतत प्रपालयस्तु महाराजः

प्रजा[5] = पितुश्चरणयो. प्रजा

आजीविका[6] - आसमन्ताज्जीवनम्

दयोदय में लोक व्यवहार.—इस कृति की उपदेयता इस कारण और बढ़ गई है कि इसमे कवि ने लोक व्यवहार के प्रमुख पहलुओ का सूक्ष्म एव हृदयग्राही विवेचन प्रस्तुत किया है।

कवि ने कहा है कि सशपथ कथन की विश्वसनीयता एव प्रमाणिकता बढ जाती है। कारण से ही कार्य की उत्पत्ति होती है। संसार मे पैसे के बल से सब कार्य सिद्ध हो जाते है। स्वार्थ का ही संसार है।

कवि ने बालक के गुण गिनाये है—विनयवान, चतुर, लगनशील, प्रत्युत्पन्नमति, आदि। दुर्जन मनुष्य सांप के सदृश अन्य को कष्ट ही देता है। दूसरो को सुखी देखकर उसके पेट मे शूल होता है। दगाबाज ऊपर से मीठा बोलता है, किन्तु वह विश्वास योग्य नही है।

---

1. मुनि ज्ञानसागर : दयोदय : पृष्ठ 66/पद्य 11
2. वही पृष्ठ 109
   वही —पृष्ठ 126
3. मुनि ज्ञान सागरः दयोदयः पृष्ठ 115
4. वही पृष्ठ 126
5. वही—पृष्ठ 127
6. वही—पृष्ठ 41

राजा व प्रजा के व्यवहार का विवेचन गुणपाल व गोविंदा की मित्रता, सपत्नी के रूप में विषा व गुणमाला का व्यवहार आदि का निन्दर्शन प्राप्त होता है।

ग्रहस्थ के प्रमुख कर्त्तव्य के रूप में अतिथि सत्कार कहा है। पुरुषार्थ महत्ता का वर्णन प्राप्त होता है। 'धर्म' पुरुषार्थ को प्रधान कहा है। परोपकार, सत्संगत्ति आदि का महात्म्य भी विवेचित हुआ है। कवि के अनुसार, मनुष्य में 'दृढ़ संकल्प' गुण सर्वोपरि है। जिसके वंचन की प्रतीति नहीं वह सच्चे अर्थों में मानव नहीं है। मेरा अभिमत है कि यह ग्रंथ लोक व्यवहार का पवित्र आकार है।

कवि की बहुज्ञता :—कवि का बहुज्ञ होना प्रमाणित है। कवि को वेदों, उपनिषदों, पुरोणो ज्योतिषशास्त्र, स्वास्थ्य विज्ञान, मनोविज्ञान आदि का व्यापक ज्ञान था। ऐसा इस कृति से पूर्णतः स्पष्ट होता है।

ज्योतिष विषयक आस्थान की अभिव्यक्ति पदे-पदे प्राप्य है। विषा- विवाह के प्रसंग मे महाबल का कथन है कि अक्षय तृतीया, शुभ लग्न, वृहस्पतवाद, रोहिणी नक्षत्र का शुभमुहूर्त सर्वथा विवाह हेतु प्रशस्त है। वर के गुण इस प्रकार कहे हैं—

सुशीलत्वं विनीतत्वं विद्या समवयस्कता।
औदार्य रूपमारोग्यं दृढ़त्वे पटुवाक्यता॥

स्वास्थ्य विज्ञान के ज्ञान का परिचय ग्वाले की पत्नी के कथन 'न यौवन दूर्निन प्रसव पीड़ा' से मिलता है। धीवरी के इंतजार मे 'तरणतरलोचना' उपेक्षा भावाभिव्यक्ति में—"सःसाधुः वचना ग्रहस्था" से पात्रों की मानसिकता का परिचय मिलता है।

दयोदय की दार्शनिकता :—दयोदय काव्य का प्रारम्भ ही "कत्रे स्वय कर्म फलेदिहातः समास्ते गर्ते खनकस्य पातः"[1] से हुआ है। इस समग्र कृति में जैन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्त 'अहिंसा भूतानां जगति विदित ब्रह्म परमम्' की प्रतिष्ठापना ही दृष्टिगोचर होती है। जैन दर्शन के प्रति—'अर्द्दत्मतानुयायी वेद बाह्य है' जैसे एकांतिक एवं सकीर्ण विवाद का निराकरण वेदो के उद्धरणो से ही कर दिया गया है। धीवर और धीवरी के वार्तालाप के निश्चय (धर्म) और व्यवहार (शरीर) का प्रकरण उठाया गया है। ससार शरीर से विरक्ति व संवेग परक दृष्टिकोण व्यक्त किया है।[2] जीवो के परिणाम क्षण-क्षण में बदलते रहते हैं। कर्मानुसार ही फल प्राप्त होगा।[3] इस प्रकार, काव्य के दार्शनिक चितन स्पष्ट होता है।

नारी चित्रण :—दयोदय में वर्णित नारी चित्रण के प्रसंग से कवि की विद्वता का परिद्रश्य स्पष्ट होता है। कवि ने नारी के मांसल सौंदर्य, अंग लावण्य, यौवन-निरुपण आदि बाह्य चित्रण को स्थान नही दिया है, अपितु आतंरिक सद्गुणो के प्रगटन में रुचि दिखाई है।

---

1. मुनि ज्ञान सागर : दयोदय : पृष्ठ 3
2. वही : पृष्ठ 44/26-27
3. वही : पृष्ठ 118/9

नारी वही सम्मान पाती है जो पति के समान गुणधर्मिणी हो।[1] नारी चंचला नहीं अपितु एक जगह रहने वाली प्रशस्त है। नारी की क्रोधावस्था अतिदारूण है।

भाषा-शैली :—पद्य में सहज-सरल सरस लालिहत्यपूर्ण भाषा का प्रयोग है तो पद्य में दुरुह, क्लिष्ट, समास बहुला, भाषा का प्रयोग किया है। पद्य भाग को पढ़ने सक: वाणभट्ट की कादम्बरी की याद ताजा हो जाती है।[2] भाषा में पद मे भी, नाद सौन्दर्य चित्रात्मकता, अभिनव शब्द प्रयोग हैं। कृति में संवाद शैली, आलंकारिक शैली है। आचार्य के पूर्ण पांडित्य का परिचय प्राप्त होता है।

रस :—अवसरानुकूल, प्राय: सभी रसो का परिपाक समुपलब्ध है। विवाह-प्रसंग, गुणश्री के वर्णन में श्रृंगार, गुणपाल, महाबल मरण मे करूण, सोमदत्त के बालवर्णन में वात्सल्य, अन्यत्र शांतरस की मुख्यता का प्रगंटन होता है।

छंद-अलंकार :—प्राय: पद्यभाग में प्रमुखत: अनुष्टुप वंशस्थ का प्रयोग भी यत्र तत्र है। अर्थालंकारों का प्रयोग यथा-उपमा, रुपक, उत्पेक्षा, विरोधाभास, संदेह, आदि प्राप्य है।

उपयुक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दयोदय काव्य एक सफल कृति है जिसमें आचार्य की विद्धता प्रतिभा, कला, अनुभूति, अभिव्यक्ति अर्मद का 'सम्यक्' प्राप्त होता है।

--20/151 A; बेगम डोयढ़ी,
धूलियांज, आगरा-3 (उ.प्र.)

□

1. मुनि ज्ञानसागर : दयोदय : पृष्ठ 7/16
2. वही : पृष्ठ 46/गद्य, 62/गद्य, 74, गद्य।

समुद्रदत्त चरित्र का काव्यशास्त्रीय अध्ययन

☐ (प्रो.) डॉ. प्रभाकर शास्त्री

राजस्थान प्रान्तान्तर्गत सीकर जनपदीय **'राणोली'** ग्राम में लब्ध-जन्मा श्री सुखदेव श्रेष्ठी के पौत्र एवं श्री चतुर्भुज के पुत्र श्री भूरामल जी ही हमारे चरितनायक आचार्य ज्ञानसागर है, जो अपने समस्त 5 सहोदरों में विलक्षण प्रतिभा के धनी एवं जन्मजात जिज्ञासु होने के साथ-साथ धार्मिक विचार सम्पन्न पुरुष थे। उनके जिवन चरित्र किं वा व्यक्तित्व का गंभीर अध्ययन करने पर यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि यह किसी अलौकिक ज्ञान सम्पन्न आत्मा का आविर्भाव था, जो अपने पूर्वजन्म में पुरुषार्थ चतुष्टय में से तीन का तो पूर्णतः निस्तारण कर चुकी थी, परन्तु 'मोक्ष' की उसे सम्यक् प्राप्त नहीं हो पाई थी। उसी अधूरी कामना की पूर्ति के लिए इस दिव्य एवं महान् गुणगरिमा युक्त संयमी अन्तरात्मा को राणोली ग्राम में जन्म लेना पड़ा। दस वर्ष की अवस्था में पिता की मृत्यु होना, बाल्यावस्था में ही गृहस्थी न होते हुए भी गृहस्थ का भार होना, परन्तु परिस्थितियों का मुकाबला करते हुए किञ्चद् मात्र भी विचलित न होना, अपनी अध्ययन व ज्ञान प्राप्ति की कामना को निरन्तर बनाये रखना, वाराणसी गमन, उच्च शिक्षा ग्रहण, जैन ग्रन्थों को प्रकाशित करने की दृढ़ धारणा ब्रह्मचर्य व्रत का अंगीकरण एवं आत्मकल्याणार्थ काव्य निर्माण करने की दृढ़ कामना की अन्ततः पूर्ति करना उनके अनेक जन्मों मे उपार्जित पुण्यों का ही परिणाम कहा जा सकता है।

आचार्य ज्ञानसागर जी का कर्तृत्व—

बाल्यकाल से ही चिन्तनशील एवं ज्ञानार्जन के प्रति सजग, आत्मकल्याणार्थ उत्कृष्ट ग्रन्थों के सर्जन की प्रबल इच्छा को परिपूर्ण करने के लिए कृत संकल्प आचार्य ज्ञानसागर जी ने कुल 22 ग्रन्थों की रचना की। इनमें संस्कृत भाषात्मक ग्रन्थों की संख्या 8 है तथा शेष 14 ग्रन्थ हिन्दी भाषा में उपलब्ध है। संस्कृत ग्रन्थों को भी साहत्यिक एवं दार्शनिक विद्या की दृष्टि से दो भागों में विभक्त कर सकते हैं। साहित्यिक ग्रन्थों मे 4 महाकाव्य है तथा एक चम्प काव्य और एक मुक्तक रचना। दो ग्रन्थ दार्शनिक विद्या से संबद्ध है। इन्हें इस प्रकार प्रस्तुत कर सकते हैं—

संस्कृत भाषात्मक ग्रन्थ

साहित्यिक — दार्शनिक

(अ) महाकाव्य (ब) चम्पूकाव्य (स) मुक्तक 1. प्रवचनसार

1. जयोदय	1. दयोदय	1 .मुनिशतक	2. सम्यक्त्व सारशतक
2. वीरोदय			
3. सुदर्शनोदय			
4. श्री समुद्रदत्त चरित्र			

आचार्य श्री ज्ञानसागर जी के 21 वें निर्वाण दिवस (7 जून, 74 ई.) पर समायोजित हुए विद्वद् गोष्ठी में मैं उनकी रचना—**श्रीसमुद्रदत्त चरित्र** का काव्यशास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत करनेका प्रयास कर रहा हूँ। मैं इस गोष्ठी के समायोजकों के प्रति धन्यवाद समर्पित करता हूँ जिन्होंने मुझे यहाँ उपस्थित होकर अपने विचार प्रस्तुत करने का अवसर प्रदान किया।

समुद्रदत्त चरित्र का कथासार—

नव सर्गात्मक इस महाकाव्य के प्रथम सर्ग मे श्री पद्म खण्ड नामक नगर के निवासी सुदत्त नामक वैश्य की कथा है,[1] जिसकी पत्नी का नाम सुमित्रा है। इनके पुत्र का नाम भद्रमित्र था,[2] जिसे उसके मित्रो ने जीवनयापन हेतु देशाटन व रत्नद्वीप जाने की सलाह दी। इस विषय में वे एक कथा भी सुनाते है। कथा द्वितीय सर्ग से प्रारम्भ होती है। कथा में बतलाया गया है कि विजयार्द्ध पर्वत के उत्तर में अलका नगरी है, जिसमें महाकच्छ नामक राजा था, जिसके दामिनी नामक महारानी से प्रियगुंश्री नामवाली राजकुमारी ने जन्म लिया था।[3] ज्योतिषयो ने यह भविष्यवाणी की थी कि इसका विवाह स्तम्बगुच्छके महाराज ऐरावण के साथ सम्पन्न होगा। तदनुसार प्रयास किया गया और ऐरावण की स्वीकृति पर उसे स्तम्बगुच्छ ले जाना निश्चित हुआ। मार्ग मे वज्रसेन नामक एक युवक ने राजा से विवाह का प्रस्ताव रखा, परन्तु सूचना मिलते ही ऐरावण मे वहाँ पहुंच कर वज्रसेन को परास्त कर प्रियंगुश्री से विवाह कर लिया।[4] वज्रसेन ने निराश होकर जिन दीक्षा ले ली। एक बार वह स्वम्बगुच्छ गया तो वहाँ लोगो ने उसे डडो से पीटा। उसने क्रुद्ध होकर तपस्या के प्रभाव से उस नगर को जलाकर राख बना दिया और स्वय भी जल कर मर गया। उसे नरक की प्राप्ति हुई, क्योकि उसने दूसरो के लिए निश्चित वस्तु पर अधिकार करने की कामना की थी।[5]

(तृतीय सर्ग)

मित्र की कथा से प्रभावित भद्रमित्र ने पिता देशाटन व विदेशगमन की आज्ञा चाही, बहुत आनाकानी के बाद उसे आज्ञा मिली और उसने रत्नद्वीप पहुंच कर सात रत्न प्राप्त किये। वहाँ से वह सिहपुर पहुंचा, जहाँ सिहसेन राज्य करता था। उसकी पत्नी का नाम रामदत्ता था तथा मंत्री का नाम 'श्रीमूर्ति' था, राजा उसे 'सत्यघोष' नाम से पुकारता था, क्योकि उसने अपनी सत्यवादिता से राजा को प्रभावित कर रखा था[6] भद्रमित्र की भेट भी इसी श्रीमूर्ति से हुई। उसने अपने सातो रत्न उसके पास निक्षिप्त कर वह अपने माता-पिता को लिवाने श्रीपदम् खण्ड नगर आया। सिहंपुर लौटकर भद्रमित्र ने सत्यघोष (श्रींमूति) से अपने सातो रत्न मार्गे, परन्तु उसने स्पष्ट निषध कर दिया और भद्रमित्र को पागल

घोषित कर बाहर निमाल दिया। उसने राजा के पास भी गुहार की, परन्तु उसने भी अपने मंत्री के प्रति लगाये गये आक्षेपों को असत्य माना। भद्रमित्र निराश नहीं होता है, वह 6 मास तक वृक्ष पर चढ़कर सत्यघोष की कीर्ति की निन्दा करता है तथा उसकी प्रतिष्ठा नष्ट होने का शाप देता है। उसके विलाप को रानी ने अनेक बार सुना है और अन्त में उसने राजा को बाध्य किया है कि वह वास्तविकता का पता लगावे। रानी ने सत्यघोष को शतरंज खेलने के लिए आमंत्रित किया और रानी ने उससे यज्ञोपवीत, छुरी और मुद्रिका तीनों वस्तुयें जीत ली। दासी को भेजकर रानी ने मंत्री की पत्नी से रत्नों की पोटली मंगवा ली।

(चतुर्थसर्ग)

राजा ने उन रत्नों को अन्य रत्नों मे मिलाकर भद्रमित्र की परीक्षा ली परन्तु उसने अपने सातों रत्न ही चुन लिये।[7] राजा ने भद्रमित्र को सत्याचरण के कारण नगरश्रेष्ठी बना दिया। अपदस्थ मंत्री ने आत्महत्या कर ली। मरने के बाद वह सर्प बन गया।

भद्रमित्र ने आसनाभिधान वन में जाकर वरधर्म नामक मुनिराज के दर्शन किये और उनके उपदेश से वह अपनी सम्पत्ति का दान करने लगा, इस वृत्ति से उसकी माता रूष्ट रहने लगी और एक दिन उसने प्राण त्याग दिये। मरने के बाद वह व्याघ्री बन गई। उसने एक दिन भद्रमित्र को खा डाला। दानी भद्रमित्र ने अपने पुण्यों के कारण सिंहसेन राजा व रानी रामदत्ता के पुत्र के रूप में जन्म लिया। इसका नाम सिंहचन्द्र रखा गया। इसके छोटे भाई का नाम पूर्णचन्द्र था।

मरने के बाद सर्प बने सत्यघोष ने एक दिन राजा को डस लिया और वह मरकर अशनिघोष नामक हाथी बना।[8] सर्प भी मरकर चमरमृग बना। रानी ने राजा के मरने के बाद आर्यिका धर्म स्वीकार कर लिया। सिहचन्द्र ने पूर्णाविधि नामक मुनि से दीक्षा ग्रणह कर मुनिव्रत ले लिया युवराज पूर्णचन्द्र राजा बन गया और भोग विलास में लिप्त हो गया। आर्यिका रामदत्ता से यह सब सहन नहीं हुआ और उसने मुनि पूर्णाविधि से इसका कारण जानना चाहा। मुनि बने सिंहचन्द्र ने कहा कि पूर्णचन्द्र को उसके पूर्वजन्म का वृत्तान्त ज्ञान होने पर ही वह धर्माचरण के लिए प्रयत्नशील होगा। उपचार बताकर सिहंचन्द्र मुनि ने उसके पूर्व जन्म की कथा सुनाना प्रारम्भ किया। कथा इस प्रकार है—भारत क्षेत्र के कौशलदेश के मध्य में 'वृद्धानामक ग्राम है। उसमें मृगायण ब्राह्मण व उसकी पत्नी मधुरा रहता थे। उनकी पुत्री वारुणीथी। इधर मृगायण मरकर अयोध्या की रानी सुमित्रा की हिरण्यवती नाम की पुत्री के रूप में उत्पन्न हुआ। उसका विवाह पोदनपुर के राजा पूर्णचन्द्र के साथ हुआ। मृगायण ब्राह्मण की पत्नी मधुरा ने पूर्णचन्द्र की पुत्री के रूप मे जन्म लिया। ब्राह्मण पुत्री वारूणी नेपूर्णचन्द्र के रूप में जन्म लिया था। पूर्णचन्द्र भद्रबाहु नामक श्रीगुरु के पास जाकर मुनि बन गया। भद्रमित्र इन्हीं के पास मुनि रूप में रहा। दान्तमति आर्यिका के पास उसकी माता भी आर्यिका बन गई। सिंहचन्द्र ने बताया कि राज सिंहसेन मर कर अशनिघोष हाथी बन गया। वह जब सिंहचन्द्र को मारने आया तो उसने उसे आत्मोद्धारक व्रत करने का उपदेश दिया। वह व्रत करने नदी के

किनारेगया और कीचड़ मे फंस गया। उसने समाधि ले ली। अशनिघोष सर्प बने सत्यघोष के काट जानेपर सहस्रार स्वर्ग में श्रीघर नामक देव हो गया। अशनिघोष हाथी के मस्तिष्क से मोती और दांत निकालकर एक व्याध ने उन्हें धनमित्र सेठ को बेच दिये। सेठ ने उन्हें राजा पूर्णचन्द्र को दे दिया।

(पंचम सर्ग)

सिंहचन्द्र से पूर्णचन्द्र के पूर्वजन्म की कथा सुनकर आर्यिका रामदत्त ने पूर्णचन्द्र के पास जाकर सारा वृतान्त उसे सुना दिया। राजा पूर्णचन्द्र भगवान् अर्हन्त का पूजन करते हुए सद्गृस्थ हो गया। रामदत्ता आर्यिका ने योग समाधि द्वारा शरीर छोड़ा तथा स्वर्ग पहुंच कर सोलह सागर की आयुवाले भाष्कर देव के रूप में स्वर्गिक सुख भोगने लगी। पूर्णचन्द्र भी महाशुक्र नाम दसवें स्वर्ग में जाकर वैदूर्य नामक विमान का अधिपति सोलह सागर की आयु वाला हुआ। मुनिराज सिंहचन्द्र ग्रैवेयक नामक स्वर्ग में जाकर इतक्तीस सागर की आयुवाला अहमिन्द्रबना।[9]

विजयार्ध शैल के दक्षिण मे स्थित धरणी तिलक नगर का राजा आदित्य वेग, उसकी पत्नी सुलक्षणा व आर्यिक रामदत्ता के जीव भास्करदेव ने पुत्री यशोधरा के रूप में जन्म लिया। उसी समय अलकापुरी में दर्शक नाम का राजा था, उसकाविवाह श्रीधरा से हुआ। इनकी पुत्री का नाम भी यशोधरा था। भास्कर के राजा सूर्धवर्त के साथ यशोधरा का विवाह हुआ। सिंहसेन का जीव श्रीधर देव इनके पुत्र के रूप में **'रश्मिवेग'** नाम से प्रसिद्ध हुआ। सूर्यावर्त ने रशिमवेग को राज्य सौंप दिया तथा मुनि हो गया। श्रीधरा तथा यशोधरा दोनों आर्यिका बन गई। रश्मिवेग भी मुनिराज हरिश्चन्द्र के उपदेशों से प्रभावित होकर मुनि हो गया। कंचनगिरि पर आई हुई यशोधरा व श्रीधरा के साथ रश्मिवेग को सत्यघोष के जीव अजगर ने डस लिया। तीनों १४ सागर की आयु प्राप्त कर कापिष्ठ स्वर्ग में देव बन गए तथा अजगर मरकर पंकप्रभ नरक में पहुंचकर दुःसह कष्ट भोगने लगा।

(षष्ठ सर्ग)

भरत क्षेत्र मे चक्रपुर नगर में उपराजित नामक राजाव उसकी पत्नी सुन्दरी रहते थे सिंहचन्द्र ने इनके पुत्र के रूप में जन्म लिया उसका नाम चक्रायुध था। उसका मिलन चित्रमाला से हुआ। रश्मिवेग ने चित्रमाला के वज्रायुध नामक पुत्र के रूप में लिया।

पृथ्वीतिलक का शासक अतिवेग था उसकी रानी प्रयकारिणी नामवाली थी। श्रीधरा के जीव ने इनकी पुत्री रत्नमाला के रूप में जन्म लिया। उसकाविवाह वज्रायुध राजकुमार से हुआ। यशोधरा के जीव ने रत्नमाला और वज्रायुध के पुत्र रत्नायुध के रूप में जन्म लिया। पिहिताश्रव नामक मुनि से अपने पूर्व जन्म का वृतान्त सुनकर राजा अपराजित को वैराग्य हो गया तथा वह सब कुछ त्यागकर दिगम्बर बन गया। अपराजित के पश्चात् चक्रायुध राजा बन गया। वह प्रजावत्सल, न्यायप्रिय धार्मिक राजा था।

(सप्तम सर्ग)

दर्पण में मुख देखते समय एक सफेद बाल देखकर राजा चक्रायुध को बृद्धावस्था का अहसास हो गया। उसने जीवन की असारता[11] पर विचार कर सम्पूर्ण राज्य अपने पुत्र वज्रायुध को सौंप दिया। वन में वह अपने पिता अपराजित मुनि की शरण में पहुंचा तथा मुक्ति के उपाय बतलाने का आग्रह किया।

(अष्टम सर्ग)

अपराजित ने चक्रायुध को धर्माचरण का उपदेश दिया। वह मुनि बन गया।[12] (नवम सर्ग) मुनि दीक्षा लेकर चक्रायुध ने ब्राह्य वस्तुओं का परित्याग कर दिया। मयूरपिच्छी व कमण्डलु मात्र रखे, वह भी उदासीन भाव से[13] सत्य, क्षमा, अहिंसा व ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया। आत्मध्यान में लीन होकर अन्त में कैवल्य ज्ञान प्राप्त कर लिया।

कथानक का स्रोत व उल्लेखनीय परिवर्तन-परिवर्धन

मुनि ज्ञानसागर जी ने श्री समुद्रदत्त चरित्र की वा 'भद्रोदय' नामक काव्य का कथानक वृहत्कथा कोष में वर्णित—श्रीभूति पुरोहित कथानक तथा '**आराधनाकथाकोश**' में वर्णित 'श्रीभूति' की कथा से लिया है। आधार तो इन्हें माना जा सकता है, परन्तु कवि ने यथावश्यक परिवर्तन परिवर्तन के उपरान्त उस कथानक को प्रस्तुत किया है। जैसे—वृहत्कथाकोष में वर्णित संजयन्त मुनि का कथानक में उल्लेख नही है। नायक के नाम मे भी परिवर्तन है। वृहत्कथाकोश में नायक का नाम सुमित्रदत् है, जबकि मुनि ज्ञानसागरी के भद्रोदय का नायक भद्रमित्र है। वृहत्कथाकोष में श्रीभूति को पांच रत्नों के सौंपने का वर्णन है, जबकि भद्रोदय में सात रत्नों का सिंहपुर से लौटते समय समुद्र के तूफान से वैश्यों के मरने व केवल नायक सुमित्रदत्त के बचने का उल्लेख है, परन्तु भद्रोदय में ऐसी कोई उल्लेख नही है। इसी प्रकार श्रीभूति के साथ शतरंज खेलने व रत्नप्राप्ति का विस्तार से उल्लेख है, जबहिक आचार्य ज्ञानसागर जी ने इस वृत्त का संक्षेप में प्रस्तुत किया है। नगरों व राजाओं के नाम मे भी परिवर्तन किया गया है।

इसी प्रकार आराधनाकथा कोश मे वर्णत 'श्रीभूतेः कथा' को भी आचार्य ज्ञानसागर जी ने अपने ग्रन्थ भद्रोदय का आधार बनाया है। इसमें कथा इतनी विस्तृत नही है, जितनी वृहत्कथाकोश में है। यहाँ केवल राजा द्वारा श्री भूति के दण्डित होने और तत्पश्चात् दिवंगत होने तक का वर्णन है, जबकि भद्रोदय में उसके जन्म-जन्मोन्तरों की कथा वर्णित है। नायक के नाम में भी अन्तर है। आराधना कथा कोश में नायक का नाम समुद्रदत् है, जबकि आचार्य ज्ञानसागर जी ने भद्रमित्र नाम दिया है। आश्चर्य तो यह है कि सम्पूर्ण भद्रोदय में कहीं भी समुद्रदत्त का नाम नहीं आया है, परन्तु सम्पादकों ने ग्रन्थ प्रकाशन के समय उसका नाम '**समुद्रदत्त चरित्र**' प्रकाशित किया है। रत्नो की संख्या यहाँ भी पांच ही है—वृहतथाकोष के समान समुद्र में डूब जाने की घटना यहाँ भी है। दोनां मूल कथास्त्रोंतों को देखने

से पता चलता है कि इनमें अधिक साम्य है। कवि ज्ञानसागर जी ने कथानक में परिवर्तन अपनी इच्छा से किये हैं। यह निःसन्देह कहा जा सकता है कि भद्रोदय के लेखक ने मूलतः वृहत्कथाकोष को कथा स्रोत के रूप में आधार माना है। यो भी आराधनाकथा कोष की कथा एक जन्म की कथा ही है। अतः उसे आधार नहीं माना जा सकता है। कुछ अंश कवि ने इससे भी ग्रहण किये हैं, जैसे भद्रमित्र को राजश्रेष्ठी बनाने का निर्णय। अस्तु।

काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों के प्ररिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन—

काव्य शास्त्रीय सिद्धान्तों से समस्त विद्वदजन परिचित है। अतः उन सिद्धान्तों को पिष्टपेषण न कर कवि कर्म का विवेचन ही अभीष्ट है। कथानक की समीक्षा में इतना कथन पर्याप्त है कि लेखक आचार्य ज्ञानसागर जी जैन धर्म के सिद्धान्तो को व्यापक बनाने के लिए कृत संकल्प थे, बद्धपरिकर थे। वे इस तथ्य से परिचित थे कि कथा के माध्यम से अपनी बात जनमानस तक सरलता से पहुचा सकते हैं। समस्त भारतीय पुराण वाङ्मय भी इसी विचार धारा को पुष्ट करता है।

'समुद्रदत्त चरित्र' से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काव्य मे कवि ने सर्गों का नामकरण नही किया है। प्राकृतिक वर्णन के नाम पर इसमे केवल कवि ने विजयार्ध पर्वत का ही वर्णन किया है। स्थान-स्थान पर राजाओं द्वारा जैन मुनियो से दीक्षा प्राप्ति का वर्णन है और काव्यो के पात्रों के कई जन्मों का वर्णन कवि ने किया है। फलस्वरूप काव्य में प्रवाहहीनता और नीरसता आ गई है। इतना होने पर भी **'श्रीसमुद्रदत्त चरित्र'** को महाकाव्य मानने मे हमे आपत्ति नहीं होनी चाहिए। महाकाव्य के काव्य-शास्त्रियो द्वारा बताये गये एक दो लक्षणो को छोड़कर शेष सभी लक्षण इसमे घटित होते हैं।

समुद्रदत् चरित मे केवल नायक को प्रमुखता प्रदान करते हुए उसकी चारित्रिक उज्जवलताका आश्रय लेकर जन्मजन्मान्तरो मे भी मनुष्य की प्रकृति नही बदलती इस उक्ति की सार्थकता प्रमाणित की है—

'सतीव योषित् प्रकृतिः सुनिश्चला।
पुमांसमभ्येति भवान्तरेष्वपि॥'

इनका ग्रन्थ नाम जो समुद्रदत्त चरित्र रखा गया है, वह विचारणीय है। कवि ने अपनी पूरी कृति मे समुद्रदत्त का नाम नही लिखा। आराधना कथाकोश की इस कथा के नायक का नाम अवश्य ही समुद्रदत्त है। मुझे तो लगताहै इसका नाम कवि की अन्य रचनाओं के समान 'भद्रोदय' ही रखना समीचीन है।

इस चरित्र प्रधान काव्य के 8 सर्गो मे प्रथम सर्ग मे मंगलाचरण के रूप मे भगवान् ऋषभदेव, भगवान वर्धमान महावीर व अन्य तीर्थंकारो के प्रणाम किया है। इसी सर्ग में सज्जनों की प्रशंसा व दुर्जनों की निन्दा मे अनेक पद्य लिखे है।[15]

भद्रमित्र को नायक के रूप में प्रस्तुत कर उसकी सत्यवादिता, जैन धर्म के प्रति निष्ठा व अन्य गुणों से युक्त होना उसे चरित्रवान् व आदर्श पुरुष सिद्ध करता है।

यही भद्रमित्र द्वितीय जन्म में राजा सिंहचन्द्र, तृतीय जन्म में ग्रेवेयक के अहमिन्द्र तथा चतुर्थ जन्म में चक्रायुध के रूप में कथा मे प्रस्तुत है। पता नहीं क्यों, आचार्य ज्ञानसागर जी को बृहत्कथा कोष की कथा ने अधिक आकर्षित किया और इसलिए उन्होंने नायक भद्रमित्र के चार जन्मों की कथा प्रस्तुत की। संभवत: वे यह प्रमाणित करना चाहते है कि जैनदर्शन भी पुनर्जन्म के सिद्धान्त को मानता है और मनुष्य के कर्म उसे अनेक जन्म ग्रहण करने के लिए बाध्य करते हैं। कर्मानुसार ही प्राणी का जन्म होताहै, वह तदनुसार ही विभिन्न योनियो में जन्म लेता है। जैसे असत्यवादी होने पर श्रीभूति ब्राह्मण को मारकर सर्प बनना, दूसरे जन्म में प्रायश्चित के उपरान्त चमरी भृग बना, पुन: सर्प बना तथा वही अजगर के रूप मे प्रस्तुत हुआ। अन्य पात्रो के पुनर्जन्म का भी इसी क्रम में उल्लेख है।

'भद्रोदय' मे शान्तरस का अधिक तथा रौद्र, वत्सल व अन्य भक्ती भावों का यथा स्थान चित्रण है। कवि का उद्देश्य भी यही रहा है कि वह भक्ति भावना को प्रबल बनाने व सामान्यजन में शान्त रस का अनुभव कराने मे सफल हो, वह अपने उद्देश्य में सफल रहा है।

काव्य में अन्त्यानुप्रास का चित्रण आकर्षक है। यमक, उपमा, उत्प्रेक्षा, अर्थान्तरन्यास परिसंख्या तथा विरोधाभास आदि अलंकारों से युक्त है।

पात्र योजना पर जब विचार करते हैं तो यह कहना समीचीन है कि भद्रोदय में 20 पात्रों की अवतारणा हुई है। इनमे ऋषि वर्ग, राज वर्ग, राजसेवक वर्ग व सामान्य जन वर्ग के पात्रों को यथास्थान प्रस्तुत किया है। ऋषि वर्ग मे हम वरधर्ममुनिराज, पूर्णाविधु मुनि, हरिश्चन्द्र मुनि भद्रबाहु व पिहिताश्रव मुनि का स्मरण कर सकते है। गुणवन्ती, दान्तमणि व हिरण्यवती आर्यिका के रूप में परिगणित है। राजवर्ग मे सिह सेन, पूर्णचन्द्र व अपराजित का नाम तथा रानियों में (श्रीभूति) तथा धौमिल्ल राजसेवक तथा अन्य पात्रों में भद्रमित्र, सुदत्त आदि उल्लेख किया जा सकता है। प्रत्येक आत्मा परमात्मा बनने की क्षमता रखता है। बहिरात्मा, अन्तरात्मा व परमात्मा के रूप में उत्तरोत्तर उन्नति करता हुआ वही जीव परमपुरूषार्थ मोक्ष को प्राप्त कर अशरीरी परमात्मा बन जाता है। इस प्रक्रिया में प्रत्येक जीव को अनेक जन्म ग्रहण करने पड़ सकते हैं, यदि वह शास्त्रोक्त विधि से जीवन यापन करते हुए सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्रय व सम्यक् दर्शन के अनुपालन से गुण स्थानों के अनुरूप व्यवहार करता जाय। भद्रमित्र का इसी क्रम से उदय अर्थात् उन्नति का चित्रण करने के लिए आचार्य ज्ञानसागर जी ने इस भद्रोदय की रचना की है।

भावपक्ष अर्थात रसव्यंजना, ध्वनि मत वैचित्रय एवं कलापक्ष अर्थात् अनेक अलंकारों के चित्रण से यह काव्य लोकप्रिय है, निर्विवाद है।

इस चरित्र काव्य को पढ़ने पर एक ही निष्कर्ष निकलता है—**'सत्यमेव जयते नानृतम्'** और लगता है, यही कवि आचार्य ज्ञानसागर जी का उद्देश्य है।

:- सन्दर्भ -:

1. श्री पद्मखण्डे नगरे सुदत्तनामा विशामीश उदान्तवृत्तः।
नाम्ना सुमित्रा गृहिणी त्यथासीद्यस्यात्र सत्कृत्य पुनीतराशिः॥ 'समुद्र' 1/29

2. निसर्गरूपेण हृदा पवित्रस्तयोरिहासीदपि भद्रमित्रः।
मान्यः कलावासिव शुक्लपक्ष द्वितीययोः सत्सु सुतः स दक्षः॥ 'समुद्र' 1/30

3. अनयोस्ततया प्रियङ्गुवागनुगा श्रीशिरसीव सुभ्रुवाम्।
जगतां हृदयोपरूपिणी जलधारे व पवित्ररूपिणी॥ (वहीं 2/13)

4. इत्याकर्ण्य निजात् पुरादिह महाकच्छः प्रियङ्गुश्रिय
मानेतुं प्रचकार तत्र पथिः तत्कान्यानुरक्तो ह्रियम्।

त्यक्त्वैकः खलु वज्रसेनवचनः सद्योऽनुलग्नः कलेः
सम्पातः समभूत्तयोः स्तबक गुच्छोपकण्ठस्थले॥ वहीं 2/28

श्रुत्वैतदैरावणवाणिहारादागत्य जित्वाऽरिमुपेत्य वाराम्।
सानन्दमेष प्रचकार कालक्षेपं तयाऽऽमा खलु भूमिपालः॥ वही 2/29

5. तथैव निर्वृतिगृहस्थलोकः सदान्तरात्मन्दतुबद्ध शोकः।
विराधक सन्तखिलप्रजाया अवादि वृद्धैर्नरकं स यायात्॥ वही 2/33

6. असत्यवक्ता ऽनवधानतोऽपि स्यां चेद्भवेयं त्वनयाऽसुलोपी।
ममेतिकण्ठे विधृताऽसिपुत्री येनांसकौ वञ्चकतातिसूत्री॥ वही 3/22

ख्यातिंगतो भद्रपरम्पराया नालीकवागित्यसकौ धरायाम्।
राज्ञाऽभ्यवापापि तु सत्यघोष नामान्तरंगे सुतरां सरोषः॥ वही 3/23

7. वसूनि जग्राह स भू भूजेरितः स्वकानि नान्यानि विवेकवानितः।
स्पृशेच्च नोच्छिष्टमिवान्यदीयमित्यहोधनं साम्प्रतमात्मसंयमी॥ वही 4/2

8. निवेदितो गारूडिनाऽपि नो विषमिहोद्धाराहिरसौ बशाद्विषः।
विपद्य बहौ चमरैणदेहितामवापं कक्षऽत्र पुनर्वताहितात्॥ वही 4/14

9. सिंहचन्द्रमुनिराद् चरमे सग्रीवकेष्वजनि नाम सुरेशः।
प्रावृडादिसमयेस्वपि यस्या भूदतीव कठिना सुतपस्या॥ वही 5/16

10. कदाचिदासीरपराजिताख्य पराजिताशेषनरेश - वर्गः।
राजा पुरेऽस्मिन्नुदितप्रतापो यथा ग्रहाणां दिवसेशसर्गः॥ वही 6/9

11. नववधू किलं संकुच्चतान्मतिरपसरेन्मुखवारिमिषाद् भृतिः।
विवलताच्चकटम् कुलदेव सा स्खलतु पिच्छलगेव पुनारसा॥ वही 7/4

12. हन्त्येकमेतस्य गुणं तु घाति तंदर्गभावात् पदमस्त्यघाति।
तमोश्चतुर्घात्वभुदीश्यन्ति जिना जगत्यत्र तमां जयन्ति॥ वही 8/8

हन्ति क्रमाज्ज्ञानदृशे च शक्तिमेतस्य कुर्वच्च सदोपरक्षितम्।
चतुर्थमाभाति महाप्रभावमतोऽयमन्यत्र घृतैकभावः॥ 8/9

यदुच्चनीचप्रतिपत्तये तु सौस्थ्यस्य दौरस्थ्य परन्तु हेतुः।
तृतीयमंगादि समागमाय तुरीयमंगऽस्य निरोधनाय॥ 8/10

समस्ति देहात्मविवेकरूपः शुभोपयोगो गुणधर्मकूपः।
किलान्तरात्माऽपमनेन भाति परीतसंसार समुद्रताति: 8/22

आत्मानमंगात्ः पृथंगेव कर्तुं शुद्धोपयोगो दुरितापहर्तुः।
महात्मनः सम्भवतीत्यतः स्याद् भूमण्डले पूज्यतया समस्या॥ 8/23

साक्षात् सकृत् सर्वसतां प्रभोगप्रकारकः स्यात् परमोपयोगः।
यदाश्रयः श्रीपरमात्मनामा निर्दोषपूषेव स पूधामा॥ 8/24

13. पिच्छां संयमशुद्धयर्थं शौचार्थं च कमण्डलुम्।
निर्विण्णान्तस्तया दध्र नान्यत् किर्ञ्चिन्महाशयः॥ 9/2

14. महाकवि ज्ञानसागर के काव्य एक अध्ययन - 'काव्यशास्त्रीय विधाएं - डॉ. किरण टंडन पृ. 138

15. (1) समुद्रदत्त चरित - 1/15, 17-18, 21 -24 यथा

कुर्यात् कविः कान्दविकः कवित्वं धरातले मोदकमात्मर्कत्त्विम्।
वित्तं दधानाः खलु पुण्यवन्तः रसन्तु तस्याशु रंसतु सन्त॥ 1/15

समादरोऽल्पे न्यगतेऽप्यहो स गरीयसि स्वस्य गुणेऽप्यतोषः।
यच्चक्षुसीत्थं न हि कस्य दोषः जीयाज्जगत्येष गुणैकपोषः॥ 18

सन्योणमुग्राहकतां प्रयाति दोषमहो दुर्जन एवं भाति।
निसर्गतस्तस्य तथैवजातिः शेषाय कः कोऽत्र च तोषताति:। 24

(2) एकस्य सौख्याय सदा सुधाला परस्य वागेवमिहा सिधाला।
यदुथ्यैवशिषतिपरायणोऽतिदुःखाय लोकेषु चमत्करोति॥ 1/22

परस्य वित्तं सुगुणेकरूपं विलोप्तुभावद्धकरिः सक्रोषः।
न रोचते चेदमुकाय चौरतुजे दृढं सात्क्रियतां किलोरः। 2/16

समयसार-तात्पर्यवृत्ति : एक चिन्तन

☐ डॉ. श्रेयांसकुमार जैन

अध्यात्म की अजस्र स्रोतस्विनी प्रवाहित करनेवाला श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य प्रणीत समयसार आत्मतत्त्व प्ररूपक ग्रन्थों में सर्वश्रेष्ठ है। इसका मंगलाचरण करते हुए ग्रंथकार ने "वोच्छामि समयपाहुडमिणमो सुद केवली भणिदं" प्रतिज्ञा वाक्य लिखा है, जिसके आधार पर ग्रन्थनाम 'समयपाहुडं' अवगत होता है। प्राकृत पाहुडं की संस्कृतछाया प्राभतम् है। समय + प्राभतम् दोनों शब्दों के संयोग से कृति संज्ञा 'समयप्राभृतम्' हुई। 'समयप्राभतम्' संज्ञा की सार्थकता जानने के लिए समय और प्राभृत दोनों शब्दों की निरुक्तियां अपेक्षित है। 'समयते एकत्वेन युगपत जानातीति' इस निरुक्ति के अनुसार समय शब्द का अर्थ आत्मा निष्पन्न होता है। अथवा 'समएकीभावेन स्वगुण पर्यायान् गच्छति' इस निरुक्ति से समय शब्द का अर्थ समस्त पदार्थों मे घटित होता है, क्योंकि सभी पदार्थ अपने अपने ही गुण पर्यायों को प्राप्त है। दूसरी व्युत्पत्ति 'सम्यक् अय: बोधो यस्य स: भवति समय आत्मा' अर्थात् समीचीन बोध होता है जिसका वह समय है। समय शब्द का अर्थ आत्मा है। आत्मा ही जानने वाला है और इसका स्वभाव सर्व पदार्थों का सत्तात्मक बोध है। स्वयं कुन्दकुन्दाचार्य देव ने भी निर्मल आत्मा को समय कहा है।[1]

प्राभृत शब्द की व्युत्पत्ति 'प्रकर्षेण आसमन्ताद् भृतमिति प्राभृतम्' अर्थात् प्रकर्षरूप से सभी ओर से भरा हुआ अथवा प्रकृष्टैराचार्यैर्विद्यावित्तवद्भिदाभृतं धारित व्याख्यातमानीतमितिवा प्राभृतम्"[2] विद्याधनयुक्त महान् आचार्यों के द्वाराजो धारण किया गया है, वह है प्राभृत। प्राभृत का अर्थ शास्त्र है। दोनों शब्दों का समास करने पर अर्थ होगा आत्मा का शास्त्र। आचार्य जयसेन ने 'प्राभृतं सारं सार: शुद्धावस्था समयस्यात्मन: प्राभृतं समय प्राभृतं अथवा समय एवं प्राभृतम् समयप्राभृतम्' लेखकर आत्मा की शुद्धावस्था अर्थ कियाहै।[3]

इस ग्रन्थराज पर सर्वप्रथम आध्यात्मिक जागृति के अग्रदूत महाकवीश्वर विशिष्ट भाषाविद् असाधरण प्रतिभाशील आचार्यवर्य श्री अमृतचन्दसूरी ने दण्डान्वय प्रक्रिया का आश्रय लेकर आत्मख्याति टीका लिखी। इसकी भाषा समास बहुल है। दार्शनिक प्रकरणो के कारण सामान्यजनों के लिए दुरुह हो गई है। इस टीका में 'समयसार' को नाटक का रूप दिया गया है। टीकाकार ने नाटकीय निर्देशों को पूरा पूरा स्थान दिया है। यथा पीठिका परिच्छेद को पूर्वरङ्ग कहा गया है। कृति

---

1. 'समयो खलु णिम्मलो अप्पा' रयणसार गा. 153
2. जयधवल पु. 1 पृ. 357
3. समयसार पृष्ठ 3

को नाटक के समान 9 अंकों में विभक्त किया गया है। (1) जीवाजीव (2) कर्त्ताकर्म (3) पुण्य पाप (5) संवर (6) निर्जरा (7) बंध (8) मोक्ष (9) सर्वविशुद्ध ज्ञान। नवम अंक के अन्त में समाप्ति सूचक पंक्तियाँ इस प्रकार हैं 'इति श्री अमृतचन्द्रसूरी विरचितायां समययार व्याख्यामात्मख्यातौ सर्वविशुद्धज्ञान प्ररूपको नवमोंङ्कः। नवम अंक के बाद नयों का सामञ्जस्य उपस्थित करने के लिए स्याद्वादाधिकार तथा उपायोपेय भावाधिकार नामक दो स्वतंत्र परिशिष्ट जोड़ दिए हैं। यह दर्शनि का टीकाकार का प्रयास है कि जीव अजीव आस्रव आदि नाटक के अभिनेताओं की भूमिका निभाये हैं। द्वितीय अंक के पश्चात् अन्य अंकों के अन्त और आरम्भ में नाटकीय शब्द, जैसे निष्क्रान्तः प्रविशति आदि का प्रयोग किया गया है। साथ में यत्र-तत्र संस्कृत नाटकों मे प्राप्त होने वाले अन्य शब्दों का भी सामान्य रूपेण उपयोग है।

आचार्यवर्य ने अमृतचन्द्रसूरी ने समयसार की 415 गाथाओं पर टीका लिखी है। टीका के मध्य गाथाओं के सारभूत विषयों को 278 कलश काव्यों के माध्यम से प्रस्तुत किया है। कलश काव्य अत्यन्तरोचक एवं भावपूर्ण हैं। कलश काव्यो ने ही टीका को महत्त्व पूर्ण बना दिया और स्वाध्यायीजनों की अभिरुचि जगायी है।

आचार्य श्री अमृतचन्द्रसूरि का सन्निकट रूप से अनुगमन करते हुए विलक्षण प्रतिभावान् सिद्धान्तविद् आचार्यवर्य श्री जयसेन स्वामी ने अत्यन्त सरल और सुबोध संस्कृत में सर्वजन संवेद्य तात्पर्यवृत्ति टीका लिखी। यह टीका श्री मत्कुन्दकुन्दाचार्य के भावों के उद्घाटन में पूर्ण सहायक है क्योंकि जयसेनाचार्य आत्मा के शुद्ध स्वभाव पर मनन करते चले हैं, कहीं कहीं पुद्गल से भिन्नता दिखाते हुए और कहीं कहीं कर्म, कर्मास्रव, कर्मबंध आदि स्वभाव का विवेचन करते हुए और कहीं कहीं संवर और निर्जरा का उपाय निदर्शन से टीका ने अध्यात्म विद्या के अध्येताओं को विशिष्ट रूप से प्रभावित किया है।

टीकाकार के रूप में आचार्य श्री जयसेन स्वामी को जो प्रसिद्धि मिली है, वह अद्यावधि किसी ने भी प्राप्त नहीं की क्योंकि टीका लिखने की इनकी अपनी विशिष्ट विधि है। इन्होंने पद खण्डना विधि को अपनाया है। वस्तुतः टीकाकरण की यही विधि श्रेष्ठ है। इससे मूल की सुरक्षा होती है। आचार्य कुन्दकुन्द स्वामी के मूल शब्दों की संरक्षा में इनकी प्राकृत शब्दानुसारी टीका का महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन्होंने प्राकृत विलक्षणताओं पर पाठकों का विशेष ध्यान आकृष्ट किया है। टीका में सुरक्षित मूल ग्रन्थ पाठ विविध भांति से मूल्यवान् है और दीर्घतर पुनरीक्षण के लिए उनकी कर्तव्य निष्ठा वस्तुतः श्रेयस्कर है।

आचार्य श्री जयसेन स्वामी ने 439 गाथाओं पर तात्पर्य वृत्ति टीका लिखी है। समस्त गाथाओं को कुन्दकुन्द स्वामी रचित ही मानकर टीका लिखी है। समयसार को दस अधिकारों में विभक्त किया है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने जीवाजीवाधिकार को एक ही माना है किन्तु आचार्य जयसेन ने इसको दो अधिकारों में विभक्त कर टीका की है और आजीवाधिकार में 30 गाथाएं। इस प्रकार एक

अधिकार को दो मार्गों में विभक्त करने से आचार्य अमृतचन्द्रसूरि की अपेक्षा इन्होंने एक अध्याय बढ़ा दिया। अन्त में स्याद्वाद अधिकार रूप से ग्रन्थ समाप्ति के अनन्तर जोड़ा है। आचार्य जयसेन की विशेषता है कि प्रत्येक अधिकार या उप परिच्छेद के प्रारम्भ में इन्होंने इस अधिकार का विश्लेषण विषयवस्तुओं के अनुसार गाथाओं की संख्या को भी उपस्थित कर दिया। यथा—"प्रथमत स्तावदष्टाविंशति गाथा पर्यन्त जीवाधिकार: कथ्यते।" अधिकार के अन्त में "इति समयसार व्याख्यायांशुद्धात्मानुभूतिलक्षणायां तात्पर्यवृत्तौ समुदायेनाष्टाविंशतिगाथाभिर्जीवाधिकार: समाप्त।"

प्रत्येक गाथा का परिचय पीठिका के द्वारा दिया है। इनके द्वारा उपस्थापित पाठिका सामान्य रूप से गाथा मे वर्णित विषय को स्फुट करने में समर्थ होती है। इनकी प्रत्येक गाथा को शब्दश: स्पष्ट करने की शैली महत्त्वपूर्ण है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने गाथा को शब्दश: स्पष्टीकरण की शैली को नहीं अपनाया इसलिए इनके द्वारा लिखित आत्मख्याति सर्वसामान्य को विषयबोध माध्यम नही बन सकी। आचार्य जयसेन का पूर्ण प्रयास आचार्य अमृतचन्द्रसूरि द्वारा प्रस्तुत विषय की संगति रखने में रहा है। तथाहि (उदाहरणार्थ) पद के माध्यम से आचार्य अमृतचन्द्र स्वामी के मन्तव्यों को समन्वित करते हुए गाथा की टीका पूर्ण करते हैं। साथ में कभी कभी अत्राह शिष्य:, परिहारम् आह आदि जैसे शब्दों के साथ नवीन विवेचनों को जोड़ देते हैं।

आचार्य जयसेन स्वामी ने अनेक स्थलो पर आचार्य अमृतचन्द्रसूरि का सन्निकट रूप से अनुगमन भी किया है और सुबोध रूप से अधिक बार उनका निर्देश भी किया है। जैसे आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने "सुद्धो सुद्धादेशो णायव्वो" इत्यादि गाथा की टीका में लिखा है "ये खलु पर्यन्त पाकोत्तीर्ण जात्यकार्त्रस्वरस्थानीयं परमं भावमनुभवन्ति, तेषां प्रथम द्वितीयाद्यनेक पाक परस्परापच्यमान कार्त्रस्वरानुभव स्थानीय परम आवानुभवनशून्यत्वाच्छुद्धद्रव्या देशितया समुद्योतितास्खलितैक स्वभावैकभाव: शुद्धिनय एवोपरित नैक प्रतिवर्णिका स्थानीयत्वात्परिज्ञायमान: प्रयोजनवान्।" अर्थात् जो पुरुष अन्तिम पाक से उतरे हुए शुद्ध सोने के समान वस्तु के उत्कृष्ट असाधारण भाव का अनुभव करते हैं, उनको प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकों की परम्परा से पच्यमान (पकाये जाते हुए) अशुद्ध स्वर्ण के समान अपरमभाव का अर्थात् अनुत्कृष्ट मध्यम भाव का अनुभव नही होता। इस कारण शुद्ध द्रव्य का ही कहने वाला होने से जिसने अचलित अखण्ड एक स्वभावरूप एकभाव प्रकट किया है, ऐसा शुद्धनय ही उपरितन एक शुद्ध सुवर्णावस्था के समान जाना हुआ प्रयोजनवान् है। परन्तु जो पुरुष प्रथम द्वितीय आदि अनेक पाकों की परम्परा से पच्यमान अशुद्ध स्वर्ण के समान वस्तु के अनुत्कृष्ट मध्यय भाव का अनुभव करते हैं उनको अन्तिम पाक से उतरे हुए शुद्ध सुवर्ण के समान वस्तु के उत्कृष्ट भाव का अनुभव न होने से उस काल में जाना हुआ व्यवहारनय ही प्रयोजनवान् है।

उक्त कथन से परमशुद्धभाव का अनुभव क्षीणमोही मुनि के घटित होता है। उससे पूर्व सभी अशुद्धभाव मे ही हैं। श्रेणी में बुद्धिपूर्वक राग का अभाव होने से शुद्धोपयोगी मुनि के भी कथञ्चित् परमभाव का अनुभव कहा जा सकता परन्तु छठे सातवें गुण स्थान तक तो शुभोपयोग ही है अत: यहां तक तो परमभाव का अनुभव है ही नहीं। आचार्य जयसेन स्वामी ने इसे सरल रूप से प्रस्तुत करते

कहा है कि शुद्ध निश्चय नय, शुद्धता को प्राप्त हुए आत्मदर्शियों के द्वारा जानने -अनुभव करने योग्य है क्योंकि वह सोलहवानी स्वर्ग के समान अभेद रत्नत्रयस्वरूप समाधिकाल में प्रयोजनवान् है। समाधि रहित अशुद्धावस्था वालों को व्यवहार नय प्रयोजनवान् है जो लोग अशुद्धरूप शुभोपयोग में जो कि असंयत सम्यग्दृष्टि अथवा श्रावक की अपेक्षा तो सराग सम्यग्दृष्टि लक्षणवाला है और प्रमत्त अप्रमत्त संयत की अपेक्षा भेदरत्नत्रय लक्षण वाला है। अत: इनके व्यवहार प्रयोजनीभूत है।

आगे 179, 180 गाथाओं की टीका में आचार्य अमृतचन्द्रसूरी ने कहा है कि जब यह ज्ञानी जीव शुद्धनय से च्युत हो जाता है तब उसके पूर्व बद्ध प्रत्यय पुद्गल कर्मों से बंध करा देते हैं। इनकी टीका करते हुए आचार्य जयसेन ने कहा है कि जब तक ज्ञानीजीव की भी परम समाधि का अनुष्ठान नहीं हो पाता है, तब तक वह भी शुद्धात्मा के स्वरूप को देखने में जानने में और वहाँ स्थिर रहने में असमर्थ होता है।

समयसार तात्पर्यवृत्ति में मुख्य रूप से ज्ञानी सम्यग्दृष्टी सप्तम आदि अप्रमत्त गुणस्थानों में माना है किन्तु—

जह्मा दु जहण्णादो णाणगुणादो पुणोवि परिणयदि।
अण्णत्तं णाणगुणो तेण दु सो बंधगो भणिदो॥

समसयार 179 ॥

आत्मा का ज्ञान गुण जब तक जघन्य अवस्था में रहता है अर्थात यथाख्यात दहन को प्राप्त नहीं होता तब तक अन्तमुहूर्त के पश्चात् अन्यपने को प्राप्त होता रहता है, इसलिए उस समय में वह नवीन बन्ध करने वाला भी होता है।

इस गाथा की टीका में जयसेन स्वामी स्पष्ट किया है कि मिथ्या दृष्टि के ज्ञान गुण से काललब्धि के द्वारा सम्यक्त्व प्राप्त होने पर वह ज्ञान मिथ्यापने को त्याग कर सम्यग्ज्ञानपने को प्राप्त कर लेता है। इसलिए वह ज्ञानगुण अथवा ज्ञानगुण के स्वरूप में परिणत जीव अबन्धक कहा जाता है। इस कथन के आधार पर पण्डित जी जगन्मोहन लाल जी ने अविरत सम्यदृष्टि को भी ज्ञानी और अबन्धक स्वीकार किया है।[1] समयसार की गाथाओं में जहां भी सम्यग्दृष्टि अथवा ज्ञानी पद आता है वहाँ तात्पर्यवृत्ति में तो वीतराग सम्यग्दृष्टि को स्वीकार किया गया है प्राय: आचार्य अमृतचन्द्रसूरि ने भी वीतराग सम्यग्दृष्टि अर्थग्रहण किया है जैसे—'णत्थि दु आसव बन्धो सम्मादिट्ठिस्स असवणिरोहो।' अर्थात् सम्यग्दृष्टि के अस्रव बंध नहीं है, प्रत्युत अस्रव का निरोध है। अस्रव का निरोध राग द्वेष मोह से रहित जीव को ही संभव है अत: दोनों ही।

आचार्यों को वस्तुत: समयसार में वीतराग सम्यग्दृष्टि इष्ट है।

उक्त 179 नं. की गाथा का विशेषार्थ लिखकर आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने यथार्थता को उपस्थित किया है वे लिखते हैं—"ज्ञान शब्द का अर्थ दो प्रकार से किया जा सकता है एक तो यथा

---

1. अध्यात्म अमृतकलश प्र. पृ.

वस्थितं अर्थं जानातीति ज्ञानम्, दूसरा आत्मानं जानाति अनुभवतीति ज्ञानम्। द्वितीय अर्थ के अनुसार तो समाधिकाल में ज्ञान जब तक अनुभव करता रहता है, जब तक वह ज्ञान कहा जा सकता है। ध्यान समाधि से जहाँ च्युत हुआ कि वह अज्ञान कोटि में आ जाता है और बन्ध भी करने लग जाता है। तात्पर्यवृत्ति और आत्मख्याति दोनों ही टीकाओं के अनुसार चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव का ज्ञान भी इस ज्ञान शब्द से लिया जा सकता है क्योकि वह भी जीवादि नव पदार्थों का यथार्थज्ञान रखता है किन्तु इस अर्थ के अनुसार गाथा काजो अर्थ यहाँ लिया गया है, वह कुछ खीच कर लिया हुआ सा प्रतीत होता है जिसका समर्थन आत्मख्याती और तात्पर्यवृत्ति के अन्य स्थानों से नहीं होता है। स्वयं जयसेनाचार्य ने स्थान स्थान पर यही लिख बताया है कि इस ग्रन्थ में जो वर्णन है, वह गृहस्थ सम्यग्दृष्टि को लेकर नहीं किन्तु वीतराग (त्यागी) सम्यग्दृष्टि को लेकर किया है।

इस प्रकरण में जयसेनाचार्य के शब्दों को देखा जा सकता है—"अत्र ग्रन्थे वस्तुकृत्या वीतराग सम्यग्दृष्टेग्रहणं यस्तु चतुर्थ गुणस्थानवर्ती सरागसम्यग्दृष्टिस्तस्य गौणवृत्त्या ग्रहणम्" अर्थात् इस ग्रन्थ मे वास्तव में वीतराग सम्यग्दृष्टि का ग्रहण है, चतुर्थगुणस्थानवर्ती सराग सम्यग्दृष्टि का ग्रहण तो गौण रूप से तथा मिथ्यादृष्टि की अपेक्षा अविरत सम्यग्दृष्टि के भी अनन्तानुबन्धी कषाय चतुष्क और मिथ्यात्व जनित रागादि नहीं है अतः उतने अंश में उसके भी निर्जरा है।[1]

आगे कहा है—अत्रतु ग्रन्थे पञ्चमगुणस्थानादुपरितन गुणस्थान वर्तिनांवीतराग सम्यग्दृष्टिनां मुख्यवृत्तया ग्रहणं सराग सम्यग्दृष्टीनां गौणवृत्येत्तिव्याख्यानं सम्यग्दृष्टि व्याख्यान काले सर्वत्र तात्पर्येण ज्ञातव्यम्'

इस ग्रन्थ में पञ्चम गुणस्थान से ऊपर के गुणस्थान वाले वीतराग सम्यग्दृष्टियों का ही मुख्य रूप से ग्रहण है, सराग सम्यग्दृष्टियो का तो गौण रूप से ग्रहण है सम्यग्दृष्टि के व्याख्यान के समय सर्वत्र ऐसा ही तात्पर्य समझना चाहिए।

उक्त कथनों के आधार पर ही डॉ. ए.एन. उपाध्येय जैसे मनीषी ने यहां तक लिखा है "समयसार को गृहस्थों द्वारा पढ़ा जाना तक वर्जित है, क्योकि ग्रन्थ में भेद विज्ञान जैसे आध्यात्मिक प्रकरण मुख्यतः चर्चित किय गये हैं, विवेचन शुद्ध निश्चयनय से किया गया है और व्यवहार नय को मात्र संभवभूतो के सुधार हेतु लिखा है। अंततः निश्चयनय मे दिए गये आध्यात्मिक कथन उन गृहस्थों को सामाजिक और नैतिक रूप से हानिकारक हो सकते हैं, जो अध्यात्मिक अनुशासन से प्रायः पूर्णतः शून्य हैं।"[2]

आचार्य जयसेन स्वामी ने समयसार गाथाओ में वर्णित सम्यग्दृष्टि को वीतराग चारित्र वाला मुनि ही स्वीकार किया है। तात्पर्यवृत्ति मे गुणस्थान विवक्षा की प्रधानता है किन्तु आचार्य

1. समयसार तात्पर्यवृत्ति निर्जरा अधिकार पृ. 196
2. प्रवचनसार एक अध्ययन (हिन्दी रूपान्तर) पृ. 196

अमृतचन्द्रसूरि की कहीं भी उपेक्षा न कर उन्ही का अनुगमन करते हुए प्राय: जयसेनाचार्य लिखते हैं यथा समयसार गाथा संख्या 306, 307 की टीका में श्री अमृतचन्द्रसूरि ने अप्रतिक्रमण आदि को अमृतकुम्भ कहा है सो तृतीय भूमि में अर्थात् शुद्धोपयोग में कहा है—तृतीय भूमिस्तु स्वयं शुद्धात्मसिद्धिरूपत्वेन" अर्थात अप्रतिक्रमण-प्रतिक्रमण से परे जो अप्रतिक्रमणरूप तृतीयभूमि है, वह स्वयं शुद्धात्मा की सिद्धिरूप है।

इसी प्रकरण में जयसेनाचार्य का कथन भी दृष्टव्य है "सराग चारित्र लक्षण शुभोपयोग की अपेक्षा से ये ही निश्चय प्रतिक्रमण, निश्चय प्रतिसरण आदि कहलायेंगे क्योंकि प्रतिक्रमण आदि शुभोपयोग हैं ये सब सविकल्प अवस्था में अमृत कुम्भ हैं किन्तु परमोपेक्षा संयम रूप निर्विकल्प अवस्था में विषकुम्भ हैं। वहां तो अप्रतिकमण अर्थात् निश्चय प्रतिकमण आदि ही अमृतकुम्भ है।"[1]

जयसेनाचार्य अमृतचन्द्राचार्य का अनुसरण प्राय: अवश्य करते हैं किन्तु जहाँ भी आत्मख्याति में तत्त्व का सामान्य प्रतिपादन हुआ है, उसका विशेष स्पष्टीकरण आचार्य जयसेन ने अवश्य किया है। पात्र की दृष्टि से भी कथन करके टीका को प्रत्येक अध्येता की ग्राह्य बना दी है।

तात्पर्यवृत्ति मे जीव के भावों की विशिष्टता का सम्यक् प्रकारेण चित्रण किया है। आचार्य कुन्दकुन्द ने अध्यवसान भाव रहित मुनि ही को शुभ अशुभ कर्मों के बन्ध से बचाया है। इसे जयसेन स्वामी ने किञ्च विस्तर: लिखकर स्पष्ट किया है—"जिस समय इस जीव को शुद्धात्मा का समीचीन रूप श्रद्धान, ज्ञान औरअनुष्ठान स्वरूप निश्चय रत्नत्रय ही है लक्षण जिसका ऐसा भेद विज्ञान नही होता है, तो उस समय वह जीव "मैं इन जीवों को मारता हूँ इत्यादि रूप से हिंसा के अध्ययवसान को "मैं नारक हूँ" अत्यादि कर्मोदय के अध्यवसान को "यह धर्मास्तिकाय है" इत्यादिरूप से ज्ञेय पदार्थ के अध्यवसान को जानता है। तब उस समय वह उस हिंसा अध्यवसानरूप विकल्प के साथ अपने आपको अभेदरूप जानता हुआ वैसे ही श्रद्धान करता है, जानता है और वैसे ही आचरण करता है इसलिए मिथ्यादृष्टि होता है, मिथ्याज्ञानी होता है और मिथ्या चारित्री भी होता है। इसीलिए उसके कर्मबन्ध होता है और भेद विज्ञान होता है तो वह सम्यदृष्टि होता है, सम्यज्ञानी होता है और सम्यक् चारित्रवान् होता है, उस समय कर्म का बन्ध नहीं होता है।

आचार्य कुन्दकुन्द के कथन "जब तक यह छद्मस्थ जीव बाह्य वस्तुओं के संबंध में संकल्प विकल्प करता है, तब तक उसके हृदय मे आत्मा के स्वरूप के विषय का ज्ञान नही होता है अत: तभी तक वह जीव शुभ और अशुभ जाति के कर्म भी करता है।"[2]

अनन्तज्ञान सम्पन्न आत्मा को शुभाशुभ प्रवृत्ति वाला नहीं जान सकता है। जो आत्मोपलब्धि वाला है, वही सम्यग्दृष्टि है आचार्च ज्ञानसागर पात्र विवक्षा से सम्यग्दर्शन का कितना स्पष्ट वर्णन करते हैं "आचार्य श्री ने यहां आत्मोपलब्धि की बात कही है "वह आत्मोपलब्धि तीन प्रकार की है (1)

---

1. उद्धृत समयसार पूवार्द्ध आर्यिका ज्ञानमती- समयसार एक अध्ययन पृ. 8
2. समयसार 288

आगमिक आत्मोपलब्धि (2) मानसिक आत्मोपलब्धि (3) केवलात्मोपलब्धि । गुरु की वाणी में आत्मा का स्वरूपसुनकर उस पर विश्वास ले आना यह आगमिक आत्मोपलब्धि है। आत्मा के शुद्ध-स्वरूप को मन से स्वीकार करना अर्थात् मन को तदनुकूल परिणाम लेना यह मानसिक आत्मोपलब्धि है। (3) केवल ज्ञान हो जाने पर प्रत्यक्षरूप से आत्मा की प्राप्ति यह केवलात्मोपलब्धि है। उनमें से केवला त्मोपलब्धि की बात तो अपूर्व है, वह तो परिणाम स्वरूप एवं ध्येय रूप है ही, परन्तु यहां शेष आत्मोपलब्धियों में से मानसिक आत्मोपलब्धि की बात है, जहाँ पर श्रद्धा के साथ आचरण भी तदनुकूल होता है अर्थात् जैसी करनी वैसी भरनी " की बात है। जहाँ पर श्रद्धा के साथ साथ मानसिक आत्मोपलब्धि के समय स्वयं में भी हर्ष-विषादादि विकारभावों का अभाव होता है, अत: वहाँ शुभ या अशुभ किसी प्रकार के नूतन कर्मबन्ध का सद्भाव नहीं होता। अत: वती महर्षियों को स्वीकार्य है तथाउसी का इस अध्यात्य प्रकरण में संग्रहण एवं उसी मानसिक आत्मोपलब्धि वाले को सम्यग्दृष्टि ज्ञानी निर्बन्ध आदि रूप से कहा गया है। जहाँ आगामिक आत्मोपलब्धि की बात है, वहाँ पर शुद्धात्मा के विषय का श्रद्धात्री होता है किन्तु आचरण तदनुकूल न होकर उससे उल्टा होता है अर्थात् उसे यह विश्वास तो है कि आत्मा का स्वरूप हर्ष-विषादादि करना नही है किन्तु स्वयं हर्ष-विषादि को लिए हुए रहता है। और करता रहता है। इस प्रकार 'कथनी और करनी और' वाली कहावत को चरितार्थ करने वाला होने से उसे इस अध्यात्म शैली के ग्रन्थ में सम्यग्दृष्टि आदि न कहकर मिथ्यादृष्टि कहा गया है। आगमिक लोग शुद्धात्मा को श्रद्धामात्र से ही सम्यग्दृष्टिपना मानते हैं क्योंकि उनकी विचारधारा यह है कि इसके शुद्धात्मा होने रूप आचरण भले ही आज न सही किन्तु शुद्धात्मा की श्रद्धा तो इसके भी जगी है अत: संग्रहकर्त्ता के रूप में यह भी सम्यग्दृष्टि से ही है।

आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज ने शंकास्पद स्थलों को अत्यन्त सरल रूप से स्पष्ट किया है तथा अव्रतरूप प्रवृत्ति करने ये पाप बन्ध और व्रतरूप सदवस्था में पुण्यबन्ध का 275 एवं 276 गाथाओं के भाव का स्पष्टीकरण—प्रश्नोत्तर के रूप में शंका-पहले तो आचार्य श्री बतला आये हैं कि मात्र सम्यग्दर्शन होने पर ही किसी भी प्रकार का बन्ध नही होता और यहाँ कहा जा रहा है कि महाव्रत अवस्था में भी पुण्यबन्ध होता है, सो कुछ समझ मे नहीं आया।

समाधान—है भाई, जहाँ आचार्यश्री ने सम्यग्दृष्टि की निर्बन्ध कहा है, वहां केवल वीतराग सम्यग्दृष्टि को लेकर कहा है जैसा कि चत्तारिविपावे" इत्यादि गाथा से सुस्पष्ट है, शेष अविरत सम्यग्दृष्टि आदि के बन्ध उनके रागानुसार होता ही है क्योकि राग ही बन्ध का कारण है।

शंका—आपने कहा सो ठीक परन्तु महाव्रतो से भी पुण्य बन्घ होता है यह कैसे? क्योंकि फिर जो बन्ध नहीं करना चाहता, वह व्रत छोड़ दे? उत्तर—हे भाई! महाव्रतों के दो रूप होते हैं—(1)सत्प्रवृत्तिरूप (2) निवृत्तिरूप' जैसे कि हिंसा करना या किसी को भी कष्ट देना यह पाप है, अशुभ बन्ध का कारण है, किन्तु हिंसा नही करना अर्थात् सभी के सुखी होने की भावना करना यह सत्प्रवृत्तिरूप महाव्रत है। यह पुण्यबन्ध करने वाला है और इसी का सम्पन्न रूप किसी से भी डरने डराने रूप भयसंज्ञा से रहित स्वयं निर्णय होना यह पुण्य और पाप इन दोनों से भी दूर रहने वाला है।

इसी प्रकार झूठ बोलना पाप, सत्य बोलना पुण्य किन्तु सर्वथा नहीं बोलना अर्थात् मौन रहना सो पुण्य और पाप इन दोनों से भी रहित। किसी की भी बिना दी हुई वस्तु लेना सो चोरी -पाप और उसका त्याग किन्तु श्रावक के द्वारा भक्ति पूर्वक उचित रूप से दिया शुद्ध आहार ग्रहण करना सो पुण्य और आहार संज्ञा से रहित होना सो पुण्य व पाप इन दोनों से भी रहित। व्यभिचार तो पाप तथा स्त्रीत्यागरूप ब्रह्चर्य सो पुण्य किन्तु मैथुन संज्ञा से रहित होना यह पुण्य और पाप से रहित। इसी प्रकार परिग्रह पाप, परिग्रह त्यागपुण्य किन्तु परिग्रह संज्ञा का नहीं होना सो शुद्ध रूप इस प्रकार महाव्रतो का पूर्व प्रारम्भात्मरूप शुभ किन्तु उन्हीं का ही अपर-रूप जो कि पूर्णतया उदासीनता मय एवंचारों प्रकार की संज्ञाओं से भी रहित होता है, वह शुद्ध अत: अबन्ध कर होता है।

उक्त अशुभ-शुभ-शुद्ध का विशेषार्थ के माध्यम से आचार्य ज्ञानसार महाराज ने स्पष्टीकरण किया। इतना सरल ढंग समझाने का बिरलजनों में ही पाया जाता है। इसी प्रकार के विशेषार्थों के द्वारा आचार्य श्री ने अध्यात्म के गूढ से गूढ रहस्यों को उद्घाटित किया है, जिससे समयसार तात्पर्यवृत्ति प्रत्येक अध्यात्म जिज्ञासु के लिए अति उपयोगी हो गयी है।

सम्प्रति कुछ कदाग्रही जन ग्रहस्थावस्था में वीतराग सम्यग्दृष्टि बने हुए हैं, बना रहे हैं उन लोगों की भ्रान्त धारणाओं के उन्मूलन के लिए आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज द्वारा लिखित विशेषार्थ पूर्ण समर्थ है क्योंकि आचार्य श्री तात्पर्यवृत्ति को पूर्ण आत्मसात करके ही विशेषार्थों के माध्यम से विषयों का स्पष्टीकरण किया है।

अस्रावाधिकार (184-185) में आचार्य श्री जयसेन ने वीतराग सम्यग्दृष्टि के अधिकारी का विशेष स्पष्टीकरण किया है। तात्पर्यवृत्ति निश्चय और व्यवहार दोनों नयो का आश्रय लेकर लिखी गयी है अत: सम्पूर्ण विषयों को उद्घाटन इससे सहज ही हो जाता है।

आचार्य जयसेन स्वामी का संस्कृत मुहावरों पर असाधारण अधिकार है। उनकी जैन पारिभाषिक शब्दों की उपयोग व्यवस्था स्वभाविक एवं सरल है। उनका अर्थगर्भित व्याख्याओं तथा संक्षिप्त प्रतिपादन का अपूर्व ज्ञान तात्पर्यवृत्ति में जगह जगह पर परिलक्षित होता है। स्वचित् कदाचित स्थानो पर तात्पर्यवृत्ति में गद्य की कृत्रिमता भी देखने को मिलती है फिर भी अभिव्यक्ति की धारा अति प्रबल है। आचार्य अमृतचन्द्रसूरि तो कवि हृदय हैं। इनके पद्य भाग की अपेक्षा तात्पर्यवृत्ति का गद्य अत्यन्त सरल सर्व जन बोध्य है। वस्तुत: जयसेन स्वामी ने गद्य मे विशिष्टता प्राप्त की है। इन्होंने दार्शनिक विषय वस्तु के उपस्थापन के साथ साथ शाब्दिक स्पष्टीकरण पर विशेष ध्यान दिया है। तात्पर्यवृत्ति ही वस्तुत: कुन्दकुन्द स्वामी के अभिप्रापों को स्फुट करने में सक्षम है क्योंकी जयसेन स्वामी की भाषा सरल और सहानुभूतिपूर्ण है और उनका प्रयास रहा है कि विषय का पूर्ण स्पष्टीकरण हो जिससे सामान्य बुद्धिशील भी विषय का परिज्ञान प्राप्त कर सके। सरलतम संस्कृत में लिखते हुए भी प्रयोजन भूत अर्थ को उद्घाटित करना उनकी प्रतिभा का वैशिष्टय है। उन्होंने व्याकरण सम्बन्धी कठोरता की उपेक्षा की है। तात्पर्यवृत्ति में उद्धरणों की भी बहुलता है। उद्धरणों से प्रमाणिकता पुष्ट

होती है। प्रसंग प्राप्त उद्धरण प्रस्तुति आचार्य जयसेन की नवनवोन्मेषश्नलिनी प्रतिभाकी परिचायिका है।

जयसेनाचार्य की तात्पर्यवृत्ति की महत्त्वपूर्ण उपलब्धि स्वतंत्र पाठ भेदों को सुरक्षित रखना है। आचार्य कुन्दकुन्द के शब्दों की सुरक्षा तात्पर्यवृत्ति के माध्यम से ही है। आचार्य कुन्दकुन्द का परिचय कराने वाले आचार्य जयसेन ही हैं। इनकी कुन्दकुन्द स्वामी के प्रति अगाध भक्ति अनुकरणीय है। आचार्य जयसेन के पूर्व एक सहस्र वर्ष कुन्दकुन्द के नाम से अपरिचत रहने वाले अध्यात्म जगत् के ऊपर जयसेनाचार्य का महान् उपकार है कि उन्होंने कुन्दकुन्द का परिचय कराया। अध्यात्म विद्या रसिक समाज को समयसार की तात्पर्यवृत्ति विषय वस्तु को समझने में अत्यधिक सहायक है इसलिए प्रत्येक अध्यात्मविद्या एवं दर्शनशास्त्र के अध्येता को इसका अध्ययन अति आवश्यक है।

आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज ने हिन्दी रूपान्तर और विशेषार्थ के द्वारा मण्डित कर श्रीमत्कुन्दकुन्दाचार्य की सर्वोच्च कृति समयसार पर आचार्य श्री जयसेन लिखित तात्पर्यवृत्ति को जन-जन के लिए ग्राह्य बना दिया गया है। समयसार तात्पर्यवृत्ति के बिना समयसार के रहस्य को पाना अशक्य ही है। अतः प्रत्येक आत्मतत्त्व जिज्ञासु को आचार्य श्री ज्ञानसागर महाराज द्वारा लिखित विशेषार्थ सहित समयसार तात्पर्यवृत्ति को अपने स्वाध्याय का विषय बनाना अनिवार्य है।

☐ प्रवक्ता संस्कृत,
दि. जैन कालेज बड़ौत

भक्ति संग्रह समीक्षा

□ डॉ. प्रेमचन्द रांवका

'पूज्यानां गुणेष्वनुरागो भक्तिः' पूज्य पुरुषो के गुणों में अनुराग ही भक्ति है। आ. देवनन्दि ने "सर्वार्थसिद्धि" में लिखा है 'अर्हदाचार्येषु बहुश्रुतेषु प्रवचने च भाव विशुद्धियुक्तो अनुरागो भक्तिः'—अर्हन्त, आचार्य और प्रवचन में भाव विशुद्धयुक्त अनुराग भक्ति है। आ. सोमदेव ने भी यशस्तिलक चम्पू में—"जिने जिनागमे सूरौ तपः श्रुत परायणे सद्भाव विशुद्धि सम्पन्नोऽनुरागे। भक्तिरूच्यते" लिखा है। अतः भाव की विशुद्धि से युक्त अनुराग ही भक्ति है जिस अनुराग में भाव की निर्मलता नही होती वह अनुराग भक्ती नहीं है। सांसारिक अनुराग में वासना होती है। अतःवह भक्ति नही हो सकती।

वीतराग भगवान जो स्वयं राग रहित हैं और जो राग त्यागने का उपदेश देते है के प्रति अनुराग कैसे सम्भव है? क्योंकि राग तो कर्मबन्ध का कारण है। आचार्य कुन्दकुन्द के अनुसार वीतराग भगवान में किया गया अनुराग पाप के बन्ध का यत्किंचित् भी कारण नहीं है। उनकी दृष्टि में पंच परमेष्ठी में राग करने वाला सम्यग्दृष्टि हो जाता है। आचार्य योगीन्दु ने परमात्म प्रकाश में कहा है कि 'पर' मे होने वाला राग ही बन्ध का हेतु है, स्व में होने वाला नहीं। वीतरागी परमात्मा पर नहीं, अपितु स्व 'आत्मा ही हैं।' अतः जिनेन्द्र में अनुराग करना अपनी अपनी आत्मा में ही अनुराग करना है। स्व में राग करने वाला ही मोक्षगामी होता है निष्काम अनुराग मे कर्मों को बांधने की शक्ति नहीं होती।

जैन भक्ति का लक्ष्य आत्म शुद्धि है। आत्मा जब परमात्मा बनना चाहता है तब उसका प्रारम्भिक प्रयत्न भक्ति के रूप में ही होता है जैन धर्म में व्यक्ति की उपासना नहीं, गुणों की आराधना है। गुणों के कारण ही व्यक्ति की उपासना है। गुणों की उपासना का प्रयोजन भी गुणों की प्राप्ति है। गुणो की प्राप्ति के लिये भक्त/उपासक गुणवान के गुण प्राप्त किये, उसी विधि से उस मार्ग को अपनाकर भक्त भी पास्य के गुणों को प्राप्त करना चाहता है। यही भक्ति का लक्ष्य है—आ. उमास्वामी कहते हैं—

मोक्षमार्गस्थ नेतारं भेत्तारं कर्मभूभूताम/ज्ञातारं विश्वतत्वानां वन्देतद्गुण लब्धये।

जैन दर्शन भक्ति का आधार गुणों को मानता है। यदि परमात्मा की भक्ति करने से कोई परमात्मा नहीं बन सकता तो फिर उसकी भक्ति का प्रयोजन ही क्या? आ.मानतुंग के शब्दों में—

नात्यदभुतं भवनभूषण! भूतनाथ, भूतैर्गुणैभुवि भवन्तमिष्टुवन्तः।

तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किंवा, भूत्याश्रितं इहनात्मसंमकरोति॥

जैन सिद्धान्त में जिनेन्द्र न कर्ता न भोक्ता है फिर भी भक्त की भक्ति का औचित्य इसका उत्तर प्रख्यात तार्किक आ. समन्तभद्र स्वयंभू स्तोत्र में 'वासपूज्य भगवान का स्तवन करते हुये देते है—हे नाथ ! आप वीतराग हैं, अत: आपको अपनी पूजा-वन्दना से कोई प्रयोजन नही । न ही निन्दा से क्योंकि वैर का दमन कर दिया है पुनरपि आपके पावन गुणों का स्मरण हमारे चित्त कोपाप रूप कलंक से हटा कर पवित्र बना देता है।

महाकवि धनंजय ने विषापहार स्तोत्र में भगवान को शुद्ध-निर्मल, स्वच्छ दर्पणवत् बताया। जिसमें व्यक्ति का ही स्वयं अनुसार रूप दिखायी देता है। दर्पण में दृष्टा जैसा देखता है वैसा ही पाता है। दर्पण कर्ता नहीं प्रकृतिस्थ है।

यद्यपि जैन दर्शन में भक्ति को साक्षात् मुक्ति का कारण नही माना है तो भी उसका महत्व कम नहीं। साधना की प्रथम भूमिका में उसका उपयोग है। मन जब उपास्य की ओर आकृष्ट होता है तो वह उसके मार्ग का अनुसरण करना भी अपना कर्त्तव्य समझता है। वह असत से सत् की ओर आता है यदि भक्ति में पाखण्ड, प्रदर्शन न हो तो तन्मना होने पर मुक्ति की ओर ले जाती है। यही कारण है कि अनेक जैनाचार्यों एवं कवियों ने भक्ति को महत्व दिया। विवेक युक्त भक्ति ही मनुष्य को अमरत्व की ओर ले जाती है। जो साधक श्रमणत्व की ऊंची भूमिका में नहीं जा सकता, उसके लिये भक्ति संबल है। मुक्ति मार्ग में पाथेय है। साधक के लिये साहारा है महाकवि वादिराज ने एकीभाव स्तोत्र में कहा है

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि तवय्यनीचा... ॥

भक्ति का फल आत्मशोधन के साथ लोकोपकार भी है। तब पादौ ममहृदयेक्षैमंसर्व

वसुधैव कुटुम्बकम की उदात्त तथा पवित्र भावना ही ओतप्रोत है।

मूर्तिपूजा और भक्ति के विषय में आ.ज्ञान सागर के वाराणसीय सहपाटी दार्शनिक विद्वान पं. चेनसुख दास जी न्यायतीर्थ का कथन है कि भारत में कई धर्म-सम्प्रदाय यद्यपि मूर्तिपूजा को महत्व नहीं देते फिर भी वे भक्ति का समर्थन करते हैं। यद्यपि इन दोनों का निर्मित्त-नैमित्तिक संबंध है तथापि ये दोनों एक नहीं है। 'जो' भक्ति के लिए मूर्तिपूजा मात्र आलम्बन है पर आवश्यक नहीं। भक्ति तो मनुष्य की मानसिक वृत्ति है जो निरालंबन भी हो सकती है। भारतीय साहित्य में सगुण-निर्गुण-ज्ञानामयी-प्रेममयी भक्त के रूप मिलते हैं। आलम्बन तो वास्तव में परमात्मा ही है न कि पूजा। बिना मूर्ति के भी परमात्मा या महात्माओं के गुणों में अनुराग उत्पन्न कर उसमें पूजनीयता की आस्था स्थापित की जा सकती है। भक्ति का रहस्य भी यही है।

अन्य विधाओं की भांति प्राकृत एवं संस्कृत में जैन भक्ती संबंधी साहित्य भी उपलब्ध होता है। ईसा की प्रथम शताब्दी में आ. कुन्दकुन्द ने सिद्धभक्ति,श्रुतभक्ति, चारित्र भक्ति योगभक्ति, आचार्यभक्ति और निर्वाणभक्ति प्राकृत गाथाओं में रची भक्तियों प्रभाचन्द की संस्कृत टीका और पं. जिनदास पार्श्वनाथ के मराठी अनुवाद सहित 'दशभक्ति' नामक पुस्तक में शोलापुर से सन् 1921 मे

प्रकाशित हो चुकी है। इसके अतिरिक्त आ. कुन्दकुन्द के बोधपाहुड, औरमोक्ष पाहुड में भी भक्ति परक तत्त्वों की व्याख्या की गई है।

वि. की दीक्षा में आ. उमास्वामी ने तत्वार्थसूत्र में श्रद्धा, विनय और वैय्या के सम्बन्ध में अनेक सूत्रों का निर्माण किया। उन्होंनें तीर्थंकरत्व नाम कर्म के उदय में भक्ती को कारण कहा है। आ. पूज्यपाद, आ. अकलंक और आ. श्रुतसागर जैसे परवर्ती भाष्यकारों ने भक्ति संबंधी सूत्रों की विशद व्याख्या की। आ. समन्तभद्र में अपने समीचीन धर्म शास्त्र (रत्नकरण्ड श्रावकाचार) में श्रद्धा, विनय, वैयावृत्य, जिनेन्द्र और गुरुभक्ति पर तात्विक रूप से विचार किया। वे अपने परीक्षा की कसौटी पर कसने के उपरान्त ही जिनेन्द्र के परम भक्त बने थे।

छठी श. में आ. योगीन्दु ने परमात्म प्रकाश में सिद्ध भगवान और आत्मा की एक रूपता दिखाते हुये उनकी भक्ति का निरूपण किया है आ. यतिवृषभ की तिलोयपण्णति में जिनेन्द्र के पंचकल्याणक और तत्सम्बन्धी भक्ति का विस्तृत वर्णन किया गया है। भक्ति के प्रमुख अंग वन्दना काविचार उत्तराध्यायनसूत्र, आवश्यकर्नियुक्ति और वृहत्कल्पनाभाव में सभी दृष्टियों से किया गया है।

वि.की 7वीं सताब्दी में आ. शिवाकोटि में 'भगवती आराधना' में जैन भक्ति पर पर्याप्त सामग्री मिलती है। इस विशाल ग्रन्थ में अनेक स्थलों पर पंच परमेष्ठी की श्रद्धा, सेवा, वैयावृत्य औरअनुराग भक्ति की सार्थकता सिद्ध की गयी है। स्तोत्रसाहित्य तो पूरा भक्ति परक ही है।

इसी श्रृंखला में हमारे आलोच्य समीक्ष्य स्वनामधन्य आचार्य प्रवर श्री ज्ञानसागर जी महाराज का भक्तिसंग्रह संस्कृत भक्ति साहित्य की अमूल्य निधि है : जिसमें महाव्रतियों और अणुव्रतियों के लिये षट् आवश्यक और निमित्त नैमिक्तिक क्रियाएँ कृति कर्म पूर्वक सम्पन्न करने का विधान है। किस क्रिया में कौनसे भक्तिपाठ बोलने चाहिए—यह निर्देश चरणानुयोग के शास्त्रों में है। पूज्य आचार्य श्री ने सरल संस्कृत में हिन्दी पद्य अनुवाद सहित सभी अपेक्षित भक्तियों की रचना की है। यह रचना समस्त साधुसंघ एवं प्रतियों के लिए मोक्षमार्ग में पाथेय रूप है। इसमें बारह भक्तियों का सन्निवेश है।

संयमी साधु-सन्तों में आत्म शोधनार्थ स्तवन, वंदन, प्रतिक्रमण, सामयिक आदि नित्य नैमिक्तिक क्रियाएँ निरन्तर चलती रहती है। अर्द्धरात्रि के अनन्तर दो घड़ी व्यतीत होने पर साधु निद्रा का परित्याग करके श्रुतभक्ति, आचार्यभक्ति, स्वाध्याय, प्रतिक्रमण तीर्थंकरभक्ति, चैत्यभक्ति, पंच महागुरुभक्ति, समाधिभक्ति, सामायिक (आत्म-ध्यान) आदि अपनी नित्य नैमिक्तिक क्रियाओं को रात्रि विश्राम तक करते हुए शक्ति के अनुसार कर्मदहन, चारित्रशुद्धि, **सिंह निष्क्रीडित** आदि व्रतों के द्वारा अपने कर्मों की निर्जरा करते हुए तथा सातिशय पुण्य का बन्ध करते हुए अपने संसार को बहुत लघु कर लेते हैं। अर्थात् दो-चार भवों में ही शीघ्र ही मोक्ष को प्राप्त कर लेते हैं।

साधुसन्तों में **भक्तियों** का पाठ नियमित रूप से होता है। प्राकृत भक्तियाँ कुन्दकुन्दाचार्य द्वारा प्रणीत है तो संस्कृत भक्तियों पूज्यपादाचार्य द्वारा रचित है। परवर्ती आचार्यों ने इन्ही के आधार पर संस्कृत में भक्तियों की रचना की। संस्कृत में नन्दीश्वरभक्ति का एक संस्करण आचार्य विद्यासागर जी के पद्यानुवाद और पन्नालालजी साहित्याचार्य द्वारा हिन्दी अनुवाद के साथ जबलपुर से प्रकाशित हुआ है।

पूज्य आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी द्वारा रचित संस्कृत भक्तियाँ प्रसाद गुण से समन्वित है। अन्य प्रचलित भक्तिपाठों की अपेक्षा इन भक्तियों की भाषा सरल है। स्वयं आचार्य श्री ने हिन्दी पद्यानुवादभी किया है। प्रसिद्ध वरिष्ठ विद्वान पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य ने हिन्दी अन्वय किया है। **'भक्तिसंग्रह'** आचार्य प्रवर ज्ञानसागर की नवम संस्कृत रचना है, जो पूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के 25 वें मुनि दीक्षा वर्ष (संयम वर्ष) के अवसर पर कलकत्ता के निग्रन्थ साहित्य प्रकाशन समिति द्वारा प्रकाशित है।

'भक्तिसंग्रह' में आचार्य श्री ने सिद्धभक्ति (छ छन्द) श्रुतभक्ति (5), चारित्रभक्ति(6), आचार्य भक्ति-6, योगिभक्ति-5, परमगुरुभक्ति-5, चतुर्विशति तीर्थंकरभक्ति-10, शान्तिभक्ति-5, समाधिभक्ति-29, चैत्यभक्ति-6, प्रतिक्रमणभक्ति-22, और कायोत्सर्ग भक्ति-4 छन्दों में इस प्रकार कुल 101 सं. छन्दो मे भक्तियो का प्रणयन किया है वहाँ यह उल्लेख है कि कुन्दुकुन्दाचार्य की कुल 108 गाथाओं में 8 भक्तियाँ मिली है। आचार्य ज्ञानसागर जी ने संस्कृत भक्तियाँ 'उपजाति' छन्दो में रची है।

सिद्धभक्ति: आचार्य कुन्दकुन्द ने 12 गाथाओ में सिद्धों के गुण भी, स्थान, आकृति और सिद्धि मार्ग का निरुपण किया है। वहाँ आ. ज्ञान सागर ने छः छन्दो मे सिद्धो के स्वरूप का वर्णन करते हुए उनकी वन्दना की है। प्रत्येक छन्द के अन्तिम चरण में नमामि तां शिच लब्धये में कहकर सिद्धो को आत्मगुणों की प्राप्ति के लिये नमस्कार किया है—

सिद्धयन्ति सेत्स्यन्ति पुरा-च सिद्धाः,
स्वाभाविक ज्ञानतया समिद्धाः।

भव्यानितस्सताविकवर्त्य नेतुं,

नमामि तां श्चिद गुणलब्धये तु ॥1 ॥

सहज शुद्ध आत्म स्वरूप के ज्ञान से सम्पन्न जीव वाले मान में सिद्ध हो गई है, भविष्य में सिद्ध होगे और भूतकाल मे भी सिद्ध हुए हैं, अत: भव्यजीव के स्तुत्य मार्ग पहले जाने के लिए है और चेतन्य गुण की प्राप्ति के लिए उन सिद्ध परमेष्ठियों को नमस्कार करता हूँ।

श्रुतभक्ति—:कुन्द-कुन्द ने 11 प्राकृत गाथाओं में द्वादशों का उल्लेख करते हुए श्रुत की स्तुति की है। आ. ज्ञान सागर ने 5 छन्दों में श्रुत देवता की आराधना करते हुए अपनी पवित्रता की कामना की है।

संसारतापोज्झयि सामतोया,
विनिर्गताऽर्हत्तु हिनाद्रितो या।

नेत्रेन्दु संख्यानलसत्सदङ्गात,
पुनातु सा मामपि वाक्सुगङ्गा ॥1 ॥

तीर्थंकर से तुङ्ग हिमालय पर्वत पर से बह निकली,
द्वादधांग मय तरंग वाली जिसकी सुविपुल धारभली।

जिसका समता मय जल पी लेने से भवसन्ताप टरे,
यह जिनवाणी गंगा मुझ जैसे के भी सब पाप हरे ॥1 ॥

चारित्रभक्ति—इसे पञ्चाचार भक्ति भी कहा गया है। यह उपजाति छन्दों में आचार्य प्रवर ने पंच विध आचार-दर्शनाचार, ज्ञानाचार चरित्राचार, तपाचार और वीर्याचार को चारित्र मानकर उनकी स्तुति की है—

यस्यानुभावात्पदयोः पतन्ति,
शक्रदयोऽप्युद्यमिनो भवन्ति।

छेत्तुं जना जन्मनगं कलित्रं!
नमामि तत्पञ्चविधंचरित्रम ॥1 ॥

जिस चारित्र के प्रभाव से इन्द्र आदि भी चरणो मे नमते हैं, और सांसारिक प्राणी संसार रूपी पर्वत को छेदने के लिए तत्पर होते है, ऐसे कलह (संघर्ष) से रक्षा करने वाले उस पंचविध चारित्र को मै नमस्कार करता हूँ।

आचार्य भक्ति—इस प्रकरण मे छः छन्दो में आचार्यो के उत्तम गुणों का उल्लेख करते हुए उनसे चतुर्विधसंघ के लिये सुखकारक होने की कामना की है—मोक्ष के लिये सार भूत होने से अत्यन्त उत्कृष्ट दर्शन ज्ञान, चारित्र, तप और वीर्य के भेद से पॉच प्रकार के आचार का जो स्वयं आचरण करते हैं और अन्य साधुओं से कराते है, वे गणधर (गणेश) चतुर्विध संघ के हर्ष के लिए है।

मुमुक्षु वर्गस्य पथीङ्गतेन,
ये दुष्पथस्य प्रतिषेधनेन।

प्रर्वत्तनायोद्यत चित्तलेशाः,
संघस्य ते सन्तु मुदे गणेशाः ॥ 2 ॥

जो अपनी निर्दोषचर्या से एवं कुमार्ग दूषित आचरण के निषेध से मोक्षाभिलाषी साधु समूह को मोक्षमार्ग में लगाने के लिए तत्पर हैं; वे गणेश—गणधर—आचार्य साधु संघ के लिये सुखदायक हों।

योगिभक्ति—योगिभक्ति मे आचार्य प्रवर ग्रीष्म, वर्षा और शीत के भेद से तीन योगों को धारण करने वाले मुनियो को नमस्कार करते हुए भक्ति करते हैं जो मुनि यति भयंकर गर्मी में पर्वत के शिखर पर सूर्य किरणों के सन्मुख होकर मन वचन काय के व्यापार को नियंत्रित करते हैं, वर्षाऋतु में जो वृक्षतल में ध्यान लगाते है, कम्पनकारी शीतकाल में जो चतुष्पथ पर निवास करते हैं, जिन्होंने अपना मन आत्मा में लगा कर शरीर को स्थिर कर लिया है, व्रतों, समितियों, को धारणकर धर्मध्यान में रत परिषद् विजय से संवर को करने वाले योग त्रय के धारक ऐसे यतियों, मुनियों, योगियों के लिए नमस्कार है—नमोस्तु योगत्रय धारकेभ्यः ॥ 2 ॥

परमगुरुभक्ति—परम गुरु भक्ति के पाँच पद्यों में आचार्य ने परम दिगम्बर गुरु के स्वरूप का विवेचन करते हुए आत्महित मे सहायता की कामना की है। जो सन्त वृक्ष की कोटरों मे, श्मशान तथा शून्य घरो में, पर्वत की गुफा में, ध्यान निमग्न रहते हैं, जो पक्षियों के समान एक स्थान पर निवास नहीं करते, परिग्रहरहित होने से जो वायु सदृश है, सर्वत्र पृथ्वी पर निर्बाध बिहार करते है: निश्चय से जो बालक के समान विकार रहित है: जो उत्तम दिगम्बर है जो नीरस भोजन को भी प्रेम से ग्रहण करते हैं, गरिष्ठ, इष्ट और स्वादिष्ट भोजन को विषवत् मानते हैं, जिनकी प्रवृत्ति जगत् को आश्चर्य कराती है: ऐसे अर्हन्त और सिद्धों के पश्चात् आचार्य, उपाध्याय और साधु जो पंच परमेष्टी पद के आधारभूत है, वे परम गुरु सदा **विश्व-प्राणिमात्र के सहायक बने** ते सन्तु नित्यं गुरुवः सहायाः ॥

चतुर्विंशतितीर्थंकर भक्ति—इस शीर्षक भक्ति में वर्तमान अवसर्पिणीकाल वृषभादिवर्द्धमान पर्यन्त चौबीस तीर्थंकरों की नामोल्लेख पूर्वक स्तुति की गई है—5 पद्य है।

तीर्थङ्करभक्ति—के पाँच पद्यों में—अनन्त चतुष्टयके धारक, अष्ट प्रातिहार्ययुक्त, रत्नत्रय के आधारभूत, पंचकल्याणको के धारक सुरासुरनरों द्वारा वन्दित है, ऐसे तीर्थंकरों को नमस्कार किया गया है **नमोऽर्हते तीर्थंकृते जिनाय।**

शान्तिभक्तिः—जिस प्रकार सूर्य से पीड़ित व्यक्ति के लिये वृक्ष सर्प से पीड़ित के लिये मंत्र, अंधकार को नाश करने के लिए सूर्य सहायक है: उसी प्रकार भवताप विनाशनाय, अर्हन्त की शरण शान्तिदायक होती है। 5 पद्य

समाधिभक्ति—के 21 छन्दो मे आचार्य प्रवर ने आत्मस्वरूप का चिन्तन करते हुए पर पदार्थों से राग छोड़कर आत्म स्वरूप में स्थिरता आत्मलीनता। समाधि सम्पन्नता की भावना आयी है।

नित्योऽहमेकः खलु चिद्विलासी, नानाजद्रो दृश्य विधिर्विनाशी।
कायस्तु मत्तः पर एष साधि : सम्पन्नतामेत्व धुनारसमाधिः ॥ 2 ॥

सर्वे पदार्थो निजवर्तनेन, स्वयं प्रवर्तन्त इतः किमेनः।
कुर्वन्वृथाज्ञस्त्वधियो विराधी, सम्पन्नतामेत्वधुनासमाधि ॥ 4 ॥

निश्चय से ज्ञानानद स्वभावी मैं नित्य हूँ। दिखाई देने वाले अनेक अचेतन पदार्थ नाशवान है और तो तथा मानसिक पीड़ा से सहित यह शरीर भी मुझसे भिन्न है। सारे पदार्थ अपनी परिणमन शक्ति से स्वयं ही परिणमन करते हैं, तब अज्ञानी मानव व्यर्थ ही राग द्वेष करता है। अतः अब मुझे समाधि प्राप्त हो।

चैत्य भक्ति—के छः छन्दों में नन्दीश्वर द्वीप, मेरूपर्वत, अढ़ाई द्वीप, चतुर्विंश स्थानों, मानुषोत्तर पर्वत, जम्मूवृक्ष, श्री कुण्डलगिरी आदि स्थानों में विधमान जिन प्रतिमाओं जिनके दर्शन से शान्ति और समता भाव प्राप्त होते हैं, को नमस्कार किया गया है।

चैत्यानि वन्दे जिन पुङ्गवानाम् ॥

प्रतिक्रमण भक्ति—इसके 22 छन्दो में आचार्य ने कृत दोषों के विषय में अपनी निन्दा करते हुए उनकी मिथ्या होने की प्रार्थना की है—

चराचराणामपि सम्प्रपङ्क्तं
कृतं मया कारितमामतंच,

—आमत-अनुमोदित

विध्वंसनाद्यत्र धरातले यत्
सम्प्रार्थ्यते नाथ! मृषाक्रियेत् ॥ 3 ॥

कुतोऽप्यभूद् भो जिनपादपवित्रं, संशोधितं से भवताच्चरित्रम।
यदेतदेवास्ति शिवश्रिमेऽतः सम्प्रार्थ्यतेर्थ्यतेनाथ! मृषा क्रियेत् ॥
2 ॥

हे जिनेन्द्र! यदि मेरा चरित्र किसी कारण से अपवित्रं दूषित हुआ होते तो वह संशोधित शुद्ध होवे, क्योंकि निर्दोष चरित्र ही मोक्ष लक्ष्मी के लिये होता है। अतः हे नाथ! प्रार्थना है कि मेरा अपराध मिथ्या किया जावे ॥ 22 ॥

कायोत्सर्ग भक्तिः—इसके चार पद्यों में आचार्य प्रवर ने स्पष्ट किया है। नश्वर सांसारिक पदार्थों को जानकर शरीरादि से भी ममत्व करना व्यर्थ है। कायोऽपि नाम मम किं परेण—यह शरीर भी मेरा नहीं है। दूसरे क्या?

यदा चिदानन्दमयः प्रकाशः,
परिस्फुटः सद्गुणसम्पदाः।

स्वीयादद्भुतोदार सुधारसेण,
कायोऽपिनायं मम किं परेण॥ 3॥

जब समीचीन गुण रूपीं सम्पत्ति के साथ वह ज्ञान है।

आनन्द से तन्मय अन्तर प्रकाश प्रकट होता तब स्वकीय आश्चर्यकारी उत्कृष्ट अमृत रस से जान पड़ता है। कि यह शरीर मेरा नही है तब दूसरे से क्या।

इस प्रकार 101 उपजाति छन्दों में रचित भक्ति संग्रह मे आचार्य प्रवर ज्ञान सागरश्री महाराज की काव्य प्रतिमा के साथ प्राणिमात्र के हितार्थ मर्मस्पर्शी आत्म शोधक सूक्तियाँ संकलित है। जो उनके गम्भीर ज्ञानार्जन-तप त्याग से प्रसूत है। भाव एवं कला दोनों ही दृष्टियों से यह रचना संस्कृत मुक्तक साहित्य की अमूल्य निधि है। मानव-मात्र के मोक्ष पथ मे पाथेय स्वरूप है।

–1910, खेजड़े का रास्ता,
जयपुर

□

सम्यक्त्वसार शतक : एक सामान्य अवलोकन

☐ डॉ. श्रीयांश कुमार सिंघई

संस्कृत वाङ्मयकी अभिवृद्धि के लिए सम्यक्त्व सार शतक एक सक्षम दार्शनिक कृति है। जिसमें सम्यक्त्व को केन्द्रित कर उन अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों-सिद्धान्तों को प्रतिपादित किया गया है जिनका सम्यक्त्व के साथ विरोधि-अविरोधिपने का कोई सम्बन्ध हो सकता है। ग्रन्थ को महत्त्वपूर्ण इसलिए भी माना जा सकता है कि यह भोगविलासिता में निमग्न प्राणियों को मुक्ति साधना के लिए प्रेरित करता है तथा मुक्ति के उपायभूत मुक्तिमार्ग के तीनों सोपानों सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में मुक्ति के अग्रदूत सम्यग्दर्शन को प्रमुखता से विवेचित करता है। यह मुक्ति पुरुषार्थ का मूल है क्योंकि इसके बिना सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होते ही नहीं है।[1] जैन वाङ्मय भी बताता है कि सम्यग्दर्शन के कारण ज्ञान और चारित्र पूज्य अर्थात् सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र होते हैं।[2] इतना ही नहीं, मुक्ति का प्रारम्भिक व अपरिहार्य सोपान होने से इसका उपादेयत्व सहज ही जाहिर है। कम से कम हम जैसे गृहपरिधि केन्द्रित जिज्ञासुओं को तो है ही जिन्हे सम्यक्त्व की साधना अर्थात् सम्यक्त्व प्रादुर्भाव का पुरुषार्थ अत्यन्त अपेक्षणीय है क्योंकि इसके बिना हमारा मनुष्य जीवन व्यर्थ है।

ग्रन्थ का प्रारम्भ वस्तुनिर्देशात्मक मङ्गलाचरण से होता है जहाँ संकेत मिलता है कि जिस प्रकार सम्यक्त्व सूर्योदय से मिथ्यात्व रूपी तमोरात्रि विलीन हो जाती है[3] वैसे ही इस लघु कृति सम्यक्त्व सार शतक से जगज्जनों का अज्ञानान्धकार विलीन होगा।

सम्यक्त्व को प्रमुखता से प्रतिपादित पुरःस्थापित करने का उत्साह ग्रन्थकार को क्यों है इसका उत्तर उनके ही शब्दों में लीजिए—

> **सम्यक्त्वमेवानुवदामि तावद्विपत्पयोधेस्तरणाय नावः।**
> **समं समन्तादुपयोगि एतदस्मादृशां साहजिकश्रियेऽतः**[4]

---

1. रयणसार गाथा 2
2. सर्वार्थसिद्धि 1/1
3. वही 2
4. वही 3

अर्थात् सम्यक्त्व विपत्तियों के सागर को तैरने पार करने के लिये नाव है, हम सबके सहजकल्याण **के लिए** हर दृष्टि से उपयोगी है अत: मैं उसका ही गुण गान करता हूँ।

ग्रन्थ में कुल 103 श्लोक हैं जिनमें अंतिम में 3 प्रशस्ति, शेष श्लोकों में अभिप्रेत विषय निरुपित हुआ है। यहाँ सम्यक्तव की अपनी अनूठी व्याख्या है—

समञ्चतीत्येव हि सम्यगस्ति तत्त्वं तद्भाव इति प्रशस्ति।
शुद्धात्मताया वचनं तदेतदङ्गीकरोत्युत्तम मर्त्यचेत:।[1]

यहां 'सम्' उपसर्ग पूर्वक "अञ्चुगतिपूजनयो:"

धातु से समञ्चतीति सम्यक् पद है। समयाने परिपूर्ण शुद्ध, सत्य आदि तथा अञ्चति गच्छति जानाति याने जानता है। इस प्रकार सम् को समि आदेश और अञ्चनीति अर्थ मे अञ्चु से क्विनट प्रत्यय कर उसका सर्वापहार लोप, अनुबंधलोप, नुम् का लोप तथा कत्व कर समि + अक् = सम्यक्[2] पद निरुपन्न होता है। इस प्रकार इसका अर्थ पूर्णज्ञान भी होता है, जो हमारे ग्रन्थकार को अभिप्रेत है, यहाँ उनकी सूक्ष्म चिन्तना दृष्टि सहज उजागर होती है और मनीषी ग्रन्थकर्ता के बौद्धिक गाम्भीर्य को व्यक्त करती है। साधारणत: सम्यक् का अर्थ सही, सत्य, पूर्ण आदि से लिया जाता है पर यहाँ मनीषी ग्रन्थकर्ता की मनीषा ने "सम्यक् का अर्थ पूर्णज्ञान सिद्ध कर दिया है, जो शब्द शास्त्र और तत्त्वज्ञान मूलक दर्शन शास्त्र की मर्यादाओ के कतई प्रतिकूल नही है।

तद्भाव: तत्वं के अर्थ में सम्यक् पाद मे 'त्व' प्रत्यय का योग करने पर 'सम्यक्त्व पर उपपन्न हो जाता है। श्री 105 क्षुल्लक ज्ञानभूषण जी महाराज ने स्वय लिखकर—इसके अर्थ को अभिव्यक्त किया है—"सम्यक्पना अर्थात आत्मा की शुद्ध अवस्था सर्वज्ञता और वीतरागता।"[3]

सम्यक्त्व का विपरीतभाव मिथ्यात्व है जिसके कारण यह आत्मा कर्ममलिनसत्व होने से तथा निमित्तमित्तिक से भी अतत्त्व स्वरूप होने से अनादि से अब तक सदैव दु:ख पाता रहा है। श्लोक इस प्रकार है—

मिथ्यात्वमेतस्य च वैपरीत्यं यतोऽकमात्माऽयमुपैतिनित्यं।
अनादित: कर्ममलीमसत्वान्निमित्तनैमित्तकतोऽप्यतत्वात्॥[4]

मिथ्यात्व की सामर्थ्य किवा बन्धकारणता का उल्लेख करते हुए कहा है कि यह सभी अनर्थों का मूल है—यथा

---

1. आप्टे, कोश पृष्ठ 1086
2. सम्यक्त्वसारशतक श्लोक 3 स्वोपज्ञव्याख्या पृष्ठ 6
3. वही 5

अहन्त्वमेतस्य ममत्वमेतन्मिथ्यात्वनामानुदधन्तथेतः ।
बन्धस्य हेतुत्वमुपैत्यमुष्योपालम्भिनश्चौर्य मिवात्रदस्योः ॥6 ॥[1]

—इस संसारी प्राणी की अहन्ता और ममता करना ही इसका पागलपन है, भूल है, खोटापन या बिगाड़ है जिसे आगम भाषा में मोह या मिथ्यात्व कहा है अथवा यो कहो कि शरीरादि कों में अहंकार ममकार लिए हुए है, पर वस्तुओं को हथियाये हुए है यही इसका मिथ्यात्व है... । संसारी आत्मा पर पदार्थों में मोह-राग-द्वेष किये हुए है सो इसका यह अपराध ही इसके लिये बन्ध कारण बन रहा है, तीन लोक का प्रभु होते हुए भी दब्बू बन कर भयालु होते हुए बन्धन में बंधा है ।

सम्यक्त्व की अवधारण को अन्तस्थ बनाने के लिए जिनागम के जिन पहलुओं को समझने की आवश्यकता है, उन्हें इसे ग्रन्थ में स्थान मिला है तद्विषयक ऊहापोह भी , जो हमारे द्वारा मननीय या विचारणीय है । वे पहलू विन्दुशः इस प्रकार है—

(1) निमित्त नैमित्तिक विचार[2]

(2) षड्द्रव्य स्वरूपनिर्देश[3]

(3) जीव पुद्गल की कादाचित्वकी स्वतंत्रता-परतंत्रता[4]

(4) प्रकृति प्रदेशादिबन्धभेद निरूपण[5]

(5) कर्मजनित सुख-दुःख कब नहीं[6]

(6) काललब्धि और क्षयोपशमादि पंच लब्धियों का निरुपण[7]

(7) प्रथमोशम सम्यक्त्व एवं तत्पश्चात् का विवेचन[8]

(8) सम्यगृष्टि की परिणति[9]

(9) सम्यग्दृष्टि-मिथ्यादृष्टि मे अन्तर[10]

(10) "द्रव्यलिङ्गी मुनि अधर्मात्मा एवं अव्रत सम्यग्दृष्टि धर्मात्मा" का कथन[11]

(11) मिथ्यादृष्टि आत्मा में धर्म-धर्मी तादात्म्य विषयक शङ्का समाधान[12]

(12) सम्यक्त्वीके प्रशम संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य का वर्णन[13]

(13) एतदर्थ धर्म ध्यान की कारणता का प्रतिपादन[14]

---

1. वही 16
2. वही 6-7
3. वही 8-9-10
4. वही 11
5. वही 17
6. वही 18-20
7 वही 23-28
8 वही 31-34
9. वही 29-30-35
10 वही 36-39
11 वही 41-42
12 वही 43-45
13 वही 48-51-53
14 वही 52

14 सम्यग्दर्शन के आठ अङ्गों का वर्णन[1]

15 सम्यग्दृष्टि की सदाचारिता अपापवृत्ति एवं सुश्रावकत्व का प्ररुपण[2]

16. क्रमश कर्मबन्ध की हीनता का प्रतिपादन[3]

17. तीन कषाय की हानि होने पर आत्ममुखाभिवृत्ति का होना [4]

18. "शुद्धभाव ही भेदविज्ञान है जो सातिशय अप्रमत्त के होता है उससे पहिले नही" का कथन [5]

19. श्रेणी आरोहक के भी रागांश रहते शुद्धोपयोग नहीं होता, इसका समर्थन एवं विचार[6]

20. ज्ञान चेतना-अज्ञानचेतना का निरुपण[7]

21. 4 थे से 7 वें, 7 वें से 10 वें तथा 10 वें से आगे कि गुणस्थानों में दर्शनज्ञान चारित्र का विशिष्ट नामनिरुपण[8]

22. चारित्र मोह के सद्भाव में सम्यक्त्व में कमी का कथन[9]

23. अष्टमादि गुणस्थानों मे रागांश की क्षीणता[10]

24. रागांश के भेदसे पुलाक आदि मुनि भेद निरुपण[12]

25. शुद्धोपयोग के अपर नाम[13]

26. यथाख्यात चारित्र निरुपण इत्यादि[14]

उपर्युक्त लिखित सभी पहलुओं को प्रौढ़ संस्कृत में प्रवाहपूर्ण शैली में अन्त्यानुप्रास की आलङ्कारिक छटा के साथ हुआ है। कही कही कोश देखकर अर्थावगम का श्रम अवश्य करना होता है।

ग्रन्थकार, जो चारित्र चक्रवर्ती आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज के नाम से आज विश्रुत है उनका श्रुताभ्यास अत्यंत प्रौढ़ प्रतीत होता है और उन्हें बहुश्रुज्ञ होने का गौरव देता है। इस लघुकृति में ही लगभग 15 शास्त्रों, जैसे समयसार, प्रवचनसार, पंचास्तिकाय, तत्वार्थसूत्र, देवागमस्तोत्र, ज्ञानार्णव, परमात्मप्रकाश, आदिपुराण, आत्मख्याति, तत्वार्थसार, तात्पवृत्ति, पंचाध्यायी मोक्षमार्गप्रकाशक, छहढाला, के उद्धरणों को प्रमाणतया पुरस्थापित किया है।

☐ व्याख्याता जैन दर्शनशास्त्र

केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ

जयपुर

---

1. वही 54-61
2. वही 62-64
3. वही 65
4. वही 66
5. वही 67-68
6 वही 69-72
7. वही 73-77, 85-88, 40
8. वही 81-83
9 वही 84
10. वही 89-90
11. वही 91-93
12. वही 9435,

हित सम्पादक : एक अध्ययन

□ शीतल चन्द जैन, प्राचार्य

आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी द्वारा लिखित यह अप्रकाशित कृति है। इस ग्रन्थ में 138 पद्य संस्कृत में निबद्ध है। लेखक ने पद्यों के अनुसार विस्तार से हिन्दी अर्थ भी दिया है। यह जैन साहित्य अनूठी कृति है। आचार्य ज्ञानसागर जी द्वारा लिखित प्रकाशित कृतियों में इस कृति का नाम कहीं भी उपलब्ध नहीं है।

ग्रन्थ के मंगलाचरण में जैन दर्शन को नमस्कार किया है। इसके बाद ग्रन्थकार ने कृति के नाम के अनुरूप दूसरे पद्य में कृति के साथ नाम की सार्थकता बतलाते हुए कहा है कि जिस दर्शन से अहित का नाश होकर हित सम्पादन हो किसी का भी बुरा न होकर सबका भला हो, जिससे प्रत्येक आत्मा अपना उद्धार कर सके, उसका नाम वास्तविक धर्म हो सकता है और वही हित सम्पादक है। इस कृति का प्रतिपाद्य विषय संक्षेप में इस प्रकार है—

ग्रन्थकार ने आत्मा के स्वरूप का प्रतिपादन करते हुए साधक के प्रकार बतलाकर योगी और गृहस्थ में अन्तर प्रतिपादित किया है। लोकधर्म परमार्थधर्म का विवेचन करने के बाद पुरुषार्थ का स्वरूप उसके भेद और त्रिवर्ग का स्वरूप विस्तार से बताया है। इसके बात लेखक ने सज्जाति मुक्ति का कारण नहीं है, इसके सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है। इसके सम्बन्ध में विस्तार से विचार किया है। इसके अन्तर्गत यज्ञोपवीत पर भी सुन्दर विवेचन है।

ग्रन्थकार ने सद्गृहस्थ के रहन सहन, भोजन आदि की शुद्धि पर भी तर्क पूर्वक विचार किया है। भोजन में कौनसी वस्तु ग्राहय है। कौन सी वस्तु त्याज्य है। भोजन किसके हाथ का बना हुआ लेना चाहिए, इत्यादि बिन्दुओ पर सद्गृहस्थ की दृष्टि से विचार किया है। साथ में पात्रों के भेदों की चर्चा की है। इसके बाद नवधा भक्ति की विवेचना नवीन ढंग से की है। जो पाठक के ह्रदय को छू लेती है। साधु की चर्या बतलाते हुए मुक्ति कब मिलती है? इसकी सुन्दर व्याख्या की है।

ग्रन्थकार ने प्रस्तुत कृति मे मुख्य रूप से सज्जातित्व पर विचार करते हुए लगभग 35 पद्यों में लिखा है कि व्यक्ति जन्म से महान नही होता है अपितु कर्म से महान होता है और अनेक उद्धरणों को देते हुए विस्तार से संस्कारो की चर्चा की है संस्कारों में प्रमुख रूप से यज्ञोपवीत की चर्चा करते हुए लिखा है कि यज्ञोपवीत आंशिक व्रतो का प्रतीक नहीं है अपितु अलंकार (आभूषण) का प्रतीक है जिस प्रकार कटिसूत्रादि अलंकार पहने जाते हैं उसी प्रकार यज्ञोपवीत भी एक आभूषण है। यदि इसे व्रतों का चिन्ह माना जाये तो तिर्यञ्चों एवं महिलाओं के भी व्रत होते हैं, उन्हें भी यज्ञोपवीत धारण करना

चाहिए परन्तु ऐसा नहीं देखा जाता है। यदि इसे पूर्ण व्रतों का चिह्न माना जाए तो मुनिराजों को भी धारण करना चाहिए क्योंकि वे पूर्णव्रती हैं।

यज्ञोपवीत को पूजन एवं आहार देने के लिए अनिवार्य नहीं माना है। उक्त क्रियाओं के लिए यदि यह अनिवार्य है तो महिलाओं को भी यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए क्योंकि वह आहार देती हैं और प्रतिदिन पूजन भी करती हैं॥

इसी प्रकार शूद्रों की चर्चा करते हुए स्पष्ट लिखा है कि सत्शूद्र मुनियों को आहार दे सकता है। क्योंकि सत्शूद्र सम्यग्दर्शन प्राप्त कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है, अतः ग्रन्थकार ने प्रत्येक जीव को समान मानते हुए पिण्डशुद्धि को मुक्ति का कारण नही माना है। प्रथमानुयोग के कई ग्रन्थों का उदाहरण देते हुए सुदृष्टि सुनार जैसे जीवों की मुक्ति को दिखाते हुए कहा है कि पिणडशुद्धि को मुक्ति में कारण मानना मात्र कट्टरवादिता ही है।

आदिपुराण में जो संस्कारों की चर्चा की गई है उसके संबंध में ग्रन्थकार ने स्पष्ट किया है कि वह चर्चा ऋषभदेव ने भरतादि के लिए इसलिए की है कि आगे आने वाली प्रजा सस्कार विहीन न हो और आदर्श समाज की संरचना हो अतः यज्ञोपवीत आदि संस्कारों का विधान यदि व्रतो मे किया जाता है तो आपत्ति नहीं है परन्तु मुक्ति में इनको अविनाभावी नही माना जा सकता है। वस्तुतः जैसा कि आदिनाथ पुराण में लिखा है—

"कण्ठेहार लता बिभ्रेत कटिसूत्र कटीतटे"।

इत्यादि पद्य में स्पष्ट लिखा है कि भगवान ऋषभदेव के कंठ में दिव्य हार शोभा दे रहा है कमर में करधनी और वक्षः स्थल पर यज्ञोपवीत नाम का आभूषण था जिससे वे महापुरुष ऐसे प्रतीत हो रहे थे। जैसे कि गंगा की धारा से युक्त पर्वतराज ही हों। इसी प्रकार अभिषेक पाठ मे भी "इन्द्रोऽहं निजभूषणार्थकमिदं यज्ञोपवीतंदधे।"मुद्रा कंकण शेखराण्यऽपि तथा जैनाभिषेकोत्सवे"॥

इस पद्य में भी कहा गया है—

हे भगवन! मैं आपके अभिषेक के लिए इन्द्र का स्वरूप धारण कर अपने शरीर को अँगूठी कंगन, कुण्डल तथा यज्ञोपवीत आभूषण धारण कर रहा हूँ। अतः यज्ञोपवीत को आभूषण के रूप मे ही स्वीकार किया गया है।

पद्मपुराण में भी यज्ञोपवीत को स्वर्णमय रत्नजटित कहा है अतः जनेऊ को तत्कालीन समय में व्रतियो का आभूषण माना जाता था।

इसी प्रकार ग्रन्थकार ने ऐसे लोगों का भी तर्कपूर्ण खण्डन किया है जो यज्ञोपवीत आदि से आयु का अल्प या ज्यादा होना मानने हैं जो इस प्रकार की धारणा रखने वाले लोग हैं, उनका कहना है कि अधिक जीवित रहने क लिए तीन जनेऊ धारण करना चाहिए एवं पुत्र प्राप्ति के लिए पाँच जनेऊ धारण करना चाहिए।

कर्मवाद से इनका कोई मेल नहीं बैठता है; क्योंकि मनुष्य की भुज्यमान आयु किसी भी उपाय से बढ़ नहीं सकती। इस प्रकार ग्रन्थकार यज्ञोपवीत जैसे संस्कारों को पूजन अभिषेक आहार आदि क्रियाओं के लिए अनिवार्य नही माना है।

सद्शुद्रों को भी संस्कारविहीन कहकर दान पूजा से वंचित रखना उचित नही है।

हित सम्पादक में सद्गृहस्थ का रहन-सहन कैसा होना चाहिए? इसकी विस्तार से चर्चा की है। ग्रन्थकार ने बाह्याडम्बरवादियों को भी तर्कपूर्ण समझाया है कि सखरा नखरा के विचार ने हमारे समाज में इतना अधिक जोर पकड़ लिया जिसका कोई ठिकाना नहीं। इस सन्दर्भ में भोजन का स्वरूप, भोजनशुद्धि, भोजन का स्थान, आदि की विस्तार से चर्चा कर कई भ्रान्तियों का निराकरण किया है। ग्रन्थ के अंत में नवधा शक्ति के स्वरूप में मनशुद्धि वचनशुद्धि एवं कायशुद्धि के स्वरूप को बतलाते हुए मनशुद्धि के विषय में लिखा है कि समझदार गृहस्थ का मन सूर्य के समान मार्ग-प्रदर्शक श्री मुनि महाराज को देखकर कमल की भांति प्रसन्न हो जाता है। वचनशुद्धि के स्वरूप को बतलाते हुए कहा है कि श्रावक मुनिराज के सम्मुख आवश्यक बात को छलरहित होकर विनम्रतापूर्वक निवेदन करता है। काय शुद्धि के विषय में भी ग्रन्थकार का नया दृष्टिकोण है परन्तु आगम सम्मत है। पापपूर्ण चेष्टाओं को छोड़कर सरलता को अपना लेना ही कायशुद्ध है। जिस प्रकार गरुड़ के पास सर्प अपने विषैलेपन को त्यागकर निर्विष बन जाता है उसी प्रकार गृहस्थ भी निष्पाप होकर काय की चेष्टा करता है।

इस प्रकार प्रस्तुत कृति मे आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी महाराज ने आगम के आधार पर निर्भीकतापूर्वक समाज में व्याप्त रूढ़िवादिता एवं कट्टरवादिया का तर्कपूर्वक समाधान कर गृहस्थों को प्रशस्त मार्ग दिखाया है, इस कार्य के लिए समाज इनका चिर ऋणी रहेगी।

☐ प्राचार्य
श्री दि. जैन आचार्य संस्कृत महा.
मनिहारों का रास्ता, जयपुर

☐

गुण सुन्दर वृतान्त का दार्शनिक पक्ष एवं उसमें निहित सन्देश

☐ कु. नीता जैन

आचार्य श्री ज्ञानसागर प्रणीत हिन्दी सस्कृत भाषा में लिखित सम्पूर्ण साहित्य उनकी दार्शनिकता को व्यक्त करता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि प्रारम्भ से ही गृहस्थ पद मे रहते हुए पंडित भूरामल शास्त्री के नाम से प्रतिष्ठित थे। बचपन से ही पारिवारिक समस्याओं से जूझते हुए जैन दर्शन में निष्णात विद्वानों से परिचय होने के कारण छात्रावस्था में ही आपके अन्दर दार्शनिकता का बीजारोपण हो गया। आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत धारण करते हुए आपने विरक्ति भाव धारण करके सम्वत् 2012 मे क्षुल्लक दीक्षा ग्रहण की। लगभग दो ढाई साल के बाद ही आपने मुनि दीक्षा ग्रहण की। कालान्तर में आचार्य पद प्राप्त किया और इस तरह गृहस्थ पद के प. भूरामल शास्त्री से क्षुल्लक ज्ञानभूषण एवं मुनि ज्ञानसागर के रूप मे प्रतिष्ठित हुए। इससे स्पष्ट होता है कि आपने अपना जीवन दार्शनिक ग्रन्थो के अध्ययन एवं ग्रन्थ प्रणयन में ही लगाया जिससे आपकी दार्शनिक दृष्टि गहन से गहनतम होती चली गयी।

प्रस्तुत आलोच्य कृति आचार्य सागर प्रणीत आधुनिक हिन्दी पद्य मे रचित एक सुन्दर रचना है। इसने मगधराज बिम्बसार अथवा श्रेणिकराजा के समय की एक घटना का वृतान्त है। जिसमे गुणसुन्दर नाम के एक व्यक्ति की आत्मगाथा का वर्णन किया गया है। इसमें कौटिम्बिक जीवन का यथार्थ चित्रण है। यह गृहस्थ जीवन के प्रत्येक अग को संस्कारित करने वाली है।

बिम्बसार उपवन में बैठे हुए एक देहधारी साधु की सजीव झांकी का दर्शन करते है और विचार करते हैं कि यह विधाता की कैसी अनुपम सुकृति है? मानो समस्त सृष्टि की सुन्दरता को इन्ही मे समाहित कर दिया गया हो। असमञ्जस मे पड़े हुए राजा के माध्यम से स्वयं ही प्रश्नो को उठाकर समाधानकर्ता के रूप में उपस्थित हुए है। राजा नतमस्तक हो योगिराज से विनम्र निवेदन करता है—

"हूँ जिज्ञासु यहाँ पर हे श्री योगि महाशय मैं,
क्यों घर छोड़ा आपने अहो इस नूतन वय में"।

मुनिराज समाधान करते है। मैंने अपने जीवन की सार्थकता को समझ कर मुनिपद धारण किया है।

"भोग और उपभोग योग्य साधन बहुतेरे हैं।
मेरे यहाँ भाग्य ने स्वयं लगाये डेरे हैं।

मुनिराज तत्व का चिन्तन करते हुए अपनी ही आत्मगाथा सुनाते हैं—

कौशाम्बी नगरी हमारी जन्मभूमि है। धनसंचय मेरे जनक है समश्री माता है। उनका, पुत्र 'गुण' सुन्दर सुभग इस नाम से प्रख्यात हुआ। युवावस्था में एक युवक से उसकी निष्प्रयोजन मित्रता हो गयी। वार्तालाप के दौरान उन्हें संसार की नश्वरता के सम्बन्ध में बहुत कुछ संकेत देना प्रारम्भ करता है।

प्रस्तुत विषय में पूज्य श्री ज्ञानसागर जी महाराज ने दार्शनिक शब्दावली का बड़े ही सरल, मर्मस्पर्शी और रोचक ढंग से प्रस्तुतीकरण किया है। कुछ निम्नस्थल दृष्टव्य है।

"यह संसार एक सराय है" समस्त संसार स्वार्थ पर प्रतिष्ठित है। इस संसार मे कोई किसी का साथी नही, किन्तु मोहवश प्राणी यह कहता है कि मैं तुम्हारा हूँ और तुम मेरे हो। यथार्थ में यह दुनिया सहज दुःखो से भरी हुई है और तो इस जीव के अन्त में शरीर भी साथ नही जाता। मॉ, बहिन, जननी, पिता, पत्नी, भाई यह सब स्वार्थ के धनी है। जीव धन प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के पापाचरण मे लगा रहता है। परिजन उसके कमाये हुए धन का उपभोग करते हैं किन्तु उसके कष्ट में कोई भी हाथ नही बंटाता।

"माता पिता के लिये भी सुत तुम तभी तक समझ लो।
जब तक कि इस भू भाग पर हे मित्र कहने में चलो॥

कवि पुनः इसी कथा के मध्य मे प्रद्युम्न कुमार की कथा का आश्रय लेकर संसार की नश्वरता को दार्शनिक शब्दावली के माध्यम से व्यक्त करते है।

विद्याधरों का समधिनायक कालसम्बर नामक राजा था उनकी सुभगा नाम की प्रिया थी किन्तु निःसन्तान थी। बेटे के बिना अपना कुछ भी महत्त्व नहीं समझती थी। एक बार आकाश मार्ग से जाते समय स्वविमान को बीच में ही अटका हुआ जानकर चिन्ता निमग्न हुए पुनः हिलती हुई महती शिला को देखकर उठाने पर बालक के दर्शन किये। क्योकि—

"जाके राखों साइयाँ, मार सके न कोय,
बाल न बांक कर सके, जो जग बैरी होय"।

इसके माध्यम से कवि ने इस तथ्य को उद्घाटित किया है कि आयु कर्म के शेष रहने पर कोई भी शक्ति ऐसी नही जो मानव के प्राणो का घात कर सके। इस प्रकार उस जीवित बालराशि को निरख कर दम्पत्ति का मोद वारिधि वृद्धिगत हुआ। सचमुच ही वह कोई सामान्य नही, महाबड़ भागी जीव था। उसकी यौवनावस्था तो सकल वैभव युक्त सहज ही अनुरागित करने वाली थी। किन्तु उसके लिये अभिशाप सिद्ध हुई, क्योंकि माँ के समीप जाने पर उसने कुछ विचित्रता का ही अनुभव किया। वह कहने लगी—

"मेरे लिए तो आज से तुम बने रति के दूत हो।
बोली न छूवो चरण मेरे तुम न मेरे पूत हो॥

जब कुमार माता के कुविचारो की ओर दृष्टिपात करता है तब वह येन-केन प्रकारेण समझाने का प्रयास करता है कवि ने अपनी संजीवनी लेखनी, से इसको प्रस्तुत किया है।

"तुम भी संभालों चित्त को, दो लात दुष्ट निमित्त को,
निःसंसार इस कुविचार में, खोवो न शील सुक्ति को"॥

हे जननि। तुम्हारी यह दुष्कामना तीनकाल मे भी पूरी नही होने वाली है। चाहे सूर्य भी इधर से उधार क्यों न हो जाये। वह नागिन की तरह फुङ्कार करती, लेकिन गरुढ की भांति वह उसका जहर उतार देता। कोई भी प्रपञ्च जब उसको सफल नही बना पाया। तब वह अपने कर से अपने ही अङ्ग को विदीर्ण कर लेती है, वह राजा से इस सम्पूर्ण वृतान्त को कहती है। राजा क्रोध से आक्रान्त पुत्र के प्रति युद्ध छेड़ देता है। किन्तु उसका कुछ भी बिगाड़ नही कर पाता। शोडशवर्षीय कुमार भी भूभांग पर सत्य के रूप मे प्रतिष्ठित होते है। क्योकि "सत्यमेव जयते"। सत्य की ही सर्वथा विजय होती है। कवि ने कथा के माध्यम से यह भी सिद्ध किया है "कि यह परिवार सब स्वार्थ का है। कोई किसी का साथी नही है।

"जब तक उनकी अभिरुचि के अनुसार करो चतुराई।
तब तक होवें अपने वरना करने लगें बुराई॥

किन्तु मोहवश यह अज्ञानी जीव अपने भाई बन्धुजनों की आशा पूरी करने मे लगा रहता है। वह यह विचार नही करता कि ये सब खाने भर के लिए ही है। दुःख और नरक की यातनाये जीव को अकेले ही भोगने पड़ेगी। फिर भी इस मायावी कौटुम्बिक जीवन की झांकी को देखता हुआ भी उसमें अहर्निश फँसा रहता है। उसक अभिलाषा यही रहती है कि मेरे कौशल से मेरे सहोदर धनाड्य हो जाये। उनकी चिन्ता करता हुआ अन्य धार्मिक क्रियाओ से अनभिज्ञ रहता है।

इसके विपरीत ज्ञानी कहता है, यह भाईचारा स्वार्थपूर्ण है, इसके लिए कौरव, पाण्डव, ऋषभदेव के पुत्र भरत‹ ॰ और बाहुबली, पार्श्वनाथ के उदाहरण हमारे आगम मे विद्यमान है।

"स्वार्थपूर्ण परिवार करे, मतलब की यारी।
अगर न मतलब सधे, वहाँ देवा है गारी।"

पुनः कवि संसार की क्षणभंगुरता को अपनी लेखनी से अभिभूत करते हुए कहते है—

"स्वेच्छया एक आता है तो दूसरा जाता है—

इस मायावी संसार मे जो कोई भी आया है अपना-अपना ध्येय लिये ढीला, शुष्क, कान्तिहीन हो जाता है। जो केश आज काले है, वही श्वेतता का रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार कोई भी चीज हमेशा एक सी नहीं रहती । देह के दुःख से ग्रस्त मानव को नातेदारी सब व्यर्थ की प्रतीत होने लगती है, क्योंकि

"है शरीर का काम सहज में गलना सड़ना,
पुद्गल यह जड़रूप सज्जनों किन्तु न जड़ना।

किन्तु अज्ञानी प्राणी मोह को छोड़ता नहीं है वह तो शरीर और चेतन दोनों को अभिन्न मानता है और जब तक वह इसे ऐसा मानता रहेगा तब तक निराकुलता को कभी भी प्राप्त नही कर सकता। क्योंकि निराकुलता में ही सुख पलता है।

इस प्रकार इस लघु कृति में कथानको के माध्यम से संसार, शरीर, भोगों से निर्विण्ण होने के संदेश को जन-जन तक पहुँचाने का प्रयास किया गया है तथा संसार के दु:खों की सजीव झांकी को मानव के समक्ष इस तरह प्रकट किया है कि मानव स्वत: ही उन दु:खो से परिमुक्त होने के लिए प्रयत्न करने लगता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट होता है कि आचार्य ज्ञानसागर की दार्शनिक मान्यतायें स्पष्ट थी और उनकी यह विशेषता थी कि दर्शन की गहन गुत्थियों को सरल और सहज भाषा में अभिव्यक्त करते जनसामान्य के लिये हृदयग्राही बना दिया है। यद्यपि इस आलोच्य ग्रन्थ को प्रथमानुयोग के ग्रन्थो मे स्थान मिलता एवं इसमें दर्शन जैसी दुरुर सामग्री को प्रतिपादित करना आचार्य का लक्ष्य नही है तथापि उन्होंने अपने जीवन के अध्ययन, अध्यापन, गहनचिन्तन एवं अपनी भावाभिव्यक्ति को सहज रूप मे स्थान दिया है।

अन्त मे यथा नाम तथा गुण एवं वर्तमान साधु परम्परा के मार्ग दर्शक, वर्तमान जिनशासन के महान उद्धारक, अद्भुत सन्त, समाधिसम्राट, आचार्य शिरोमणि परमपूज्यक 108 श्री विद्यासागरजी महाराज के दीक्षागुरु परमपूज्य आचार्य प्रवर ज्ञानसागर जी महाराज के श्री चरणों में सम्यक्त कौमुदी से ओत-प्रोत सन्मार्ग अभिलाषी होती हुई, नम्रीभूत होकर पुन: श्री चरणों में अनन्त मंगलमयी कामना के साथ श्रंद्धाजली समर्पित करती है।

☐

भाग्य-परीक्षा का समीक्षात्मक अध्ययन

☐ —डॉ. (श्रीमती) नूतन जैन

भाग्य परीक्षा हिन्दी भाषा मे काव्य है। इसमें कवि ने जैन-दर्शन के सारभूत सिद्धान्त अहिसा और अपरिग्रहवाद की प्रतिष्ठापना की है। इनके आधार पर ही महापुरुष धन्य कुमार के चरित्र को रेखांकित किया गया है।

इस ग्रन्थ में कवि ने यह सुस्थापित किया है कि मनुष्य को दूसरों के प्रति कैसा व्यवहार करना चाहिए। इसमे ग्रहृस्थाश्रम की मर्यादाओ, भाइयो के प्रति सद्‌भावना, पारिवारिक, समृद्धि, स्वार्थपरता का त्याग, सामाजिक मूल्य एवं र्प्रतमानों का सम्यक्‌ विवेचन समाहित है।

वस्तुत: आलोच्य ग्रन्थ यथा नाम तथा गुण है। इस ग्रन्थ के अनुशीलन से स्पष्ट होता है कि नायक धन्य कुमार निरन्तर अपनी परीक्षा देता रहा और सद्‌बुद्धि धर्म और पौरुष के बल से सदैव सफल होता रहा। यहाँ यह कहना समीचीन है कि कवि ने भाग्य को अकर्मण्यता व उदासीनता जैसे दुर्गुणो से समन्वित नही होने दिया है? अपितु पूर्वकृत कर्मो के फल से सन्निहित किया है।

समालोचको का अभिमत है कि किसी कृति की समीक्षा में अनुभूति एव अभिव्यक्ति दोनो को ही देखा जाना युक्तियुक्त है। ग्रन्थ के अनुशीलन के परिप्रेक्ष्य मे मेरा अभिमत है कि इस कृति मे अनुभूति एव अभिव्यक्ति का मजुल समन्वय एवं मणिकाचन संयोग है।

कथा नियोजन—कवि ने इस ग्रन्थ के समग्र कथानक और कथारंभ, भाग्य परीक्षा, नगर सेठ, पद प्राप्ति, ग्रहत्याग, ग्रहकलह, विवाह प्रक्रम, कुटुम्ब समागम, धन्य कौशाम्वी मे, धन्या का समन्वेषण न्यायप्रियता, कौशाम्बी से प्रस्थान, प्रायश्चित, धन्य कुमार का वैराग्य कुल 13 खण्डो मे विभाजित किया है। कल्पना के समन्वय से नायक धन्यकुमार के चरित्र का पूर्ण उत्कर्ष दिखाते हुए अहिसा एवं अपरिग्रहवाद जैसे जैनसिद्धान्तो को जैन सामान्य के समक्ष प्रस्तुत कर दिया है।

कथानक मे सर्वत्र उत्सुकता बनी रहती है घटनाये कौतूहल वर्धक है कथानक का आदि मध्य अन्त पाठक को सम्मोहित किये रहते है। कथानक मे शैथिल्य का दर्शन कही नही होता अत: पाठक एक श्वास मे ही पूरी कृति को पढ डालने का मन बना लेता है। कवि ने इस कृति के माध्यम से विघटन शील परिवार प्रणाली के स्थान पर सयुक्त परिवार प्रणाली का महत्व स्थापित किया है। कथानक के दृष्टिकोण से कवि का श्लाघ्य प्रयास है और सर्वथा सफल है।

पात्र योजना—इस कृति मे नायक धन्य कुमार के बुद्धि चातुर्य, कौशल परिश्रम, संतोष, शील, भ्रात, प्रेम, उदारता, प्रतिशोध रहित आदि समस्त नायकोचित गुणो का वर्णन हुआ है। कवि ने यही आदर्श स्थापित करते हुए संदेश दिया है कि हमें आपस मे एक दूसरे को दु:ख, बदले की भावना,

षडयन्त्र, ईर्ष्या, कलह, अनौदार्य, आदि के निमित्त नही बनना चाहिए। धन्य कुमार के तीन भाई उक्त दुर्गुणों के कारण पाठक का दिल नहीं जीत पाते और अन्ततः उसका मन उनके दुर्जनोचित व्यवहार से वितृष्णा से भर उठता है। कवि ने सेठ धनराज को एक असहाय एवं असमर्थ पिता के रूप में चित्रित किया है जो अपने पुत्रों के अनुचित कष्टकारक प्रस्तावों को चाहते हुए भी नहीं रोकपाता है। यद्यपि वह हिताहित का विवेक रखता है प्रतिष्ठा का स्वाभिमान भी दृष्टि में रखता है इस तरह वह पाठक के चिन्त पर एक सद्‌गुणी ग्रहस्थ के रूप में अंकित होता है। पुरुष पात्रों में राजा, सेठ, व नमाली सामन्त, सचिव आदि कई आनुषंभिक पत्रों का वर्णन कथा प्रवाह में प्रंसगानुकूल एवं सफल रूप में किया गया है।

नारी पात्रों के रूप में धन्य कुमार की आठ पत्नी पटरानी सुभद्रा एव कुसुमश्री, सोमश्री, सौभाग्य मंजरी, वरमाला, गीतकला, गुणवती, लक्ष्मीवती,—का चित्रण सम्यक् रूप से किया गया है। यद्यपि कवि ने इस सभी को पतिव्रता, रूपवान, गुणवान, धर्मप्रिय, सुशील, विनीत आदि सद्गुणों से विभूषित किया है। तथापि सुभद्रा का विशेष चरित्र पाठकों को प्रभावित करता है। वह पति के सुख-दुःख के साथ अपना सुख-दुःख समझती है और कर्तव्य के प्रति जागरुक रहकर कष्टमय मार्ग का अनुसरण करना अच्छा समझती है। यथा—

पति के सुख में हो सुखी-कष्ट में कष्ट सहे दे साथ सदा।
यह पत्नी का कर्तव्य एक इससे अल्प क्या हुआ कदा॥
(सुभद्रा का कथन पृष्ठ 98/54)

पति के अन्वेषण में नहीं सती कष्टों को देखा करती है।
उसके तो लिए समूची ही यह मंगलप्रदा धरती है।
(सुभद्रा का कथन पृष्ठ 9857)

नारी पात्रो मे धन्ना की भौजाइयो का अंकन नारी सुलभ मायाचार व ईर्ष्या से रहित दिखाया है यह प्रशंसनीय है। धन्ना के माता, पत्नियो की माता, प्रतिहारी, सखियो का चरित्रांकन सहायक पात्रो के रूप मे हुआ है। कवि को पात्र योजना मे पूर्ण सफलता मिली है। पाठक पात्रो से न केवल पूर्ण प्रभावित होता है, अपितु उसके आचरण को आदर्श मानकर स्वय भी प्रेरित होता है।

रस निरुपण—इस कृति की रस योजना से प्रणेता का सहृदयता, रसिकता, संवेदनशीलता, भावुकता आदि का सम्यक् परिचय मिलता है। मेरा अभिमत है कि आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज रस सिक्त और रससिद्ध कवीश्वर थे। सर्वाधिक आश्चर्य यह है कि वह विरागी, उदासीन वृत्ति एवं तपस्वी, साधक होते हुए भी रस निरुपण में पूर्ण सफल रहे हैं।

इस कृति में प्रसंगानुकूल सभी रसो का परिपाक प्राप्य है श्रृंगार रस अत्यन्त सात्विक, सहज, प्रभावक, एवं सम्प्रेषणीयता गुण युक्त है। मर्यादित एवं संयत है। इस रस का परिपाक कुसुम श्री, सुभद्रा आदि के सौन्दर्य निरुपण एवं विवाह प्रसंग मे प्राप्त होता है। कहीं भी अश्लीलता व घोर

श्रृंगारिकता का निरुपण नहीं होता। धन्ना अपनी पत्नी को छोड़कर अन्यत्र प्रस्थान करता है, तब वियोग श्रृंगार का दर्शन होता है।

यह कृति शान्त रस प्रधान कृति है जिसका सम्बन्ध सम्वेग, निर्वेद, ग्लानि, विरक्ति, वितृष्णा, जैसी मानवीय संवेदना व अनुभूति से है। शान्त रस का परिपाक करने में कवि ने अपनी साधना व तपस्या का अनुभव भी मानो उंडेल दिया है। मुनि महाराज विषयक चित्रण जैसे गोचरी श्रमण, आहार, उपदेश आदि स्थलों पर शान्तरस का सर्वोत्कृष्ट निर्देशन मिलता है।

रौद्र व वीभत्स आदि रसो का भी वर्णन है किन्तु यह सब मूलरस के लिए सहयोगी एवं उपादेय भूमिका निभाते हैं। वस्तुत: कवि की रस योजना उनके उद्देश्य में पूर्ण सहकारी है।

धन्य कुमार की विलक्षणता—यह ग्रन्थ भाग्य परीक्षा अर्थात् धन्य कुमार चारित्र है। इसमें चरित्र नायक धन्य कुमार की विलक्षणतात, बुद्धि चातुर्य, कला कौशल, न्यायप्रियता, धर्मप्रियता आदि का पूर्ण विवेचन पदे-पदे प्राप्त होता है। भाइयों के षडयन्त्र के वाद नायक की विलक्षणता दृष्टव्य है—

मुझे अब चाहिए करना कि जिससे वे सुखी होंवे।
रहुँ मैं दूर होकर के कि सुख की नींद वे सोंवें॥

वृथा मुझको निमित्त बना पाप का भार वे ढोवें।
करें क्या कब मरे यह यो समय को व्यर्थ वे खोवे॥

(पृष्ठ 35/55)

कला कौशल अवलोकनीय है। जिसमें वीणा वादन की चातुरी दिखती है—

फिर धन्ना ने भी वाणी के बन में जा उसे वजाई थी।
तब पहले से भी अधिक मृगों की भीड़ वहाँ लग पाई थी॥

अब गाता हुआ धन्य धीरे से जब था पुर की ओर बढ़ा।
वे मृग भी उसके पीछें, पीछे चल उन्हें था रंग चढ़ा॥

(पृष्ठ 139/15-16)

धर्मप्रियता अवलोकनीय है—

मेरे पास न यंत्र मंत्र था और न कला कुशलता थी।
सूखा बाग हरा हो इसमें एक धर्म ही है साथी॥

(पृष्ठ 62/49)

नारी चित्रण—इस कृति में कवि ने नारी चित्रण सामान्य परम्परा से हठकर किया है। कवि ने उसे नर की चेतना रूप ओजस्वी, प्रेरणा स्रोत के रूप में व्यक्त किया है। पुरुष का जब भी अभ्युदय

हुआ है उसके मूल में नारी ही रही है। धन्य कुमार के आध्यात्मिक उत्थान का मार्ग पटरानी भद्रा ने ही खोला है[1]।

धन्य कुमार की आँखे खुल गयी नारी अब तक भोग्या थी वह पूज्या गुराणी, माता-बन गयी।[2]

इसके अतिरिक्त नारी चित्रण से तत्कालीन सामाजिक परिवेश में नारी का स्थान, महत्त्व, आदर्श भी प्राप्त होता है।[3] नारी से आवश्यक कार्यों में सलाह मसवरा लिया जाता था। नारी की स्वाभाविक चातुरी सदैव प्रसिद्ध है। भोजन करते मैं ही सेठानी ने धन्ना का गुणशील की जानकारी कर ली।[4] कवि ने नारी को गृहस्थ धर्म की भूमिका के लिए अनिवार्य बताया है।[5] नारी की भव्यता "मेरा उद्देश्य न विषयभोग सत्संग सिर्फ अपनाती हुँ" गीत कला के कथन से झलकती है। भारतीय नारी की पति भक्ति एवं धर्म सर्वत्र प्रकट होता है।

नारी चित्रण में मलिनता भी स्पष्ट चित्रित कर दी गयी है। दृष्टव्य है—

"युवितयाँ है हुआ करती फँसाने के लिए नर को"।

दार्शनिकता—इस कृति के प्रणेता जैन दर्शन के मर्मज्ञ, निष्णात् विद्वान तपस्वी साधक है। अत: पग-पग पर सर्वत्र दार्शनिकता विद्यमान है। अवर्णवाद से पाप और संसार परिभ्रमण होता है—

बना पाप का द्वार अवर्णवाद यह भारी।
जिसके भीतर धंसी जा रही दुनियां सारी॥

ज्ञान गुण भी जीव को सुखकारी है। यहीं ज्ञान दूषित होने पर मिथ्या ज्ञान वन जाता है।[1]अपने अपने कर्म के वश जीव भ्रमण करता रहता है और सारे सुख दुख कर्मानुसार ही है। [2]शरीर और आत्मा का सम्बन्ध म्यान में तलवार के सदृश्य बताया है।[3] भोग रोग वर्धक है बिना सयंम के मनुष्य भव बेकार है। इसे पाना पत्थरों में मणि पाने के सदृश्य है।[4] संयम और साम्य मोक्ष के साधन कहे हैं।[5] संसार को रेल के मेल जैसा बताया है। धर्म ही जगत मे शरण है। धर्म मार्ग को प्रेरित करते हुए संदेश दिया है—

---

1. क्षुल्लक ज्ञान, भूषण: भाग्य परीक्षा पृष्ठ 160/11
2. वही पृष्ठ 161/16, 163/25
3. वही पृष्ठ 9/40
4. वही पृष्ठ 65/6
5. वही पृष्ठ 66/12
6. क्षु. ज्ञान भूषण, भाग्य परीक्षा पृष्ठ 146/27
7. वही पृष्ठ 155/64
8. वही पृष्ठ 166/40
9. वही पृष्ठ 164/29
10. वही पृष्ठ 155/67

धर्म किये हो स्वर्ग सुख धर्म किये निर्वाण।
धर्म पंथ साधन बिना नर तिर्पञ्च समान।।

भाषा—यह कृति हिन्दी भाषा में प्रणीत है। भाषा पर कवि का पूर्ण अधिकार है। भाषा भावों की सफल संवाहित है। सहज, सरल सरस भाषा का प्रयोग है। भाषा में तत्सम्, तद्‌भव, देशज शब्दों का प्रयोग है। संस्कृत निष्ठ शब्दों का भी प्रयोग किया है। यद्यपि सर्व साधारण कृति के भाव को हृदयगंम कर सकता है तथापि पाडित्यपूर्ण ऐसे जटिल प्रयोग भी हैं। जो अर्थद्योतन से पहले बुद्धि का प्रयोग चाहते हैं जैसे सिंचान कारण्य, प्राधूर्णिक, सौध, प्रणालिका, द्विरद, झटिति आदि।। भाषा में सर्वत्र नाद, तुकान्त गीतात्मकता व सौन्दर्य बोध है। भाषा मे ध्वन्यात्मक प्रयोग भी है जैसे—खननं-खननं, कच-कच चम-चम आदि। भाषा मे सूक्ति, लोकोक्ति, व मुहावरो के प्रयोग ने कृति में जान डाल दी। है। जैन दर्शन भी शास्त्रीय शब्दावली का भी प्रयोग है जैसे—वीचार, आचाम्ल निर्विकृति आदि। भाषा में पद मैत्री के साथ-साथ अन्य भाषाओ जैसे उर्दू, अरबी, फारसी के प्रचलित शब्दों का प्रयोग प्राप्त होता है।

जैसे—उजर, पैगाम, खिदमत् फिकर, गवाह, मौका, तमाशा, वन्दा, खुद आदि।

शैली—कृति मे सर्वत्र गेय शैली का प्रयोग है। कही-कही उपदेशात्मक सूत्रात्मक व विवेचनात्मक शैली का प्रयोग है।

छन्द—पूरी कृति मे गेय प्रधान अनुप्रशान्त, तुकान्त छन्द का प्रयोग है। वैसे भावानुकूल कहीं-कहीं लम्बे छन्द जैसे कुणिडलियाँ,गीतिका हर गीतिका, कुसुमलला का प्रयोग है तो कही-कही दोहा, छप्पय, लघु कुसुमलता का प्रयोग है। रेखता, गजल, कव्वाली, का प्रयोग है।

अलंकार—अलंकार विवेचन के सदर्भ में मेरा अभिमत है कि कवि को पूर्ण पांडित्य हासिल था, किन्तु वे उसे प्रदर्शन की ललक में नही रहे। उन्होंने सहज रूप से आये हुए अलंकारो का ही प्रयोग किया है। इनके अलकार योजना मे अनुप्रास कही-कही श्लेष का प्रयोग है और अर्थालंकारो मे प्रमुखत: उपमा, उत्प्रेक्षा, दृष्टान्त संदेह आदि अलंकारो को स्थान मिला है।

इस प्रकार "भाग्य परीक्षा" कृति हिन्दी जगत की सफलतम उपलब्धि है अनुभूति व अभिव्यक्ति दोनों ही सवल व सफल है। इस कृति मे अपरिग्रह व अहिसा सिद्धान्त का विवेचन ही मूल्य है। आज के तेजी से विघटित होते हुई सामाजिक संरचना में इस कृति की उपादेयता और भी बढ़ गयी है। इस कृति मे व्यक्तिवाद, स्वार्थपरता, आत्म सीमितता आदि के स्थान पर मानव समाज को त्याग, सतोष बन्धुत्व, अप्रतिशोध आदि सद्‌गुणों के आचरण का संदेश दिया है। वर्तमान मे सामाजिक मूल्यों एवं प्रतिमानो की संस्थापना हेतु इस कृति की परम उपादेयता है। आचार्य श्री का यह अप्रतिम उपकार है।

20/151 A, धूलियागंज, आगरा-3

□

पवित्र मानव-जीवन एक समीक्षात्मक अध्ययन

☐ डॉ. ब्र. सीमा जैन "शास्त्री"

पवित्र मानव जीवन आचार्य प्रवर श्री 108 ज्ञानसागर महाराज जी की हिन्दी पद्यमय एक सुन्दर लघु कृति है। इसमें मानव जीवन, समाज सुधार, मनुष्य जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं, आवश्यकता पूर्ति का साधन कृषि ही स्वर्ग की सम्पत्ति है, हिंसा कृषक की स्थिति, गो-सेवा, पशुपालन, सुख का मूल निरोगता, सात्विक भोजन, भोजन करने का समय, व्यायाम और उसके भेद, भोजन के कुछ विशेष नियम, समाज के अंग, भारत की प्राचीन एवं अर्वाचीन स्थिति, गृह, कुलीन, अंगना, व्यभिचार, पाप का प्रायश्चित, महिलाओं के अनुकरणीय कार्य, माता-पिता का बच्चों के प्रति कर्तव्य बालकों को अशिक्षित रखने का फल, पुरातन कालीन शिक्षा पद्धति, वर्तमान शिक्षण की दशा, अतिथि संविभाग, प्रोषधोपवास, सामयिक भावना, शील का सम्भालना, गृहस्थ और त्यागी में अन्तर क्षमा, अकिचन्न भाव, ध्यान और स्वाध्याय इत्यादि विषयों का बड़ी सरस, सरल, अनुभवपूर्ण और व्यवहारिकता से ओतप्रोत प्रवाहमयी भाषा मे प्रकाश डाला गया है। इनसे हमें पारवारिक और सामाजिक, नैतिक और धार्मिक जीवन एवं दायित्वों की शिक्षा प्राप्त होती है।

मानव-जीवन बड़ा दुर्लभ है शास्त्रकारों ने मानव जीवन की दुर्लभता के विषय मे अनेक विध विचार व्यक्त किये हैं। आचार्य ज्ञानसागर इसकी दुर्लभता के विषय मे पर्वत में रत्न, तक्र मे मक्खन, और चन्द्रमा की स्थिति दुर्लभ है उसी प्रकार सांसारिक प्राणियों में नरजन्म भी अत्यन्त दुर्लभ है। दुर्लभ मनुष्य जन्म पाकर के यह जीव मानवता का आचरण नहीं कर पाता है। स्वार्थपूर्ण आचारण करता है वह सोचना है कि हमे लड्डू मिल जाये चाहे दूसरे को रोटी भी न मिले। पड़ोसी का घर जल जाये लेकिन मेरा तिनका भी न जले। हम पलंग पर सोयें चाहे पड़ोसी को सोने का तिनका भी न मिले। मेरी मरहम पट्टी हो जाये उसके लिए चाहे दूसरे की चमड़ी भी छिल जाये। औरों का नाश हो जाये किन्तु हमारा पसारा हो जाये, इस प्रकार की विचारधारा मानवता के विपरीत है। मानवता वही है जहाँ दूसरे का पसीना बहे वहाँ अपना खून बह जाये। आप कष्ट में पड़कर भी साथी को किसी प्रकार का कष्ट न होने दे। पहले दूसरे को खिलाये फिर खुद खाने को बैठे। किसी की सम्पत्ति पर हम अपना अधिकार न जताये। मानव-जीवन ही नर से नारायण बनने की अनुपम कला है इत्यादि।

व्यक्ति का व्यक्ति से मिलकर विवेकपूर्वक चलना ही समाज है। एक साथ तो पशु भी रह सकते हैं किन्तु परस्पर सहायता न करने से सभ्य पुरुषों ने उन्हें समाज की संज्ञा से अभिहित नही किया है। बूंद-बूंद से मिलकर ही सागर बनता है। सूत से सूत मिलाकर ही चादर बनाई जाती है। उसी प्रकार पृथक्-पृथक् रहने से समाज का अस्तित्व नहीं बन सकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य समाज-सुधार की महती आवश्यकता है। शायद आचार्य श्री जी के समक्ष भी ऐसा ही वातावरण रहा

होगा। समाज को सुधारने के लिए व्यक्ति को सुधारने की आवश्यकता है। अत: आचार्य श्री जी ने अति संक्षेप में ही इस विशाल समस्या का समाधान सहज रूप से करते हुए कहा है—

> **"नहीं दूसरे को सुधारने से सुधार हो पाता है।**
> **अपने आप सुधरने से फिर सुधर दूसरा जाता है॥"**

(पृष्ठ 5/29)

क्योंकि खरबूजे को देखकर ही खरबूजा रंग बदलता है। अतएवं स्वयं का सुधार ही समाज का सुधार है। समाज तो एक सदन के समान है। संयमियों ने ही समाज में फैली कुरीतियो का, स्वार्थपूर्ण भावनाओ को दूर कर समाज रूपी सदन को साफ किया है। किन्तु आज कलयुगी नेताओं के हाथ में समाज की बागडोर होने से तो समाज का ही सफाया हो रहा है। तो फिर ऐसे व्यक्ति से क्या समाजसुधार की आशा की जाये? जो स्वयं ही राहगीरों के पथ पर शूल बिछा रहा हो। वस्तुत: समाज का संचालक पाप पंक से दूर हटकर भगवान का स्मरण करने वाला, दुख-सु:ख मे सहायक तथा परस्परोपग्रहों जीवानां की भावना से ओत-प्रोत होना चाहिए।

गोली मारने पर जीव न भी मरे तो भी अशुभ परिणामों के कारण वह हिसक होता है। अत: कृषि हिंसा का साधन नही है कृषक भी अपनी उदारता के कारण निष्पाप है। क्योंकि वह किसी भी जीव के प्रति बुरी विचारधारा नहीं रखता।

जिस गाय की पूजा हमारे धर्म प्रधान भारत देश में होती रही है। उन्हीं गायों की नृशंस हत्या भी वर्तमान में हो रही है हमारे सौन्दर्य प्रसाधन के साधनों के लिये। जहाँ राजा दिलीप ने अपना सर्वस्व गो-सेवा में ही अर्पण कर दिया। वन गोपालकृष्ण ने प्रतिदिन गायो की सेवा की हो, वृषभदास भी पशुपालन मे तल्लीन रहे हों ऐसे उस भारत के लाल आज गाय के प्रति कैसा ढंग अपना रहे है? जैनाचार्यों ने भी पशुपालन पर विशेष बल दिया। सोमदेव आचार्य ने नीति सूत्रों में गाय की महत्ता को प्रदर्शित किया है। प्राचीन समय में तो जिसके घर मे एक भी गाय नही होती थी उसे भाग्यहीन समझा जाता था। आज पशु-पालन न होने से आरोग्य वर्धक शुद्ध घो-दूध के दर्शन ही दुर्लभ है।

समाज मे प्राय: दो प्रकार के व्यक्ति ही पाये जाते हैं—श्रम जीवी और पूँजीवादी। श्रमजीवी सुबह से शाम तक श्रम करके भी अपनी आजीविका के साधन जुटाने मे असमर्थ रहता है फलस्वरूप पेट पालन के लिए चोरी, डकैती, आदि करने लगता है। दूसरे पूँजीपति जो कुर्सी पर बैठकर ही थाल सजाकर खाता है। अधिक खाना खाने के पश्चात् वह कैसा विचार करता है। इस बात को स्पष्टरूप से व्यंग्यात्मक शैली में कहा है—

> **"चूर्ण गोलियों में विचार चलता है उसे पचाने का।**
> **कौन परिश्रम करे जरा भी तनु को हिला डुलाने का॥**
>
> **हो अस्वस्थ खाट अपनाई तो फिर वैद्यराज आये।**
> **करने लगे चिकित्सा लेकिन कड़वी दवा कौन खाये॥"**

(17/63-74)

इस प्रकार स्वयं अपने पैरों पर कुल्हाड़ी मारकर पश्चाताप करता है। एक समय ऐसा था जहाँ भारतवासी भिखारी न थे। आप कमाई पर विश्वास करते थे बाप कमाई पर नहीं। अपनी भुजाओं पर विश्वास करके उद्योगी बनना उन्हें मंजूर था। सुखप्रद जहाँ का कोना-कोना था। अहिंसा -इच्छाओं के अनुसार आवश्यकताओं भी अनन्त होती है। भगवत भजन के लिए मुख्यरूप से मानव जीवन की तीन आवश्यकताएं हैं—रोटी, कपड़ा और मकान। इन आवश्यकताओं की पूर्ति कृषि के द्वारा ही संम्भव है। कर्मभूमि के आदि में कल्पवृक्षों के नष्ट हो जाने से आर्यजनों के प्रति करूणाद्र हृदय से सर्वप्रथम ऋषभदेव ने खेती का उपदेश दिया तथा खेती करने को अहिंसा का प्रतीक माना है। जो कृषि के महत्त्व को नही जान सका वह ही म्लेच्छपने को धारण कर मांसाहारी हो गया है।

आज हमारे जीवन में अन्न की अति आवश्यकता है ऋषि मनीषी भी अन्न के बिना नहीं रह पा रहे है। अन्न की परिपूर्णता होने पर ही भारत भूमि को "शस्य श्यामला" कहा है। आज उसी भारत की दुर्दशा देखो। जहाँ अन्न भी दूसरे देशों से आ रहा है क्योंकि मानव कृषि करना भूल गया है। जो कृषि साक्षात् ही स्वर्ग की सम्पत्ति है कृषि को उत्तम मानते हुए आचार्य प्रवर ने कहा है—

" कृषि का विरोध करना राक्षसता को फैलाना है।" **(पृष्ठ 9/90)**

प्रत्येक दृष्टिकोण से खेती की उन्नति, पशुपालन अति उपयोगी है। भारत की दुर्दशा को देखकर राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत होकर भाव व्यक्त किया है। वह कहते हैं कि भारत क्षेत्र पर पुन: कृषि का उत्पादन इतना बड़े कि दूध की नदियाँ बहने लगें। कुछ लोग कृषि को हिंसा का साधन तथा पाप का कारण मानते हैं। इसका सटीक सुस्पष्ट समाधान देते हुए कहा है—

"कोई कहता हो कृषकता तो हिंसा का साधन है।
इसीलिए है पाप अहो व्यापार किये होता धन है॥

किन्तु यहाँ पहिले तो खेती बिना कहो व्यापार कहाँ।
ब्याज बनेगा तभी कि जब कुछ भी होवेगा मूल जहाँ॥

(पृ. 10/45)

यदि किसी जीव को मारना हिंसा है तो ऋषियों के हलन-चलन में भी जीव मरण को प्राप्त हो जाते हैं। किन्तु जैनदर्शन में आचार्यों ने ऐसी हिंसा को हिंसा नहीं कहा गया है। यदि यत्नाचार पूर्वक क्रिया के होते हुए भी जीव मर भी जाता है तो वह हिसा भी हिंसा नही होती लूटमार चोरी आदि नहीं होती थी। देश की शान्ति के लिए घर की शान्ति का होना अनिवार्य है। घर की शान्ति ही देशशान्ति है। ईंट, चूने, मिट्टी से बना हुआ मकान घर नही है। किन्तु स्त्री, पुत्र, पितादि सहित पारिवारिक जीवन ही घर है। घर को संस्कारित करने में दक्ष नारी ही होती है। पतिव्रता नारी के शील के प्रभाव से तो देवों को आकर भी मस्तक झुकाना पड़ता है।

जन सामान्य उठ रही शंकाओं का समाधान सरल, स्वाभाविक भाषा में सहज रूप में करते हुए कहा है—

जब एक पुरुष की अनेक नारियाँ हो सकती है तो एक नारी के अनेक पुरुष क्यों नही हो सकते हैं ?

समाधान करते हुए आचार्य कहते हैं कि जैसे अनेक शाखायें एक वृक्ष के अधीन रह सकती है और एक शाखा अनेक वृक्षों पर नहीं जा सकती है। तथा जैसे एक समुद्र में अनेक नदियाँ जाकर मिल सकती हैं पर एक नदी में अनेक समुद्र रह सकते हैं? नहीं। वैसे ही एक नारी के अनेक पुरुष नही हो सकते।

नारियों के भी अनेक अनुकरणीय कार्य रहे है। वे पुरुषों से कभी भी पीछे नही रहीं। राजा दशरथ का सारथीपन केकैयी के द्वारा किया गया। झांसी की रानी ने अंग्रेजो से मोर्चा लिया। राजा श्रेणिक को सत्-पथ पर लाने वाली रानी चेलना ही थी। अत: समाज मे बालक बालिकाओं दोनों को ही प्रशिक्षण देना चाहिए।

प्राचीन और वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के स्वरूप व गुण-दोषो की विवेचना की है। प्राचीन शिक्षा प्रणाली मे छात्र ब्रह्मचर्य व्रत पूर्वक गुरु की सेवा करके नि:शुल्क शिक्षण प्राप्त करते थे तथा इसमे लोकोपकारार्थ आज्ञाकारी, गुरुविनयी शिष्य ही विद्याध्ययन करते थे। वर्तमान शिक्षण पद्धति इससे भिन्न है—

> **"नूतन शिक्षे परिहृत दीक्षे तू क्यों भारत में आयी।**
> **पढ़ो बालको करो नौकरी यह फैशन है अपनाई ॥**
>
> **और नहीं कुछ काम एक सी ए टी कैट पढ़ा देना।**
> **अपना घण्टाकर पूरा यों झटपट फीस झाप लेना ॥**

29/132-133

ऐसी वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर तीक्ष्ण व्यंग्यों का प्रहार बड़ी निर्भीकता से किया गया है—

> **"हे धूर्ते दु:शिक्षे तूने कैसा रंग जमाया है।**
> **बहुत शीघ्र ही इस दीन देश का रूप अहो पलटाया है ॥**
>
> **हन्त पिशाचिनी इस भारत का तूने शोणित खूब पिया।**
> **पापिनी पीछा छोड़ जरा इस पर अब तो कर दे सुदया ॥"**

इस प्रकार उक्त कृति मे गृहस्थ और त्यागी के भेद, उत्तम क्षमा अकिंचन्यादि भावो का वर्णन ध्यानावस्था, तत्पश्चात् मोक्ष की प्राप्ति आदि विषयो का वर्णन भी सरल भाषा में किया है।

प्रत्येक मानव परस्पर सहयोग से ही कार्य को सम्पन्न कर सकता है। चाहे कोई छोटा हो चाहे कोई बड़ा। सभी जीवों में साम्य भाव को धारण करे तभी देश की अखण्डता, एकता कायम रह सकती है। जिस प्रकार पाँचों अंगुली छोटी बडी होकर भी कार्य को साधने में आवश्यक है उसी प्रकार प्रत्येक जीव का सहयोग आपेक्षिक है।

इस लघु पद्यभय कृति में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने मानव जीवन के प्रति कर्तव्यों को बतलाते हुए मानो गागर में सागर ही भर दिया है। रूढ़िवादिता का भी खुलकर विरोध किया है। अत: देश में एकता, शान्ति, समन्वयता, सामाजिकता तथा मानव जीवन को संस्कारित करने के लिए समाज में इसका भरपूर उपयोग होना चाहिए। अन्त में इन्हीं भावनाओं के साथ पूज्य गुरुदेव आचार्य ज्ञानसागर जी के प्रति श्रद्धाञ्जलि अर्पण करती हूँ।

□

आचार्य ज्ञानसागर जी कृत तत्त्वार्थसूत्र टीका

☐ डॉ. रमेशचन्द जैन

आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने तत्त्वार्थसूत्र की महत्त्वपूर्ण टीका लिखी है। इसकी प्रारम्भिरक प्रस्तावना में ग्रन्थकर्ता आचार्य उमास्वामि का परिचय दिया गया है। तत्वार्थ सूत्र पर तत्त्वार्थीधिगम भाष्य मिलता है, जिसे श्वेताम्बर मतानुयायी स्वोपज्ञ कहते हैं। उनका कहना है कि भाष्य में कई जगह वक्षामः, वक्षामि इत्यादि उत्तमपुरुष वाचक क्रियाएँ है। अतः यह स्वोपज्ञ है। उनका ऐसा कहना निर्दोष नहीं है, क्योंकि जैसे ही उत्तम पुरुषात्मक क्रियाओ का प्रयोग है, वैसे ही कहीं-कहीं पर भाष्य में अन्य पुरुष की क्रिया भी आई है। जैसे द्वितीय अध्याय के आहारक शरीर का वर्णन करने वाले भाष्य मे "कार्मणमेषां निबन्धनमाश्रयो भवति तत्कर्मत एव भवतीति बन्धेषु (प) रस्ताद्वक्ष्यति" ऐसा पाठ है।

भाष्य सम्मत सूत्र पाठ मे तथा भाष्य में भी स्वर्ग बारह ही हैं, इत्यादि दो चार बातों के सिवाय अधिकांश बातों मे दिगम्बर सिद्धान्त का ही समर्थन किया गया है। जैसे कि षोडश कारण भावनाओ के नाम? सात तत्त्वों की मान्यता आदि। आचार्य ज्ञानसागर महाराज का कहना है कि उमास्वामी महाराज न तो कट्टर दिगम्बर अम्नायी ही थे, न श्वेताम्बर ही थे और न यापनीय ही थे। वे तो श्री महावीर स्वामी के पथ पर चलने वाले अचेलव्रत के धारक सच्चे सन्तोषी साधु थे; क्योंकि उन्होंने पंचमहाव्रतों को साधु का कर्तव्य बताकर अपरिग्रह महाव्रतधारी के वस्त्र त्याग भी आवश्यक कहा है। सातवें अध्याय के क्षेत्रवास्तुहिरण्येत्यादि सूत्र मे कुप्य शब्द से वस्त्र को भी क्षेत्रादि की भांति परिग्रह बताया है। तत्त्वार्थाधिगम के कर्ता वाचक उमास्वामि श्री वीर निर्वाण 1190 मे वीर प्रभसूरि और यशो विजय सूरि के अन्तराल में जिनबद्रगणि के उत्तर मे हुए हैं, ऐसा श्वेताम्बर की नन्दी सूत्र पट्टावली या पट्टावली सारोद्धार मे बतलाया है। उन्होने तत्त्वार्थसूत्र की छाया लेकर उससे मिलता हुआ पृथक् सूत्रपाठ बनाया है और उसके ऊपरभाष्य लिखा है। कही पर तो सूत्रवाक्य के साथ कुछ भाष्य के अश को भी सूत्र का अंश मानकर जोड़ा जा रहा है, कही सूत्र के अंश को भी भाष्य का अंश कहा जाता है। कही पर वस्तुतः दो सूत्रों को मिलाकर एक सूत्र कर लिया गया है तो कही एक सूत्र के दो पृथक्-पृथक् सूत्र कहे जा रहे है? तत्त्वार्थ सूत्र के विषय मे ऐसा नही है, वह उसके श्रद्धालू लोगो द्वारा प्रायः एक रूप में स्वीकृत है।

मोक्षमार्गस्य नेतारं इत्यादि पद्य की व्याख्या मे आचार्य श्रीज्ञानसागर जी महाराज ने ईश्वर द्वारा सृष्टि कर्तृत्व का खण्डन किया है और वेदो के सूत्र तथा वेदानुयायी कुमारिल भट्ट की युक्तियों द्वारा यह खण्डन किया गया है।

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के विषय मे आचार्य महाराज ने स्पष्टीकरण दिया है—

अनादि मिथ्यादृष्टि जीव के तो गुरुपदेश पूर्वक ही सम्यग्दर्शन होता है, किन्तु यदि मिथ्यादृष्टि के गुरुपदेश के बिना भी हो जाता है। अतः तन्निसर्गदधिगमाद्वा सूत्र में आये हुए वा शब्द का अर्थ अनादि मिथ्यावृष्टि की अपेक्षा लेकर तो अवधारणात्मक अर्थ लेना और सादि मिथ्यादृष्टि की विवक्षा में विकल्प अर्थ ग्रहण करना।

सात तत्वों का प्रतिपादक जीवाजीवास्रव आदि सूत्र श्वेताम्बर भी पढ़ते हैं, किन्तु उनके किसी आगम ग्रन्थ में सप्त प्रकार तत्त्व का वर्णन कही नही पाया जाता, अपितु उनके यहां पुण्य और पाप को मिलाकर नव पदार्थो का वर्णन ही सब जगह किया हुआ है। दिगम्बर परम्परा में सप्ततत्व और नव पदार्थ इस तरह पृथक्-पृथक् उपदेश अवश्य पाया जाता है।

सत्संख्यादि सूत्र के विषय में यह ज्ञातव्य है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आगम मे ये ही सदादि अनुयोगद्वार है, परन्तु उनकी सख्या नौ अङ्क प्रमाण है; क्योंकि उनके यहॉ भाग नामक अनुयोग एक और माना गया है, जैसा कि उनके अनुयोग द्वार नाम सूत्र ग्रन्थ मे है—

से कित अणुगमे ? नववहे पण्णत्ते तं जह—सन्त पयरुपणया दव्वपमाणं च 2 खित्तं 3 फुसणाय 4 कालोय 5 अन्तरं 6 भाग 7 भाव 8 अप्पावहं 9 चेव ॥ अनु. सू. 80

किन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय के षट्खण्डागम ग्रन्थ में यही अनुयोगद्वार लिखे हैं—

सन्तपरूवणा 1 दव्वपमाणाणुयगो 2. खेताणुगमो 3. फुसणाणुगमो 4. कालाणुगमो 5. अन्तराणुगमो 6. भावाणुगमो 7. अघबहुणाणुगमो 8. चेदि।

किन्तु तत्त्वार्थसूत्र का सत्सख्यादि सूत्र श्वेताम्बरो के यहॉ भी ऐसा ही पढ़ा जाता है, जैसा कि ऊपर लिखा है।

भव प्रत्ययोऽवधिदेवनारकाणाम् की व्याख्या में आचार्य श्री ज्ञानसागरजी का कहना है कि ऐसा नियम नही करना कि देव-नारकियो के ही भवप्रत्यय नामक अवधिज्ञान होता है; क्योंकि कि पचकल्याण के धारक तीर्थकरो के भी जन्म से ही अवधिज्ञान होता है, अत: वह भी भवप्रत्यय है, ऐसा गोम्मटसार का कहना है। कुछ आचार्यो का कहना है कि देव और नारकियो के ही भव प्रत्यय अवधिज्ञान होता है। उनके हिसाब से पच कल्याणधारी तीर्थकरो को जो अवधिज्ञान है, वह भवप्रत्यय न होकर भवान्तरायात अवधिज्ञान होता है, क्योंकि वे या ते स्वर्ग से आकर या नरक से आकर जन्म धारण करते है सो सम्यग्दर्शन और अवधिज्ञान युक्त हो अवतार लेते हैं, न कि यहॉ पर अवधिज्ञान प्राप्त करते है।

"विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यांतद्विशेष:" सूत्र की व्याख्या मे कहा गया है—ऋजुमति से विपुलमति अधिक विशुद्ध होता है एव ऋजुमति होकर छूट भी जाता है, किन्तु विपुलमति नहीं छूटता, केवल ज्ञान प्राप्त करके ही रहता है। मतलब यह कि ऋजुमति उपशम श्रेणी वाले को होता है, किन्तु विपुलमति क्षपक श्रेणी वाले को।

अवधि और मन: पर्यय के भेद के विषय में आचार्य श्री ज्ञानसागर जी ने विशेष बात यह कही है कि अवधिज्ञान सम्पूर्ण लोक की बात को जान सकता है, किन्तु मन: पर्यय ज्ञान ढाई द्वीप में ही होता है, अवधिज्ञान का स्वामी सामान्यतौर पर चारो गतियो मे होने वाला संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीव होता है, किन्तु जब इसमें भेद करे तो ऐसे जीवो के जघन्य देशावधि ज्ञान ही हो सकता है। उत्कृष्ट देशावधिज्ञान तो संयमधारी मुनिराज के ही होता है। परमावधि और सर्वावधि तो उसी भव से मोक्ष जाने वाले मुनि के होते हैं। मन: पर्ययज्ञान ऋद्धिधारक मुनि के होता है।

'सम्यक्त्व चारित्रे' सूत्र की व्याख्या मे कहा गया है कि कर्मों के जघन्य स्थिति बन्ध मे एवं उत्कृष्ट स्थिति बन्ध मे भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व नही होता, किन्तु जब बँधने वाले कर्म तो अन्त: कोटी कोटी सागर की स्थिति मात्र मे बंधने लगे और बँधे हुए कर्म अन्त: कोटाकोटी से भी संख्यात हजार सागर कर्मस्थित वाले हो रहे, तभी जीव प्रथम सम्यक्त्व के योग्य होता है। तीसरी बात में इस जीव के जन्म का विचार है अर्थात् जो सज्ञी पञ्चेन्द्रिय एवं पर्याप्त दशा में हो, जिसके कि परिणाम पूरी तौर पर विशुद्ध हो ऐसा भव्य जीव ही सम्यक्त्व प्राप्त कर सकता है। इन उपर्युक्त अन्तरङ्ग कारणो के साथ-साथ बाह्य मे जाति स्मरण वगैरह का निमित्त मिलने पर सम्यक्त्व होता है। यदि कहा जाय कि अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया और लोभ इनके उपशम की सम्यग्दर्शन के लिए क्या जरूरत है, ये तो चारित्र मोहनीय की प्रकृतिया है, तो इसका उत्तर यही है कि इनमें चारित्र और सम्यक्त्व दोनो को नष्ट करने की शक्ति मानी गयी है और जहॉ सम्पूर्ण चारित्रमोह का उपशम हो जाता है, वहॉ ग्यारहवे गुणस्थान में उपशम चारित्र होता है।

"ज्ञानदर्शन दान लाभ भोगोभोगवीर्याणि च" की व्याख्या मे कहा गया है कि अन्तराय के क्षय से अभयदानादि होते है, तो फिर सिद्ध भगवान के भी होने चाहिए, तो इसका उत्तर यह है कि वहॉ उनके तीर्थकर नामकर्म और शरीर नामकर्म वगैरह का सद्भाव नही होता, जिसके कि सहयोग की इनमे जरुरत पडती है।

"पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतय: स्थावरा" सूत्र का अर्थ है कि पृथ्वी कायिकादि पॉचो प्रकार के जीव स्थावर कहलाते है। तत्त्वार्थाधिगम भाष्यकार केवल पृथ्वी, जल और वनस्पतिकायिक जीवो को ही स्थावर मानते है, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवो को एकेन्द्रीय मानते हुए त्रस बताते हैं, वे ही नही किन्तु श्री कुन्दकुन्दाचार्य विरचित पंचास्तिकाय मे भी ऐसा ही लिखा है—

तित्थावरतणुजोगा अणिलाणकायिया य तेसु तसा।

मणपरिणामविरहिदा जीवा एइन्दिया णेया।

अर्थात् पॉच प्रकार के एकेन्द्रीय जीवो में से भी उनके शरीर की बनावट को देखने से तीन प्रकार के (पृथ्वीकायिक, जलकायिक और वनस्पति कायिक) जीव ही स्थावर है, बाकी वायुकायिक और अग्निकायिक जीव त्रस ही है, ऐसा इस गाथा में बतलाया है। परन्तु प्रसिद्ध आम्नाय यही है कि पृथ्वीकायिकादि पॉचो प्रकार के जीव स्थावर हैं, इनके सिवा बाकी के जीव त्रस हैं।

"निर्वृत्युपकरणे द्रव्येन्दिरयं" की व्याख्या में कहा गया है कि उपकरण भी दिगम्बर सम्प्रदाय के ग्रन्थों में तो बाह्य और अभ्यन्तर के भेद से दो प्रकार का माना जाता है, किन्तु श्वेताम्बर सम्प्रदाय के आगमों में एक तत्त्वार्थाधिगम भाष्य को छोड़कर कहीं भी इस प्रकार का भेद किया हुआ देखने में नहीं आया,जैसे कि सिद्धसेनगणी भी लिख गए है—आगमे तु नास्तिकश्चिदन्तर्बहिर्भेद उपकरणस्येत्या-चार्यस्यैदं कुतोऽपि सम्प्रदाय इति अर्थात् प्राचीन आगम में इस प्रकार की अन्तर बाहिर रूप उपकरण भेद की कल्पना नहीं है, भाष्यकर आचार्य की यह सिर्फ अपनी ही मान्यता कहीं से लाकर कही गई प्रतीत होती है।

"विग्रहगतौ कर्मयगो:" सूत्र की व्याख्या में एक शङ्का उपस्थापित है कि हमने तो कई जगह जैनशास्त्रों में पढ़ा है कि कर्म तो धर्मास्तिकाय की भांति उदासीन कारण होता है। इसका उत्तर यह है कि जहाँ पर कर्म को उदासीन कारण लिखा है, वहाँ मोह की बाबत समझना चाहिए। यानी किसी भी प्रकार के शुभाशुभ कर्म का उदय हो तो उसमें खुश या नाराज होकर रागद्वेष करे या न भी करे तथा कम वैसी करे यह जीव के हाथ की बात है, किन्तु सभी जगह कर्मों के बारे में ऐसा नही है, अन्यथा तो नरकयोनि को प्राप्त हुआ जीव वहाँ के दु:खों से डरकर अपने उस शरीर को छोड़कर वहाँ से निकलना चाहता है सो निकल क्यो नही जाता है? इसके उत्तर में यही कहना होगा कि वहाँ पर उसके नरकायु कर्म ने रोक रखा है।

तत्त्वार्थाधिगम भाष्य में 'एक द्वौ त्रीन्वाऽनाहारक:' के स्थान में एकं द्वौऽनाहारक: पाठ है, जिसका तात्पर्य यह है जीव एक समय या दो समय तक ही अनाहारक रहता है, अधिक नही, इसके लिए उसके टीकाकारो ने एक युक्ति भी लिखी है कि तीन मोड़े वाली गति में जो चार समय लगते हैं, उनमें से पहिला समय तो च्युत देश का और चौथा समय जन्म का हुआ, शेष मध्य के दो समयों में ही अनाहारक रहता है, किन्तु यह समाधान ठीक नही बैठता; क्योंकि च्युतदेशता और जन्म ये दोनों तो एक समय वाली और दो समय वाली गति में भी तो होते हैं, अनाहारकता का सम्बन्ध तो मोड़ो के साथ में है। जिस गति में जितने मोड़े लेगा, उतने समय तक अनाहारक रहेगा। जैसा कि श्वेताम्बरों के ही आगम ग्रन्थ में लिखा हुआ है—

जीवेणं भन्ते ! कं समय अणाहारये भवई ! पढमे समये सिया आहारये सिया अणाहारये, बितये समये सिया आहारये सिया अणाहारये, ततियेक समये सिया आहारये, सिया अणाहारये, चउत्थे समये णियमा आहारये एवं दण्डवो जीवा य एइन्दिया य चउत्थे समये सेसा ततिये समये।

व्याख्या प्रज्ञप्ति 7 उ. 1 सू. 260

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्या:" सूत्र की व्याख्या के प्रसङ्ग में कहा गया है कि अपर्याप्त अवस्था में तो ये चारों ही लेश्यायें ही सकती है, किन्तु पर्याप्त दशा में अर्थात् देवपना पा लेने के बाद तो सिर्फ पीत नामकी लेश्या ही होती है, ऐसा दिगम्बर सम्प्रदाय के मान्य ग्रन्थ गोम्मटस्तर में कथन है। श्वेताम्बर ग्रन्थ उत्तराध्ययन में लिखा है कि देवगति में कृष्ण लेश्या की स्थिति जघन्यपने दश हजार

वर्ष की और उत्कृष्ट पल्योपम के असंख्यातवे भाग की है। कृष्ण लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति में एक समय और मिलाने पर नील लेश्या की जघन्य स्थिति होती है। उसी में पल्योपम का असंख्यातवॉं भाग और मिलाने पर नीललेश्या की उत्कृष्ट स्थिति होती है। एक समय अधिक नील लेश्या की उत्कृष्ट स्थिति ही कापोतलेश्या की जघन्यस्थिति और उससे पल्योपम का असंख्यातवॉं भाग अधिक उसकी उत्कृष्ट स्थिति होती है। भुवनत्रिक और वैमानिक इन चारों तरह के देवों मे तेजोलेश्या होती है, उसकी स्थिति जघन्य एक पल्योपम की एव उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो सागर की है। तेजो लेश्या की स्थिति जघन्य से दश हजार वर्ष की और उत्कृष्ट कुछ अधिक दो सागर है। तेजोलेश्या की उत्कृष्ट स्थिति में एक समय और मिलाने पर पद्मलेश्या की जघन्य स्थिति होती है। इसकी उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक दश सागर की होती है। उसमे एक समय और मिलाने पर शुक्ललेश्या की जघन्यस्थिति, किन्तु उत्कृष्ट स्थिति एक मुहूर्त अधिक तेतीस सागर की होती है।

तत्त्वार्थसूत्र के अन्तिम सूत्र क्षेत्रकालगति..............आदि की व्याख्या में कहा है कि कुछ लोग इस शब्द मे आए हुए, लिङ्ग शब्द से यह अभिप्राय लेते हैं कि जिस प्रकार निर्गन्थ लिङ्ग से मुक्ति प्राप्त कर सकता है, वैसे ही बुद्धिपूर्वक धारण किये हुए अन्य लिङ्ग से भी साक्षात् मुक्ति पा सकता है, किन्तु ऐसा कहना ठीक नही है; क्योंकि जिसके पास अणुमात्र भी परिग्रह है, वह वस्तुत: गृहस्थ ही है, इसलिए उसे मुक्ति नही मिल सकती है।

इस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र की इस टीका मे आचार्य ज्ञानसागर महाराज ने सर्वार्थसिद्धि समपसार तथा उसकी टीकाये पञ्चास्तिकाय तत्त्वार्थवार्तिक, गोम्मटसार आदि आर्षग्रन्थो के आलोक मे सूत्रों की विशद व्याख्या की है। सत् संख्या आदि सूत्र की व्याख्या मे षट्खण्डागम का भी सहारा लिया गया है। आचार्य श्री ने तत्वार्थाधिगम भाष्य, भगवती सूत्र, आचाराङ्ग उत्तराध्ययन सूत्र आदि श्वेताम्बर ग्रन्थो का भी तुलना के लिए उपयोग किया है तथा जहॉं श्वेताम्बर ग्रन्थों से मतभेद है, वहॉं उसकी भी चर्चा की है तथा जहॉं समीक्षा की आवश्यकता है, वहॉं समीक्षा भी करते चले हैं। प्रारम्भ मे ईश्वर सृष्टिकर्तत्व के प्रसङ्ग मे ऋग्वेद, अथर्ववेद, कठोपनिषद् तथा महाभारत के उद्धरण दिये है। इस प्रकार अनेक ग्रन्थो का आलोडन विलोडन कर इस ग्रन्थ की टीका सरल हिन्दी में लिखी गयी है। इससे अनेक सैद्धान्तिक विशेषताओ की जानकारी होने के साथ सूत्रार्थ को जानने में मदद मिलती है। प्रारम्भिक प्रस्तावना पाणित्यपूर्ण है। तत्त्वार्थाधिगम भाष्य के स्वोपज्ञ होने का वहॉं सप्रमाण खण्डन है। इस प्रकार यह टीका टीकाकार के वैदुष्य और गम्भीर अध्ययन को अभिव्यक्त करती है।

—जैन मन्दिर के पास,
बिजनौर, (उ. प्र.)

□

ऋषभचरित का वर्ण्य विषय

☐ डॉ. कस्तूर चन्द कासलीवाल

वर्तमान शताब्दी मे संस्कृत एवं हिन्दी भाषा में काव्य रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले जैनाचार्यों मे आचार्य ज्ञानसागर जी महाराज का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। वे चारित्र एवं दिगम्बरत्व की प्रतिमूर्ति थे। वाराणसी जाकर संस्कृत, जैन दर्शन का अध्ययन करने वालों में उनका नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। वे जीवन भर पठन-पाठन, स्वाध्याय एव साहित्य निर्माण में लगे रहे और ५० वर्षों से भी अधिक समय तक जैन वाङमय की सेवा करते रहे। वे अपने युग के कालिदास, भारवि एवं माघ जैसे महाकवियो का प्रतिनिधित्व करने वाले थे। आचार्य श्री ने जयोदय, वीरोदय एवं दयोदय जैसे महाकाव्यों की रचना करके संस्कृत साहित्य को एक नया जीवन प्रदान किया।

आचार्य श्री ठेठ राजस्थानी थे। राजस्थान की मिट्टी में पले पोषे तथा अपना यौवन एवं साधु जीवन दोनों ही राजस्थान की धरती पर व्यतीत किया। वे जन्म से राजस्थानी और अन्तिम समाधिमरण भी राजस्थान की धरती पर प्राप्त किया। प्रस्तुत आलेख में लेखक को उनके दर्शन करने का एक से अधिक बार सौभाग्य मिला था। अंतिम बार मदनगज किशनगढ के मन्दिर मे दर्शनो का लाभ मिला जब वे अपने शिष्य मुनि श्री विद्यासागर जी महाराज को आचार्यत्व की अग्रिम शिक्षा प्रदान कर रहे थे। आचार्य एव शिष्य का वह भव्य स्वरूप आज भी मेरी स्मृति मे बसा हुआ है।

आचार्य ज्ञान सागर जी का कृतित्व इतना विशाल एवं शानदार है कि उसका एक ही आलेख मे सारी कृतियो का समीक्षात्मक अध्ययन करना कठिन है। इसलिये प्रस्तुत आलेख मे आचार्य श्री के हिन्दी प्रबन्ध काव्य श्रषभचरित का अध्ययन प्रस्तुत किया जा रहा है।

ऋषभचरित एक प्रबन्ध काव्य है, जिसमें आदितीर्थकर ऋषभदेव का उनके वर्तमान भव के अतिरिक्त पूर्व भवों का भी वर्णन किया गया है।

काव्य मे १७ अध्याय है, जिनमें प्रथम सात अध्यायो मे पूर्व भवों का तथा अन्तिम १० अध्यायो में वर्तमान भव का वर्णन किया है। यह वर्णन आदि तीर्थकर के पिता नाभिराम से प्रारम्भ किया है, जिसमें नाभिराज के साथ मरू देवी के विवाह का उसके रूप लावण्य का एवं शरीर के सभी अग प्रत्यंगों का कवि वर्णन करने मे सफल हुआ है।

नवें अध्याय में अयोध्या नगरी की देवो द्वारा साज सज्जा करने का सुन्दर वर्णन हुआ है। फिर इन्द्र द्वारा नाभिराम का अभिषेक एवं देवोपनीत वस्त्रों द्वारा अलंकृत एवं नवनिर्मित राजभवन में आदरपूर्वक लाने का वर्णन मिलता है। इसके पश्चात् छह कुमारियों द्वारा सेवा करना, प्रतिदिन तीन बार रत्नों की वर्षा का प्रशस्त वर्णन मिलता है। माता द्वारा १६ स्वप्न दर्शन का दो पद्यों में विस्तृत वर्णन के साथ देव कुमारियों द्वारा माता की सेवा एवं मनोविनोद का प्रशस्त वर्णन किया गया है।

माता मरु देवी जब नाभिराज के पास जाकर रात्रि में देखे गये स्वप्नों की सूचना तथा नाभिराम द्वारा प्रसन्नतापूर्वक स्वप्न पल का बहुत सुन्दर शब्दों में वर्णन किया गया है। छप्पन कुमारी देवियों द्वारा ९ महिने तक माता की किस प्रकार सेवा की जाती रही, इसका भी सुन्दर वर्णन कवि ने इसी अध्याय में किया है।

१०वें अध्याय में जन्मोत्सव का पूरा वर्णन किया गया है। कवि ने प्रत्येक घटना का काव्य मय वर्णन किया है, तथा पूरा अध्याय जन्मोत्सवमय बन गया है। जन्मोत्सव के लिये इन्द्र द्वारा देवों को आमंत्रण, सभी देवों का सामूहिक रूप में अध्योध्या में आना, सभी देवों का जिनदर्शन के लिये दौड़े चले जाना, नगर की तीन प्रदक्षिणा दिना, शिशु तीर्थंकर को माता द्वारा गोद में लेकर आना, एक हजार नेत्रों द्वारा इन्द्र द्वारा शिशु का रूप लावण्य निखारना और फिर भी मन नही भरना, शिशु को अभिषेक के लिये पाण्डुकशिला पर ले जाना, इन्द्रों एवं देवों द्वारा क्षीर सागर के जल में अभिषेक आदि क्रिया का सजीव एवं विस्तृत वर्णन करके काव्य को गरिमामय बना दिया है। इन्द्र ने अपने एक हजार हाथ करके सभी कलशों को हाथ मे ले लिये और शिशु का अभिषेक करके अपने जीवन को सफल बना लिया। अन्त में इन्द्र द्वारा शिशु तीर्थंकर की भक्ति में नृत्य करके जन्मोत्सव में चार चांद लगा दिये। इस प्रकार ५३ पद्यों में कवि द्वारा जन्मोत्सव का सुन्दर एवं विस्तृत वर्णन हुआ है।

११वें अध्याय में कवि ने तीर्थंकर के कुमार काल का वर्णन किया है। फिर कुमार के जीवन में यौवन ने प्रवेश किया। ऋषभदेव का यशस्वती एवं सुनन्दा से विवाह। विवाह पश्चात् सन्तानोत्पत्ति, महारानी यशस्वी से भरत चक्रवर्ती का जन्म के पश्चात् एक-एक करके ९९ पुत्रो एवं ब्राह्मी पुत्र को जन्म देकर अपने जीवन को सफल बना लिया। कवि ने भरत के होने वाले वृषभसेन, अनन्तवीर्य, आच्युत, अपराजित आदि पुत्रों के नाम भी गिनाये हैं। ऋषभदेव की दूसरी रानी सुनन्दा के उदर से बाहुबली एवं सुन्दरी नाम पुत्री का जन्म हुआ। इस तरह ऋषभदेव के दोनो रानियो से १०३ सन्तानें पैदा हुई, जिसमें से अयोध्या के अतिरिक्त चारों ओर हर्ष और उल्लास छा गया। गीत गाये जाने लगे और प्रजा ने अपार आनन्द का अनुभव किया। इसके पश्चात् सभी पुत्र पुत्रियों को शिक्षा देने का अच्छा वर्णन किया गया। ब्राह्मी को लिपि ज्ञान एवं सुन्दरी को गणित विद्या सिखलाई गयी। दोनों पुत्रियों को पूरे वाङ्मय का अध्ययन कराया गया और स्त्री शिक्षा का उस समय प्रचार किया। भगवान ऋषभदेव ने अपने एक-एक पुत्र को व्याकरण, अलंकार, छन्द शास्त्र की शिक्षा दी तथा साथ में दोनों कन्याओं को भी व्याकरणीय शास्त्र पढाये। राजकुमार भरत को अर्थशास्त्र की विशेष शिक्षा प्रदान की। वृषभदेव को संगीत शास्त्र, अनन्त विजयको वास्तु शास्त्र, चित्रकला आदि का विशेष अध्ययन कराया। बाहुबली पुत्र को आयुर्वेद की विशेष शिक्षा प्रदान की। उस तेजस्वी पुत्र को धनुर्विद्या प्रदान की। अच्युत पुत्र को लक्षण शास्त्र एवं सुवीर पुत्र को रत्न परीक्षण करने की शिक्षा प्रदान की। इसी तरह सभी १०१ पुत्रों एवं दो पुत्रियों को सभी शास्त्रों मे पारंगत करके शिक्षा के क्षेत्र में एक नये युग का शुभारम्भ किया।

१२वें अध्याय में आदिनाथ के शासन का विस्तृत वर्णन मिलता है। इस समय योगभूमि काल समाप्त हो गया था और चतुर्थ काल आने वाला था। जहां एक ओर अयोध्या, कौशल, साकेत जैसे नगर बसाये गये थे, वहीं छोटे-छोटे गाँवों की रचना हो रही थी। कुछ गांव उपवन, कूप एवं वापिकादि से युक्त थे, कहीं कुएँ, नदी एवं नहर आदि बनायी भी गयी थी। देशों के प्रान्त भाग पर दुर्ग गनाये गये थे, ग्राम एवं नगरों के बीच में वणिक समाज को स्थान दिया गया था। प्रान्त के मध्य में राजधानी बनायी गयी थी, जिसके चारों ओर खाई और परकोटा होता था। गांव में किसानों की एवं शूद्र जाति के लोगों की बस्ती होती थी, जिनके घास-फूस के घर थे। किन्तु बाग बगीचा एवं तालाब से युक्त होता था। सौ घरों की बस्ती को छोटा गांव, पांच सौ घरों की बस्ती को बड़ा गांव, जहाँ वणिक जन रहते हों, बाजार हो, यातायात के साधन हो तो उसे शहर कहा जाता था। समुद्र तट पर बने हुये नगर को पुर कहा जाता था। इस प्रकार ऋषभदेव ने सभी को यथा स्थान बसा दिया। फिर क्षत्रीय, वैश्य एवं शुद्र वर्ग की रचना की और तीनों के ही लिये अपने अपने कर्तव्यों का विधान बना दिया। उन्होंने असि एवं मसि क्षत्रिय जाति को, कृषि एवं वाणिज्य वणिक जाति को तथा शिल्प एवं विद्या। सबके कर्तव्य निर्धारित कर दिये। इसलिये आदिनाथ को प्रजापति के नाम से भी पुकारा जाता है। बैलों द्वारा खेती करना, गाय का संवर्द्धन एवं पालन, ऊँटों द्वारा भार ढोना, अन्न की रोटी अग्नी में सेक कर खाने का मार्ग बतलाया गया।

ऋषभदेव ने बतलाया कि भोग भूमि समाप्त होकर कर्म भूमि का युग आ गया है। रात्रि दिन का स्पष्ट भेद दिखाने लगा था। इस अवसर पर पानी छान कर पीने, रात्रि को भोजन करने का निषेष, मांसाहार एवं शिकार का निषेद्य आदि का अच्छा वर्णन हुआ है। हाँ माँ एवं धिक् शब्दों से दण्ड विधान निर्धारित किया गया। इक्षु रस का पान कराने पर इक्ष्वाकु कहलाये। इस प्रकार ऋषभदेव अपनी समस्त प्रजा के सम्राट बन कर आनन्द से शासन करने लगे।

त्रयोदश अधिकार में ऋषभदेव के वैराग्य की ओर झुकाव का वर्णन किया गया है। संसार को असार, वर्ण भंगुरता, शरीर के सौन्दर्य एवं हृष्ट-पुष्टपने को देखकर इतराने की व्यर्थता, शरीर को सजाने, संवारने की व्यर्थता, विषय भोग की आशाओं से मन को दूर हटाने की क्रिया आदि पर विचार करते हुये शरीर से मोह छोड़कर त्याग एवं तपस्या को जीवन में अपनाने का निश्चय किया। इस समय लौकान्तिक देवों ने आकर ऋषभदेव की वैराग्य भावना का समर्थन किया तथा उनके त्याग से जगत को एक नया मार्ग मिलेगा, इस प्रकार उनका गुणगान कर अपने भवनों में चले गये।

इसके पश्चात् ऋषभदेव ने अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राज्य का भार सम्भला दिया और बाहुबली को युवराज का पद दिया। अन्य युवराजों को भी यथोचित देश देकर वैराग्य धारण कर लिया और पालकी में बैठ कर वन की ओर चल पड़े। वट वृक्ष के नीचे चन्द्रकान्त शिला पर इन्द्राणी द्वारा रत्नों के चूर्ण से बनाये गये साथिये पर बैठ गये और सिद्धेभ्यो नमः का उच्चारण करते हुये वस्त्राभूषण त्याग दिये और परम निर्ग्रन्थ बन गये। तत्काल प्रभू को मनःपर्यय ज्ञान एवं अनेक ऋद्धियां प्राप्त हो गयी और छः माह का तपः साधना में संलग्न हो गये। ऋषभदेव द्वारा उतारे वस्त्र

देवगण ले गये और उनके केशो को स्फटिक मणि के पिटारे मे रख कर क्षीरसागर मे बहा दिये।

काव्य में इस चतुर्दश अध्याय में ऋषभदेव की सर्व प्रथम छह महिनों की तपस्या के वर्णन के साथ नमि विनमि की कथा का वर्णन भी किया गया है। पन्द्रहवें अध्याय में हस्तिनापुर मे महानिर्ग्रन्थ मुनि ऋषभदेव का राजा श्रेयांस के यहां प्रथम आहार लेने का वर्णन किया गया है। सोलहवे अध्याय में ऋषभदेव की तपस्या, फाल्गुन बुद्धी ११ को केवल ज्ञान की प्राप्ति, समवमरण रचना, प्रथम देशना, व देवों द्वारा केवलज्ञानकल्याणक महोत्सव का सामान्य वर्णन किया गया है।

काव्य के अंतिम अध्याय मे केवली श्री ऋषभदेव द्वारा किये गये उपदेशो का वर्णन, ऋषभदेव के संघ का वर्णन, जिनमे ८३ गणधर देव थे, ८४०० महाव्रतधारी मुनि, ब्राह्मी सुन्दरी के नेतृत्व में आर्यिका संघ तथा और भी लाखों श्रावक श्राविकाएं थी। अन्त मे माघ बुद्धि अमावस्या को मोक्ष लक्ष्मी का वरण कर लिया। इस प्रकार प्रस्तुत चरित काव्य की यह संक्षिप्त कथा है।

चरित काव्य की विशेषताएं

प्रस्तुत काव्य चतुष्पदी काव्य है, जिसमें चार पदों के सबसे अधिक पद्य है। अध्याय के अन्त मे दोहा एवं कुण्डलिया छन्द का प्रयोग हुआ है। सभी पद्य गेय पद्य है, जिनको आसानी से गाया जा सकता है। इसलिए काव्य गेय काव्य बन गया है।

अलंकारों का प्रयोग

ऋषभ चरित मे कवि ने कितनेही अलंकारो का प्रयोग करके काव्य को आकर्षण बना दिया है। अलंकारो में उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास छन्दो का कवि ने बहुलता से प्रयोग किया है। इसमें प्रस्तुत काव्य अलंकारिक भाषा वाला काव्य बन गया है। आचार्य ज्ञान सागर जी ने अपने इस काव्य को जनप्रिय बनाने के लिये काव्य कथा को सरल बनाया और उसमे उत्सुकता का पुट दिया।

ऋषभ चरित प्रबन्ध काव्य है। प्रस्तुत आलेख मे हम ऋषभ चरित मे प्रयुक्त ठेठ राजस्थानी अथसा देश शब्दों का प्रयोग कितना हुआ है इस पर विचार करेगे। यह काव्य उनके मुनि अवस्था के पूर्व की अवस्था में लिखा हुआ है इसलिये कवि नेकाव्य की प्रशस्ति में लिखा है।

ऋषभदेव भगवान् का चरित सकल सुखकार

भूरामल ने है लिखा अपनी मति अनुसार ॥७५ ॥

यह काव्य मदनगंज किशनगढ़ के श्रावकों की प्रेरणा से लिखा गया था जिसका कवि ने निम्न प्रकार उल्लेख किया है।

मदनगंज के जैन सब हुए प्रेरणाकार

मुझे जैसे मतिमंद का ताकि हुआ सुविचार ॥७६ ॥

प्रस्तुत काव्य मे पण्डित भूरामल जी ने अपने समय मे प्रचलित शब्दों का बहुत प्रयोग किया है

जिससे यह काव्य ठेठ राजस्थानी बोलचाल का काव्य बन गया है। स्वयं कवि भी राजस्थानी थे। इसलिये ऐसे शब्दों से वचना पंडित भूरामल जी के लिए कठिन था फिर ठेठ राजस्थानी एवं ग्रामीण शब्दों के प्रयोग से बचना कठिन था इसलिये कवि ने प्रसंग वश ऐसे शब्दों का खूब प्रयोग किया है। यहाँ हम ऐसे ही शब्दों पर प्रकाश डाल रहे हैं।

१. तकाजा—

यह ढूंढारी भाषाका शब्द है। इस पर उर्दू का प्रभाव है कवि ने कहा है "नही राज्य में जिसके कोई अन्याय का तकाजा था" अर्थात् उस राजा के राज्य में अन्याय का तकाजा नही था अर्थात् न्याय का राज्य था। मारवाड़ में तकाजा शब्द किसी कार्य के लिये बार-बार मार दिलाने के लिये किया जाता है। वर्तमान मे रिमाइण्डर शब्द तकाजा शब्द का द्योतक है।

२. कनक कामिनी—

महाकवि विहारी ने कनक कनक से सौ गुनां मादकता अधिकांश "दोहे में एक कनक शब्द स्वर्ण के अर्थ में एक एक कनक कामिनी के अर्थ मे प्रयोग किया है। ऋषभ चरित मे कामिनी को स्वर्ण की उपमा देकर उसके सौन्दर्य में ओर भी वृद्धि की है।"

३. अंट-संट—

इस शब्द का प्रयोग लोक व्यवहार मे बहुत होता है। अंट-संट बकने वाला, अंट-संट खाने वाला जैसे प्रयोग किये जाते हैं। कवि ने भी कहा है—अंट-संट खाने वाला भी चंगा इतर दिखाता है।

४. बहु धन्धी—

यह राजस्थानी शब्द है जिसका अर्थ होता है बहुत से व्यापार मे फंसा हुआ वह व्यक्त जो दिन-रात व्यापार व्यवसाय मे फंसा रहता है तथा आत्म हित का ध्यान नही रखता। इसलिये कवि ने कहा है

"बहुधन्धी उस भूमिपाल ने नरक आयु का वन्ध किया" ॥२६॥ पृष्ठ ६

५. कुरला—

यह शब्द भी राजस्थानी ठेठ शब्द है। प्रतिदिन मुख शुद्धि के लये कुरला करना पडता है। यहाँ भी "किन्तु जहाँ कुरला किया कि फिर वृत्ति हुई कोपवती थी।" पद्य ३६ पृष्ठ ८

६. सरकार—

कवि ने शासन के स्थान पर सरकार शब्द का प्रयोग किया है वर्तमान में भी इस शब्द का इसी तरह का प्रयोग होता है।

"सरकार के मानवों द्वारा काठ में जकड़ा गया" पद्य २४ पृष्ठ ३२

७. मिठाईकार—

कवि ने प्रस्तुत काव्य में मिठाईकार जिसका अर्थ हलवाई होता है, शब्द का अपने काव्य मे ४ बार प्रयोग किया है। तीसरे अध्याय मे २६, २८,२९ मे मिठाईकार का प्रयोग हुआ है। लगता है कवि को इस शब्द से बहुत प्रेम रहा था।

"अव तो मिठाईकार का मन वहाँ भीतर खिला" २६ ॥३२

८. पुआ—

पुआ शब्द ठेठ राजस्थानी है। ऐसा लगता है कि कवि को पुआ खाने की इच्छा हो गयी। भूखे को पुआ मिलना अच्छा समझा जाता है। इसी तरह चौथे अध्याय में 'खीर-खांड' शब्द का प्रयोग हुआ है। खीर-खाण्ड का भोजन मिलना बहुत अच्छा माना जाता है।

९. टोणा रामण गांजा सुलफा—

ये भी ठेठ राजस्थानी शब्द है जिसका कवि ने निम्न प्रकार प्रयोग किया है।

टोंणा टामण कर लोगों को जो फुसलाने वाला गांजा सुलफा आदि पान से जिसका दिल हो काला। १९ ॥४२ ॥

१०. पगचप्पी—

इस शब्द के एक से अधिक अर्थ निकलते हैं पगचम्पी सेवा करने के अर्थ में आता है। पगचम्पी शब्द खुशामद करने के अर्थ का भी द्योतक है। यहाँ कवि ने पगचम्पी का अर्थ पैर दबाने के अर्थ में किया है।

यहां तीसरी पगचम्पी करने में प्रेम वता पाती २९ ॥८५ पृष्ठ

११. रेडियो—

कवि के समय में रेडियो बहुत प्रचलित शब्द हो गया था। इसलिये अपने काव्य मे उसका प्रयोग करने में वे नही चूके और कहा—

यथा रेडियो से आवाज दूर तक जाती है

जाने में क्या कुद भी देखो देर लगाती है

वैसे भी सुरविक्रिया समर्पित हो जाती है

असंख्यात योजन चल कर पल भर में आती है। १० ॥८० ॥

१२. टांगों में धोती—

यह राजस्थानी कहावत है। टांगों में धोती होना सम्पन्नता की निशानी मानी जाती है।

उसके पीछे गृहस्थ लोगों की टाँगों में हो धोवती — १८ ॥११० ॥

मकान, खाट, जैसे अनेक राजस्थानी शब्दों का भी कवि ने खूब प्रयोग किया।

□

सुदर्शनोदय महाकाव्य की काव्यगत समीक्षा

☐ —(डॉ.) जयकुमार जैन

संसार में अनादिकाल से दो विचारधारायें पल्लवित पुष्पित रही है—श्रेय और प्रेय: विवेकी व्यक्ति प्रेय को उपेक्ष्य और प्रेय। विवेकी व्यक्ति प्रेय को उपेक्ष्य और प्रेय को वरेण्य मानता है, जबकि अल्पज्ञ व्यक्ति योगक्षेम के लिये श्रेय का चयन करता है। कहा भी गया है—

'श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ सम्परीत्य विविनक्ति धीर:।'

श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसौ वृणीते प्रेयोमन्दो योगक्षेमाद्वृणीते ॥

कठोपनिषद्, अध्याय १, वल्ली २, मन्त्र २,

यत: भारतीय चिन्तनधारा मौलिक रूप से अध्यात्माश्रित रही है, परिणामत: भारतीय कवि-मनीषा ने काव्य को केवल आनन्द का साधन न मानकर परम प्रयोजन स्वरूप मोक्ष पुरुषार्थ का भी साधन स्वीकार किया है। भौतिकवादी पाश्चात्य विचारकों के समान भारतीय भावक काव्य का प्रयोजन केवल प्रेय एवं लौकिक ही न मानकर श्रेय एवं आमुष्मिक भी मानते हैं। सुप्रसिद्ध काव्यशास्त्री आचार्य भामह ने सत्काव्य के निबन्ध का उद्देश्य कलावैचक्षण्य, कीर्ति एवं प्रीति के साथ पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) को भी माना है—

'धर्मार्थकाममोक्षेषु वैचक्षण्यं कलासु च।

करोति प्रीति कीर्तिं च साधुकाव्य निबन्धनम् ॥

काव्यालंकार १/२

भामह के पश्चाद्वर्ती काव्यशास्त्री प्राय: उनकी ही मान्यता का समर्थन करते रहे है। विजयवर्णी एवं सिद्धिचन्द गणि आदि जैनाचार्यों ने भी भामह की इस मान्यता का समर्थन किया है। जैन धर्म निवृत्ति प्रधान धर्म है। इसमें जो कुद प्रवृत्तिपरक दृष्टिगोचर होता है, वह भी निवृत्ति का ही उपकारक है। अशुभ से प्रयास निवृत्ति तथा शुभ से भी सप्रयास शनै:-शनै: स्वत: होने वाली निवृत्ति ही जैन धर्म का लक्ष्य है। पूर्ण निवृत्ति परम सुख स्वरूप है। अत: जैन धर्म प्राणीमात्र के लिए मोक्ष पुरुषार्थ का प्रतिपादन करता है।

पूज्य ज्ञानसागर जी महाराज द्वारा लिखित साहित्य श्रेय और प्रेय उभय प्रयोजन निष्ठ है। इसमें सत्य, सदाचार, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, भक्ति आदि के प्रतिपादन से जहाँ एक ओर श्रेय की सिद्धि सन्निहित है, वहाँ काव्यसारणि का अवलम्बन लेने से प्रेय अर्थात् सद्य: परनिवृत्ति भी सिद्ध होती है। आपने संस्कृत भाषा में जिन ग्रन्थों का प्रणयन किया है, उनकी भाषा प्राञ्जल तथाकाव्यगत वैशिष्ट्य से

अलङ्कृत है। सुदर्शनोदय महाकाव्य एक ऐसा प्रथमानुयोग का ग्रन्थ है, जो ब्रह्चर्य व्रत मे अनुपम प्रसिद्धि को प्राप्त सेठ सुदर्शन के दृढचरित्रात्मक इतिवृत्त के कारण बोधि एवं समाधि का विधान है। यही नहीं, विषयवस्तु की उत्तमता, सैद्धान्तिक प्रतिपादन की विचक्षणता, सामयिक विचारणा, भाषागत सौहार्द, आलंकारिक योजना, छन्दोवैशिष्ट्य, रस-परिपाक आदि के कारण यह काव्य बीसवी शताब्दी के श्रेष्ठ काव्यों में अग्रगण्य है। इसकी रचना मुनिश्री ने अपनी ब्रह्मचारी अवस्था में वीर निर्वाण सम्वत् २४७० (१९४३ ई.) में की थी। आकार में नवसर्गात्मक होने पर भी महाकाव्य के सभी प्रमुख लक्षणो को अपने में अन्तर्हित किए होने से यह एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। आचार्य हेमचन्द का कथन है कि महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वादात्मक, नमस्कारात्मक अथवा वस्तुनिर्देशात्मक मंगलाचारण से होना चाहिए। सुदर्शनोदय महाकाव्य का प्रारम्भ आशीर्वादात्मक मग्ड.लाचारण से हुआ है—

इस मंगल श्लोक मे वीर प्रभु का स्मरण साभिप्राय है। वीर शब्द अन्तिम तीर्थकार भगवान् महावीर का वाचक तो है ही, इससे वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी रूप अर्थ तथा चतुर्विंशति तीर्थकर रूप अर्थ की भी अभिव्यक्ति होती है। यथा—

१. वीरयते कर्मारातीन् इति वीर:। अर्थात् जो कर्मशत्रुओ को जीतता है, वह वीर है। इससे वीतरागता की अभिव्यक्ति होती है, क्योंकि कर्मविजेता ही वीतरागी होता है।

२. विशिष्टेन ईर्ते सकलपदार्थ समूहमिति वीर:। अर्थात् जो विशेष रूप से सकल पदार्थ समेह को प्रत्यक्ष करताहै, वह वीर है। इससे सर्वज्ञता की प्रतीति होती है।

३. वि = विशिष्टा ई: = लक्ष्मी: तां राति इति वीर:। अर्थात् जो विशिष्ट लक्ष्मी (अनन्तचतुष्टय रूप अन्तरंग तथा समवशरण रूप बहिरंग) को देता है, वह वीर है। समवसरणादि लक्ष्मी परम उपदेष्टा तीर्थंकर के होती है। अत: वीर शब्द से हितोपदेशिता भी अभिव्यक्त होती है।

४. वकार से ४ तथा रकार से २ अंक माने गये हैं। 'अंकानां वामा गति:' मानकर वीर शब्द २४ तीर्थकरों का संकेत करता है।

इस मंगलाचारण मे प्रयुक्त 'सुधीवर' शब्द भी अतिशय चमत्कृतिसम्पन्न है। सुधी + वर तथा सु + धीवर इस संभंगश्लेष से ज्ञानियो तथा मृगसेन धीवर जैसे जन सामान्य द्वारा वीरप्रभु की वाणी की आराधरा करने का कथन करके उनकी सर्वलोकाराध्यता को प्रकट करता है। यद्यपि इस मंगलश्लोक मे काव्य की दृष्टि से रूपक और अनुप्रास की छटा अनुपम है, तथापि इन सब की अपेक्षा यहाँ उस भक्ति भाव की प्रधानता है, जो साक्षत् रूप से धर्म पुरुषार्थ की तथा परम्पराया मोक्ष पुरुषार्थ की साधिका है। वादीभसिह सूरि ने ऐसी भक्ति को मुक्तिकन्या के पाणिग्रहण के लिए शुल्क रूप कहा है—

'श्रीपति र्भगवान्पुष्याद् भक्तानां व: समीहितम्।

यद्भक्ति: शुल्कतामेति मुक्तिकन्याकरग्रहे ॥

क्षत्रचूडामणि१/१.

विश्व के समस्त धर्मों में शीलव्रत का महत्त्व सर्वत्र स्वीकृत है। सुदर्शनोदय महाकाव्य में सेठ सुदर्शन के भील के भव से लेकर सतत उन्नति दिखाते हुए अन्तत: निर्वाण रूप अभ्युदय का विवेचन किया गया है। संसार में सुदर्शन का चरित्र अत्यन्त मनोहारी है। फिर, महाकाव्य के आवश्यक वर्ण्यविषयों—द्वीप, क्षेत्र, नगर, ग्राम, उद्यान आदि के आलंकारिक वर्णन से इसकी मनोहारिता चतुर्गुणी हो गयी है। सुदर्शन के गर्भावतरण के प्रसंग में द्वितीय सर्ग मे किया गया पॉच स्वप्नो का मनोरम वर्णन जहाँ पाठकों को शकुनशास्त्र का बलात् स्मरण करा देता है, वहाँ सुदर्शन की वात्सल्य से सराबोर कर देता है। ऐसा प्रतीत होता है मानो यथार्थनाम बालक सुदर्शन सामने ही खेल रहा हो।

सुदर्शनोदय में प्रतिपादित सैद्धान्तिक पक्ष इस ढंग से प्रस्तुत किया गया है पाठकों को दर्शन जैसा दुरुह विषय भी आयातत: मधुर प्रतीत होता है। इस सन्दर्भ में प्रस्तुत श्लोक मे किया गया कर्मवशता का विवेचन सहज ही ग्राह्य है—

'एकस्य चारुस्तु परस्य सा रूग्दारिद्रयमन्यव धनं यथा रूक्।

इत्येवमालोक्य भवेदभिज्ञ: कर्मानुगत्वाय दृढप्रतिज्ञ: ॥' ९/२३

इसी प्रकार कतिपय अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

'किमु बीजव्यभिचारि अङ्कुर:।' ३/८

'जिनधर्मो हि कथञ्चिदित्यत:।' ३/१२

सुदर्शनोदय महाकाव्य में सर्वत्र युगचेतना का प्रति बिम्बन दृष्टिगत होता है। सुदर्शन मुनिराज द्वारा गोचरी के समय देवदत्ता वेश्या को संसार, शरीर और विषय भोगो के प्रति असारता, अशुचिता और अस्थिरताका उपदेश दिलाकर ग्रन्थकार ने असाधारण परिस्थिति में परम्परा में किञ्चित् सुधारको स्वीकर करके सामयिक विचारणा प्रस्तुत की है। सुदर्शनोदय को संस्कृत भाषा में लिखकर जहाँ ग्रन्थकार ने भारत की सार्वभौम भाषा के रूप में संस्कृत की प्रतिष्ठा मे योगदान किया, वहाँ हिन्दी छन्दों एवं राग-रागिनियों का संस्कृत मे प्रयोग करके संस्कृत-साहित्य की अभिवृद्धि मे एक ऐश्वर्यशाली परम्परा का समावेश किया है। भाषागत सौहार्द का यह एक अनुपम उदाहरण है। कोष पर ग्रन्थकार का असाधारण अधिकार है। पण्ड[2] शब्द का नपुसंक अर्थ में और तल्य[1] शब्द का स्त्री अर्थ में प्रयोग उनके कोषवेत्तृत्व का निदर्शन है। ग्रन्थकार ने इन शब्दों के प्रयोग में तथा अन्यत्र अन्य

क्लिण्ट एवं श्लिष्ट शब्दों के प्रयोग में प्राय: श्रीधरकृत विश्वलोचनकोश का आश्रय लिया है। इस बात का संकेत उन्होंने एक स्थान पर स्वयं कर दिया है—

'वणिक्पथ: श्रीधरसन्निवेश: स: विश्वतोलोचनाम देश:।

यस्मिञ्जन: संक्रियतां च तूर्णं योऽभूदनेकार्थतया प्रपूर्ण: ॥' १/३२

एक परिसंख्या अलंकार में 'कण्ठे ठकत्वं न पुनर्जगत्याम' (१/३४) उनकी भाषा की पकड़ का द्योतक है, जिसमें लोकभाषा मै प्रयुक्त ठगपने की सहज अभिव्यक्ति हो जाती है। उनकी भाषा सहज एवं सरल है, परन्तु आवश्यकतानुसार उन्होंने पलाश आदि द्वयर्थक शब्दों का अनेकश: प्रयोग किया है। साहित्य का संगीत का निकट सम्बन्ध है। भक्तिभावना मे लिखित सुदर्शनोदय के अनेक छन्दों में तथा रागों में संगीत की झंकृति सहज ही पाठकों को रसास्वादन कराने में समर्थ है। तथा—

'अहो प्रभा तो जातो भ्रातो भवभयहर जिन भास्करत:।

पापप्राया निशा पलायामास शुभायाद् भूतलत: ॥' सर्ग ५, पृ. ८०

इस राग मे प्रयुक्त प्रभात: शब्द यद्यपि अप्रयुक्तत्व दोषयुक्त है, क्योंकि इसका पुल्लिङ्ग मे प्रयोग कविसमयसिद्ध नही है, तथापि लोकप्रचलित राग होने से 'भ्रातो' के साथ संगति के लिए ग्रन्थकार ने ऐसा प्रयोग करना आवश्यक समझा है। अपनी भाषा को आकर्षक बनाने और भावो को सम्प्रेषित करने के लिए सुदर्शनोदयकार ने अनेक स्थलों पर पौराणिक घटनाओं का समावेश किया है। यथा—

'बले: पुरंवेद्मि सदैव सर्पैरधोगत व्याप्ततया सदर्पै:।

पुरं शचीशस्य भूतं नभोगै: स्वतोऽधरं पूर्णमिदं सुयोगै: ॥' १/३०

कभी-कभी भाषा में व्यंग्योक्तियो का प्रयोग करके उसमे संप्रेषणीयता का आधान किया गया है। इस सन्दर्भ में एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'अंगीकृता अप्यमुना शुभेन पर्यन्तसम्पत्तरूणोत्तमेन।

श्रयन्ति वृद्धाम्बुधिमेव गत्वा ता निम्नगा एव जडाशयत्वात् ॥' १/१८.

सुदर्शनोदयकारने मानवभावों के द्वन्द्व को भाषा का रूप देने मे अद्वितीय कौशल प्राप्त किया है। सेठ सुदर्शन के संसार से विरक्त किन्तु प्रियतमा मनोरमा मे आसक्त मन के भावों का सहज चित्रण मुनिश्री जैसे समर्थ महाकवि द्वारा ही संभव है—

'हे नाथ मे नाथ मनोऽविकारि सुरांगना भिश्च तदेव वारि।

मनोरमायां तु कथं सरस्यां सुदर्शनस्येत्थमभूत्समस्या ॥'१/१५०

सुदर्शनोदय महाकाव्य में छन्दों का प्रयोग भावों के अनुकूल है। इसमें इन्द्रवज्रा, उपजाति वियोगिनी, वसन्ततिलका, द्रुतविलम्बित, शार्दुलविक्रीड़ित तथा वैतालीय इन संस्कृत के आठ छन्दों के अतिरिक्त हिन्दी के प्रभाती, काफी होलिका राग, सौराष्ट्रीय राग तथा अनेक अन्य तर्जों पर लिखित छन्दों का प्रयोग हुआहै। आज संस्कृत के अनेक गीतों का दूरदर्शन एवं आकाशवाणी से जिन रागों का प्रसारण हो रहा है तथा कविसम्मेलनों में पाठ हो रहा है, उन पर सुदर्शनोदय के रागों का स्पष्ट भाव देखा जा सकता है। 'भो सखि! जिनवर मुद्रां पश्य' (सर्ग ५ पृ. ८२) तथा सुमनो मनसि वानिति धरतु' (सर्ग ७ पृ. १३२) आदि राग सहृदयों के चित्त को अनायास ही आकृष्ट कर लेते हैं।

संस्कृत वाङ्मय में अलङ्कारों का महत्त्व सर्वाधिक स्वीकृत है। काव्यशास्त्र के जनक आचार्य भामह ने काव् में अलंकारों की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा है—'न कान्तमपि निर्भूषं विभाति वनिताननम्।'[१०] शब्द और अर्थ दोनो का काव्य का शरीर माना गया है। अतः उनके शोभावर्धक **धर्मो के रूप में अलंकार** भी दो प्रकार के होते हैं—शब्दालंकार और अर्थालंकार। शब्दों की कुछ विचित्र रचनाओ के हेतु चित्रालंकार कहलाते हैं। सुदर्शनोदय मे कलशबंध (९/८९), हारबन्ध (९/९०) चित्रालंकारों की विचित्रता, अनुप्रास (१/१) की शोभा, यमक (३/३८) की मनोरमता तथा पदे-पदे श्लेष (१/३९) की संयोजना पाठको के हृदय में झंकृति उत्पन्न करती है और उपमा (१/२२,२८,३२,४१), उत्प्रेक्षा (१/१६, २/४३), रूपक (१/१,३), निदर्शना (९/५२), स्वाभावोक्ति (३/३६), यथासंख्य (१/४३), श्लिष्टोपमा (१/४२, २/६), परिसंख्या (१/३३,३४), विरोधाभास (१/२३, २/२) आदि अर्थालंकारो के माध्यम से वर्णनीय विषयों की मञ्जुल अभिव्यञ्जना अलौकीक आनन्द प्रदान करती है। स्थानाभाव से अलंकारो का विस्तार सभव नही है। दिग्दर्शन के लिए यहा एक शब्दालकार और एक अर्थालंकार के उदाहरण प्रस्तुत है—

यमक—

अहो किलाश्लेषि मनोरमायां
त्वायाऽनुरूपेण मनो रमायाम्।

जहासि मत्तोऽपि न किन्नु मायां
चिदेति ममेऽत्यर्थम किन्नु मायाम्॥

३/३८

परिसंख्या—

पलाशिता किंशुक एव यत्र द्विरेफवर्गे मधुपत्वमत्र।
विरोधिता पञ्जर एव भातु निरौष्ठ्यकाव्येष्वपवादिता तु।

कौटिल्यमेतत्खलु चापवल्लयां छिद्रानुसारित्वमिदं मुरल्याम्।
काठिन्यमेवं कुचयोर्युवत्याः कण्ठे ठकत्वं न पुनर्जगत्याम्॥

१/३३, ३४

सुदर्शनोदय काप्रधान रस शान्त है। नवम सर्ग के प्रारम्भ मे (श्लोक १—७) वर्णित शम या निर्वेद नामक स्थायि भाव परिपाक से उसी प्रकार शान्त रस मे परिणमित हो रहा है, जिस प्र नवनीत परिपाक से आज्यता को प्राप्त हो जाता है। आचार्य अजितसेन ने रस के स्वरूप का वि करते हुए कहा भी है—

'नवनीतं यथाज्यत्वं प्राप्नोति परिपाकतः।
स्थायिभावो विभावाद्यैः प्राप्नोति रसतां ततः॥

अलंकारचिन्तामणि, ।

अंग रूप मे श्रृंगार का भी वर्णन हुआ है। इस श्रृंगार मे कही भी अन्य सस्कृत महाकाव्य तरह अश्लीलता का पुट नही है। सुक्तियों के समावेश से सुदर्शनोदय की रमणीयता चतुर्गुणी हो है। इस प्रसग मे कतिपय सूक्तियाँ द्रष्टव्य है—

करोत्यनूढा स्मयकौतुक न ?

फलतीष्टं सतां रूचिः।

लोहोऽथ पार्श्वदृषदाञ्चति हेमसत्त्वम्।
वह्निः किं शान्तमायाति क्षिप्यमाणेन दारूणा।

सम्पतति शिरस्येव · सूर्यायोच्चालितं रजः।
स्वभावतो ये कठिना सहेरं कृतः परस्याभ्युदयं सहेरन्।

पुज्य महाराज श्री द्वारा विरचित सुदर्शनवरित के पर्यालोचन से स्पष्ट है कि उनमे कारयित्री और भावयित्री प्रतिभा का अनोखा सगम है। आचार्य अजितसेन ने अकारचिन्तामणि मे कवि स्वरूप का जे विशद विवेचन किया है, वह पूज्य महाराज श्री मे अक्षरशः दृष्टिगोचर होता है। सुदर्शनोदय शान्त प्रधान वैदर्भी रीति मे लिखित काव्य है, जिसमें प्रसाद गुण सद्यः अर्थप्रतीति में साधन है तो मा कारण शब्द नाचते से प्रतीत होते है।

२६१/३ पटेल

नई मण्डी, मुजफ्फरनगर (उ